CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

H
252

विचित्र जीव-जग

कृष्णवल्लभ द्विवेदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

591

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्ञानलोक

ज्ञान-विज्ञान की दुनिया का मनोरंजक चित्रपट

३

विचित्र जीव-जन्तु

(जन्तु-विज्ञान : जानवरों की कहानी)

: लेखक :

कृष्णवल्लभ द्विवेदी

प्रधान संपादक, 'हिन्दी विश्व-भारती'

आर्यावर्त प्रकाशन

चारबाग़ :: लखनऊ.

श्री मोतीलाल भार्गव,
अध्यक्ष, 'आर्यावर्त्त-प्रकाशन', चारबाग़, लखनऊ,
द्वारा प्रकाशित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम संस्करण
१९५४

सर्वाधिकार स्वरक्षित

मूल्य
प्रति भाग पाँच रुपए

591

: आवरण-चित्र :
श्री० पी० ज़ोरदार द्वारा
: अन्य चित्र :
श्री० गिरीशचन्द्र तथा श्री० ज़ैदी द्वारा

श्री मोतीलाल भार्गव द्वारा स्टैण्डर्ड प्रेस, चारबाग़, लखनऊ, में मुद्रित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्ञा न लो क

क्या और क्यों ?

उगती हुई पीढ़ी के नौनिहाल पाठको ! ० ० ० ०

'ज्ञानलोक' के नाम से तुम्हें भेंट की जा रही यह सचित्र पुस्तकमाला आसमान, धरती, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु और मनुष्य की अचरज से भरी उस दुनिया का एक मनोरंजक चित्रपट है, जिसके रहस्यभरे परदे के उस ओर ताकने-झाँकने को शायद तुम्हारा जी हर घड़ी ललका करता होगा। भला, तुममें से कौन होगा जो उस दुनिया की सैर करना पसन्द न करेगा ? किसका मन उसकी रंग-बिरंगी झाँकियाँ देखने को एकबारगी ही न उमग पड़ेगा ? शायद तुम्हें खेल-तमाशा देखना सबसे ज्यादा पसंद है ! भला इससे अधिक रोचक और बढ़िया खेल-तमाशा दूसरा क्या होगा, जिसे कि प्रकृति ने हमारे चारों ओर रच रक्खा है ?

तो फिर आओ, इस चित्रपट के द्वारा प्रकृति की उस अनूठी दुनिया की ओर तुम्हें ले चलें और सबसे पहले तुम्हें दिखाएँ उस अद्भुत आकाश के कौतुकों की एक झलक, जोकि अपने अनंत पसार में अनगिनत लट्टुओं की तरह सूरज, चाँद, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र, नीहारिकाओं आदि को लगातार नचाता हुआ न जाने कब से कौन-सा खेल किसके लिए रचाए हुए है !

तब दिखाएँ उस हरी-भरी प्यारभरी धरती माता के अनोखे रूप की भी कुछ झाँकियाँ, जिसकी कि गोद में पलकर हम सब अपने जीवन का खेल खेलते, हँसते-रोते, लड़ते-झगड़ते और भाँति-भाँति के खेल-खिलौनों की रचना करते हुए इस सूने आसमान में सूर्य के आसपास लगातार चक्कर लगा रहे हैं !

और इसी तरह बारी-बारी से देखें पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं और मनुष्य की उस चहलपहल से भरी अनोखी दुनिया को भी, जिसकी कि बदौलत यह धरती इतनी रंगीन और सजीव है और मनुष्य होने के नाते जिससे हमारा इतना ज्यादा लगाव है !

यह सब तुम्हारे लिए एक बड़ा आवश्यक कर्त्तव्य है—केवल इसीलिए नहीं कि इससे तुम्हारा जी बहले, बल्कि इसलिए भी कि तुम्हारे ज्ञान का भंडार भरता चला जाय और सच्चे अर्थ में तुम इस 'धरती के लाल' बन सको !

यह है तुम्हारे लिए अँधेरे से उजाले की ओर बढ़ने का पहला पाठ—इस दुनिया के बाहरी रूप की झाँकी पाकर अंत में उसके भीतरी रहस्य की खोज करने और उसी प्रयत्न में अपने आपको भी पहचानने की पहली तैयारी !

और, कौन जानता है कि शायद इसीलिए ही हम सबकी रचना हुई हो ! शायद इसीलिए यह सारा खेल ही रचा गया हो ! शायद यही हो हमारे जीवन का एकमात्र और आखिरी लक्ष्य ! ० ० ०

कृष्णवल्लभ द्विवेदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

१. प्रकृति की अनूठी जंतुशाला : (पृ० ५-१४)
भाँति-भाँति के जीवधारियों की अनोखी प्रदर्शनी—जल, थल और आसमान के अंचल में भरे पड़े लाखों प्रकार के जीव—प्राणि-जगत् की सीढ़ीनुमा वर्ण-व्यवस्था—जीवधारियों का वंश-विकास-वृक्ष—विकासवाद की पहेली और स्वभाव, आकृति, डीलडौल, बर्त्ताव, संबंधी विविध जीवधारियों की अपनी-अपनी विशेषताएँ—जानवरों की आयु

२. बीते युगों के अद्‌भुत प्राणी : (पृ० १५-२६)
सौ फ़ीट लंबी और तीस फ़ीट ऊँची ठठरियाँ—पंद्रह से बीस करोड़ वर्ष पूर्व के महासागरों के स्वामी : प्लिसियोसॉरस और इक्थियोसॉरस—दानव-युग के विविध स्थलचर एवं जलस्थलचर दैत्याकार उरंगम या 'डिनासॉर'—ब्राण्टोसॉरस, डिप्लोडोकस और जाएजेण्टोसॉरस—स्टैगोसॉरस नामक अद्‌भुत कवचधारी उरंगम—जिरह-बख़्तरवाले जीवों के अन्य नमूने : एंकिलोसॉरस और ट्राइसिरेटॉप्स—बत्तख़ों की-सी चोंचवाले अनो खेउरंगम—इगुआनोडॉन, ब्रैकियोसॉरस और स्ट्रूथियोमिमस आदि अन्य अनोखे दानव—दानव-युग का सबसे विकराल और क्रूर प्राणी : टाइरेनोसॉरस—नभचर उरंगम : टेरानोडान, टेराडेक्टाइल और आर्कियोर्निस—उड्‌टाथेरियम, मेगाथेरियम, ग्लिप्टोडॉन, ऊनी गैंडा, कटारदन्ती व्याघ्र, मैमथ आदि स्तनपोषी

३. मनुष्य के निकट संबंधी : (पृ० २७-४०)
वानर मनुष्य के नातेदार हो हैं, पुरखे नहीं—'प्राइमेट्स' या प्रधानभागीय वर्ग के जीव—ऐ-ऐ, टार्सियर, लीमूर आदि वानरसम प्राणी—नई दुनिया के वानर : मार्मोसेट, मकड़ी-वानर, हाउलिंग वानर आदि—पुरानी दुनिया के वानर : बबून, मैंड्रिल, मंगैबी, मैकेक, काले एप, गुरेज़ा, लंगूर आदि—बनमानुस : गिब्बन, सायमाङ्ग, ओरेङ्ग-उटाङ्ग, गोरिल्ला और चिम्पैञ्ज़ी

४. हिंसक पशु : (पृ० ४१-६०)
जंगल का राजा : सिंह—बिड़ाल-परिवार का सबसे भयावना सदस्य : बाघ या शेर—तेंदुआ : सबसे फुर्तीला और चालाक हिंसक प्राणी—हिम-प्रदेश के गुलहे : साह और लमचित्ता—नई दुनिया के बिड़ालवंशी : जागुआर, प्यूमा और ओसीलॉट—तेंदुए का 'लघु संस्करण' चीता—बनबिलार, लिंक्स और स्याहगोश—खीखर (कटास), ताड़-बिलार, मुश्क-बिल्ली, नेवला, आदि—कुकुरवंश का सबसे ख़तरनाक प्राणी : भेड़िया—सियार, लोमड़ी और जंगली कुत्ता—सबसे भौंडा हिंसक पशु : लकड़बग्घा—जंतु-जगत् का भयावना सर्वभक्षी : भालू या रीछ—सील, वालरस, समुद्री सिंह, गज-सील आदि हिंसक जलजीव

५. भीमकाय जानवर : (पृ० ६१-७४)
सबसे बड़ा वर्त्तमान जीव : 'तिमि' या 'ह्वेल'—थलचरों का सरदार : हाथी—अद्‌भुत कवचधारी पशु : गैंडा—ऊँचाई में सभी वर्त्तमान पशुओं का नेता : जिराफ़—हिप्पोपोटेमस या दरियाई घोड़ा

६. कुछ अनोखे थलचर : (पृ० ७५-९२)
आर्माडिल्लो, साल, चींटीख़ोर और स्लॉथ—विचित्र शूलधारी 'साही'—जंतु-जगत् का अनोखा इंजीनियर : 'बीवर'—उड़नेवाली गिलहरियाँ, हिरनामूसा, आदि—संसार का सबसे अनोखा सामुहिक आत्मघाती : 'लैमिङ्ग'—अंडा देनेवाले विचित्र स्तनपोषी : 'बत्तखचोंचा' और 'शूलधारी चीटीख़ोर'—बच्चों को पेट की जेबनुमा थैली में लिये रहनेवाले स्तनपोषी : कोआला, ओपोसुम, कंगारू—मृग-समुदाय : भाँति-भाँति के हिरन, बारहसिंघे, नीलगाय, आदि—तीन अनोखे शफवर्गीय : 'ज़ेबरा', 'लामा' और 'तापीर'—भाँति-भाँति के पालतू पशु : घोड़ा, ऊँट, गाय, भैंस, सुरागाय, बकरी, भेड़, आदि

७. पक्षियों की दुनिया : (पृ० ९३-११८)
पक्षियों की चौदह हज़ार जातियाँ हैं—पक्षियों-संबंधी कुछ उल्लेखनीय बातें—संसार के सबसे बड़े पक्षी, जो उड़ने से लाचार हैं—भाँति-भाँति के तैराक़ और गोताख़ोर समुद्री पक्षी—हमारे तालाबों, नदी-तटों और दलदली क्षेत्रों की सुप्रसिद्ध चिड़ियाँ—शिकारी पक्षी—हमारी बस्तियों, बाग़-बग़ीचों और आसपास के जंगलों में रहनेवाली प्रसिद्ध चिड़ियाँ

८. उरंगम (रेंगनेवाले प्राणी) : (पृ० ११९-१३०)
भाँति-भाँति के सर्प—छिपकिलियाँ, गिरगिट, गोह आदि—भयंकर जलस्थलचर : मगर—भाँति-भाँति के कच्छप

९. विचित्र जलजीव : (पृ० १३१-१४४)
चित्र-विचित्र आकृतियों की सजीव मणियाँ—पेड़-पौधे एवं फल-फूल जैसे अद्‌भुत जीव : स्पंज, मूँगा, लस-मछली, सितारा-मछली, एनीमोन, आदि—भाँति-भाँति की अनोखी मछलियाँ—घोंघावंशी, अर्थात् शंख, सीपी, कौड़ी आदि के आवरण में रहनेवाले अनोखे जलजीव—'अष्टपाद' और 'स्क्विड' नामक भयावने जंतु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घूमते-फिरते हुए, मनबहलाव के लिए, अकस्मात् आज हम अपने नगर की सुप्रसिद्ध जंतुशाला की ओर जा निकले ! इस जगह को लोगों ने अपनी सहज सूझ-बूझ से एक अनूठा नाम दे रक्खा है। वे इसे 'ज़िन्दा अजायबघर' कहते हैं ! कैसा मार्के का नाम है यह इस जगह के लिए ! सचमुच ही कुद-रत की ज़िन्दा करामातों की एक नुमाइश ही तो यह है ! बारहों महीने लोगों के मनोरंजन के लिए यह खुली रहती है। हज़ारों-लाखों रुपये उस पर उँडेले जा चुके हैं। दूर-दूर की खाक छानकर तरह-तरह के अनोखे जानवरों के नमूने यहाँ जुटाए गए हैं। उन्हें इस तरह खुले घिरौंदों या बंद पिंजड़ों में रक्खा गया है कि नन्हें-नन्हें बच्चे तक बेखटके नज़दीक से उन्हें देख-भाल सकें। छुट्टी के दिन तो यहाँ दर्शकों के प्रायः मेले लग जाते हैं ! बच्चों का मन तो यहाँ आते कभी अघाता ही नहीं ! भला इससे बढ़कर ज़िन्दा तमाशा उनके लिए दूसरा क्या हो सकता है ?

भाँति-भाँति के जीवधारियों की अनोखी प्रदर्शनी

ज्यों-ज्यों एक से दूसरे घिरौंदे या पिंजड़े की ओर बढ़ते हुए इस अनूठी प्रदर्शनी का आनंद लेना हमने शुरू किया, त्यों-त्यों हमारे अचरज का ताँता भी मानों साथ-साथ खिंचता हुआ लगातार लंबा होता चला गया ! लो, यह रहा 'कँगारू', जो अपने बच्चे को पेट पर बनी हुई एक अनोखी जेबनुमा थैली में आराम से बिठाये हुए है ! और यही तो 'शुतुर्मुर्ग़' है, जो पखेरुओं का सरदार कहलाते हुए भी उड़ने से लाचार है ! यही तो 'ज़ेबरा' महोदय हैं, जिनके बदन की चित्रकारी देखकर कौन कुदरत की कला पर लट्टू हुए बिना रहेगा !

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और इसी को कहतें हैं 'लामा', जो कि एक साथ ही ऊँट, जिराफ, नीलगाय और हिरन की याद हमें दिलानें लगता है ! यही तो गिरनार का असली बब्बर शेर है, जो सचमुच ही 'जंगल का राजा' जान पड़ता है ! और यही है हिमालय का भालू, जो मुँह फैलाकर मूँगफली माँगने की करतूत से लेकर जलती हुई सिगरेट का एक कश खींचने और नाक से धुआँ तक निकालने का करतब दिखाने से नहीं चूकता !

भला, किस-किस के लिए अचंभा प्रकट किया जाय ? उधर यदि भेड़ियों, लकड़बग्घों और तेंदुओं जैसे ख़ूँख्वार मांसाहारी जानवरों की मंडली जुटी है, तो इधर हिरन, बारहसिंघों और नीलगाय जैसे घासपात-भोजियों का मेला लगा है ! एक ओर, पिंजड़े में ऊपर ही ऊपर लटककर कलाबाज़ियाँ दिखानेवाला आसाम का मशहूर उलूक वानर—'काला गिबन'—अपनी 'हू-उक्' 'हू-उक्' आवाज़ से कान फाड़े डाल रहा है, तो दूसरी ओर, कुत्ते के-से मुँह और शेर की-सी अयालवाला अरब का 'बबून' नामक अनोखा बंदर अपने पिंजड़े में मानों समाधि लगाये बैठा है ! एक बड़े से बाड़े में नेपाल के जंगलों का वासी वह अद्भुत भीमकाय कवचधारी गैंडा विचर रहा है, तो दूसरे में तिब्बत के ऊँचे ठंढे पठारों का एकमात्र वाहन वह चँवरनुमा बालदार प्राणी 'याक' है, जिसे 'सुरागाय' भी कहते हैं। लीजिए, यही तो है ऊदबिलाव, जो लगातार पानी के भीतर ही भीतर तैरते रहने और मछलियों पर बसर करने पर भी कोई अंडज जलजीव नहीं, बल्कि स्तनों से दूध पिलाकर संतानपालन करनेवाला एक जलस्थलचर शिकारी जानवर है। और यही है जलजीवों में सबसे अधिक खतरनाक और मक्कार 'मगर', जिसके जबड़े की जकड़ में एक बार किसी के फँस जाने पर फिर ख़ैर नहीं रहा करती ! यही तो असली 'अजगर' है, और यही है 'काला नाग' ! यही तो साँपों का दुश्मन 'नेवला' है, और यही है 'बिज्जू' ! यह अनोखा कवचधारी प्राणी ही तो 'सल्लू साँप' या 'पैंगोलिन' है, और यही है 'साही', जिसके बदन के तीखे काँटे देखने में कितने सुंदर जान पड़ते हैं ! यही 'काकड़' मृग है, और यही है 'चीतल' ! इसी सुंदर आँखोंवाले हिरन को 'चिकारा' कहते हैं, और यह जो शाखदार सींगवाला मृग है, वही तो है हमारे देश का मशहूर 'साँभर' ! यही अनोखा जीव तिब्बत का 'पांडा' है, और यही छोटा-सा डरपोक जानवर है जावा की 'रामगाय' ! भला, कहाँ तक गिनावें और किस-किस का बखान करें ? यह तो एक पूरा मेला-सा यहाँ लगा है। इसका मज़ा तो जो इसे देखता है, वही पा सकता है।

यह तो हुई थलचरों या जलस्थलचरों ही की बात ! अब तनिक उन पखेरुओं की भी एक झाँकी लो, जो अपने रंग-बिरंगे पहनावे और संगीतमय बोलियों से इस अजायबघर को मानों एक नाट्यशाला-सी बनाये हुए हैं। सबसे पहले तो लाल-पीले, हरे-नीले और सफ़ेद रंगों के अद्भुत सम्मिश्रण की छबि अपने परों में निखराये हुए, जावा-सुमात्रा के घने जंगलों के निवासी उन भीमकाय तोतों ही को देखो, जो पक्षी-जगत् के विदूषकों जैसे जान पड़ते हैं। ये मसखरे 'काकातुआ' के नाम से पुकारे जाते हैं ! इनकी उन कलाबाज़ियों पर तनिक ध्यान दो, जिन्हें अपने पिंजड़े में लटकते हुए झूलों पर झूलते समय या दर्शकों के हाथों मूँगफली लेने के लिए अपनी चोंच के बल घिरौंदे की जाली पर ऊपर से नीचे उतरते समय ये दिखाते हैं ! साथ ही परखो उन छोटे-बड़े आकार-प्रकार के अनगिनत तोतों की वेषभूषा को भी, जिन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है मानों कलाकार कुदरत ने स्वयं हाथों में कूँची उठाकर भाँति-भाँति की प्यालियों से रंग ले उन्हें चित्रित कर दिया है ! इनके अलावा और भी जिन-जिन अनोखे पखेरुओं को तुम जानना-पहचानना चाहो, उन्हें यहाँ देख-परख सकते हो। लो, ये रहीं बत्तखें और मुर्ग़ाबियाँ ! और वे रहे तीतर, फ़ाख्ते और मोर !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

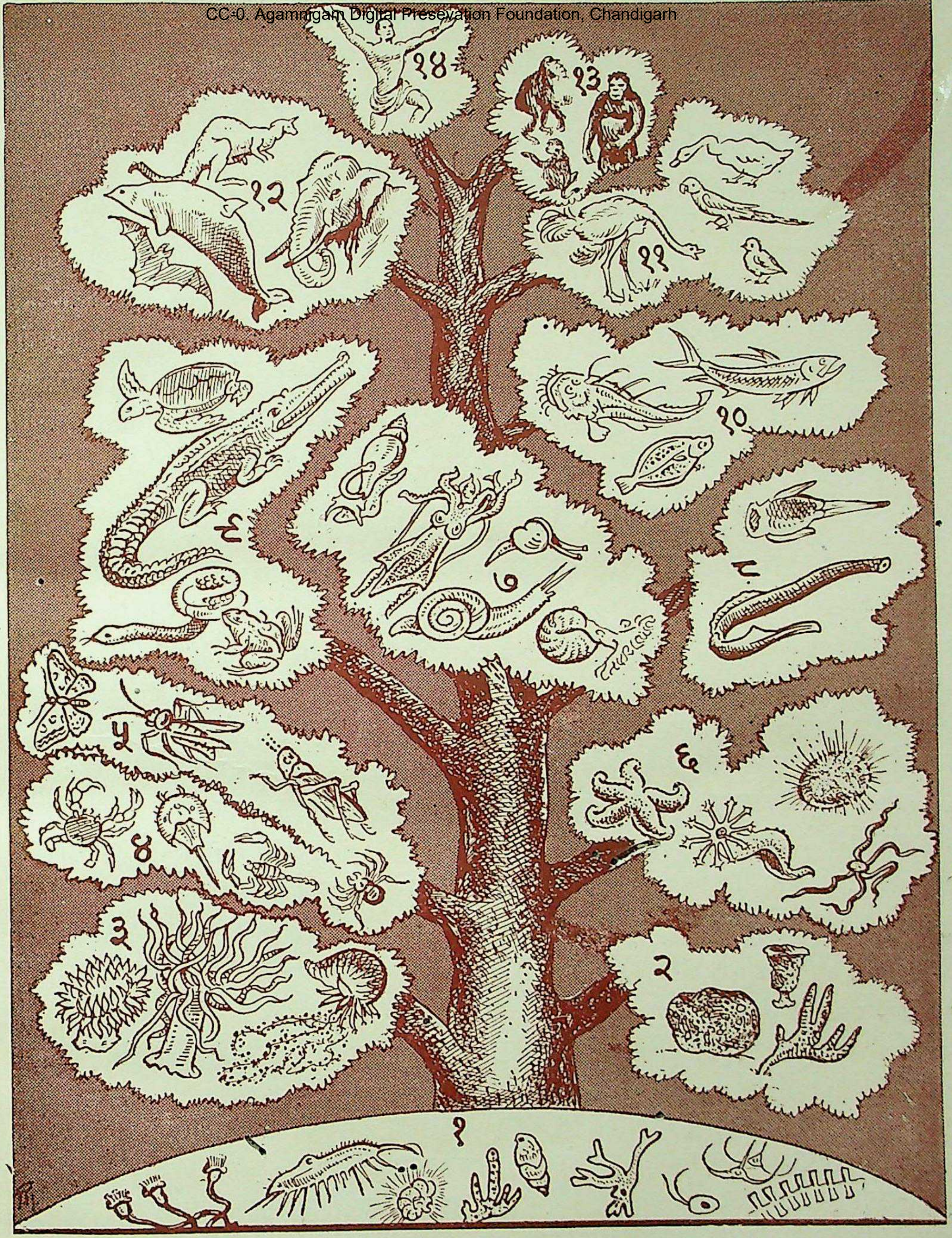

जीवधारियों के वंश-विकास-वृक्ष की मुख्य-मुख्य शाखा-प्रशाखाएँ

१. आदि एककोशीय जीव; २. बहुछिद्री स्पंज आदि; ३. एनीमोन, मूँगा आदि; ४-५. जोड़दार पैरवाले प्राणी; ६. सितारा-मछली आदि कंटकचर्मी; ७. घोंघावंश; ८. उपपृष्ठवंशी; ९. मंडूक और उरंगम (मेंढक, मगर, कछुवा, सर्प आदि); १०. मत्स्य-वर्ग; ११. पक्षी-वर्ग; १२. स्तनपोषी-वर्ग (तिमि, हाथी, घोड़ा, कँगारू, चमगादड़ आदि); १३-१४ प्रधानभागीय वर्ग (वानर, मनुष्य)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वे ही तो हैं क़बूतर और मैना ! और यही हैं लाल मुनिया और शकरखोर ! यही तो वह 'राजहंस' है, जिसकी तारीफ़ के पुल बाँधने में संस्कृत और हिन्दी के कवियों ने अपनी क़लम तोड़ डाली ! और वह जो नन्हीं-सी चिड़िया है, वही तो फ़ारसी-उर्दू के शायरों की आशना 'बुलबुल' है, जिस पर लखनऊ के नवाबों जैसे सुन्दरता के उपासक बेचारे मर मिटे ! कैसा अनोखा यह मजमा है और कैसी विचित्र यह नुमाइश है ! निस्संदेह, इस जगह को लोगों ने जो 'ज़िन्दा अजायबघर' नाम दे रक्खा है, वह सोलहों आने सार्थक है। इस प्रदर्शनी के एक से दूसरे छोर तक पहुँचते-पहुँचते तो हमारे अचरज की डोर इतनी लंबी हो जाती है कि फिर वह समेटे सिमटती ही नहीं !

जो अचंभा थलचरों और नभचरों को देखकर हमें होता है, वही जलचरों के बारे में भी होते पाया जाता है, गोकि पानी के जानवरों का उतना बड़ा मजमा यहाँ हमें देखने को नहीं मिलता। इसकी तो झाँकी यदि पाना हो तो बंबई की 'जलजंतुशाला' जैसे किसी संग्रहालय में चले चलो ! वहाँ कैसी-कैसी अनोखी मछलियाँ और सीपियाँ, कछुए और मत्स्य, केंकड़े और घोंघे, तारा-मछलियाँ तथा वनस्पतियों जैसे जलजीव और अगणित क्षुद्र समुद्री प्राणियों के नमूने प्रदर्शन के लिए इकट्ठा किए गए हैं ! उनके रंग-बिरंगे रूप, अद्भुत बर्त्ताव और रहस्यमय इतिहास का परिचय पाकर केवल दाँतोंतले उँगली दबाकर ही रह जाना पड़ता है !

जल, थल और आसमान के अंचल में भरे पड़े लाखों प्रकार के जीव

भला, जब मनुष्य द्वारा केवल मनोरंजनार्थ जुटाये गये इन गिने-चुने जीव-जंतुओं के नमूनों की इस छोटी-सी जगह की एक मामूली-सी प्रदर्शनी ही का यह हाल हो, तो फिर कुदरत की उस विशाल जंतुशाला के अचंभे का कौन कभी पारावार पा सकता है, जोकि धरती, सागर और आसमान, तीनों ही के दायरे में हज़ारों-लाखों प्रकार के छोटे-बड़े जीवधारियों का एक जमघट-सा लगाकर पुरातनकाल से इस पृथ्वीतल पर सजी हुई है ! इस महान् जंतु-संग्रहालय में तो सूक्ष्म से सूक्ष्म कीटाणुओं से लेकर बड़े से बड़े डीलडौलवाले अगणित प्राणियों का एक ठट्ठ मेला-सा लगा हमें दिखाई देता है—उसकी परिधि में तो समाया हुआ है वस्तुतः जीव-सृष्टि के अब तक के विकास का सारा इतिहास ही ! तो फिर किसकी बिसात है कि कुदरत के इस विशाल संग्रहालय के सभी जीवधारियों को अपने किसी 'ज़िन्दा अजायबघर' या जानवरों की नुमाइश में एक ही जगह इकट्ठा कर सके ! साथ ही इन सब के अपने-अपने वंश और कुनबों तथा पुरखों की जो असंख्य पीढ़ियाँ पीछे बीत चुकी हैं, उन सभी की झाँकी भी फिर से यहाँ खड़ी करना किसके बस की बात होगी ? निश्चय ही, कलाकार प्रकृति अलग-अलग युगों में विगत लाखों-करोड़ों वर्षों की अवधि में, भाँति-भाँति के अलग-अलग साँचों में ढाल-ढालकर, जीवों के जितने नमूने अपनी इस महाप्रदर्शनी में अब तक प्रदर्शित कर चुकी है, उन्हें देखते हुए भला इससे अधिक विशाल और कारीगरी से भरी हुई सजीव शिल्पशाला हमें इस विश्व में दूसरी कब और कहाँ देखने को मिल सकती है ?

अपने आसपास फैली हुई प्रकृति की इस महान् जन्तुशाला के विविध प्राणियों पर एक सरसरी निगाह दौड़ाते हुए जब हम उन पर विचार करते हैं तो एक बात हमें इन सबमें दिखाई पड़ती है। वह यह है कि ये सब अलग-अलग बिरादरियों में बँटे हुए-से हैं ! ऐसा जान पड़ता है मानों इन सबके अलग-अलग वर्ग और समूह हैं, जिनके सभी सदस्य आपस में कुछ समान गुण-धर्मों या वंशपरंपरागत खूबियों को अपनाये हुए हैं। उदाहरण के लिए, कुछ हैं यदि अंडा देनेवाले, तो कुछ हैं स्तनपोषी, अर्थात् स्तनों से दूध पिलाकर संतान का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पालन-पोषण करनेवाले ! कुछ यदि पृष्ठवंशी या रीढ़वाले हैं तो कुछ हैं बिना रीढ़ के या अपृष्ठवंशी ! कई एक रेंगकर चलनेवाले हैं तो दूसरे ऐसे हैं जो पैरों से ही चलते हैं और खुर उगाये हुए हैं। कितने ही तीखे दाँतोंवाले हैं तो कुछ हैं बिलकुल दंतहीन भी। अनेकों यदि मांसाहारी अथवा कीटभक्षी हैं तो बहुतेरे शुद्ध शाकाहारी या घासपातभोजी ही हैं। कई एक जल और थल, दोनों ही, में समान सुविधा के साथ विचरते पाये जाते हैं तो कई एकमात्र जल अथवा थल के ही निवासी हैं। कई आसमान में भी उड़ने में समर्थ हैं तो बहुतेरे केवल वृक्षों ही पर रहते पाये जाते हैं ! सारांश यह है कि अलग-अलग डीलडौल एवं विभिन्न आकृतियों के होते हुए भी गुण-धर्म के विचार से उनमें से कई में परस्पर इतनी अधिक समानताएँ मिलती हैं कि सहज ही उनकी अलग-अलग बिरादरियाँ या जातियाँ निर्धारित की जा सकती हैं। प्रायः हम लोग तो जलचर (पानी में रहनेवाले), थलचर (धरती पर गुजर-बसर करनेवाले) और नभचर (आसमान में विचरण करनेवाले) या मांसाहारी और शाकाहारी, इसी प्रकार के वर्गों में समस्त जीवधारियों को बाँटने के अभ्यस्त हैं। परन्तु वैज्ञानिकों का दृष्टिकोण इस संबंध में कुछ और ही है। उदाहरणार्थ, उनकी निगाह में तो सागर-निवासी 'तिमि' या ह्वेल नामक महामत्स्य और धरती पर विचरनेवाले बहुतेरे ढोर-पशु, दोनों ही, इस दृष्टि से एक ही बृहत् समुदाय के सदस्य हैं कि वे हैं स्तनपोषी (अर्थात् स्तनों से संतान का पालन-पोषण करनेवाले) प्राणी ! इसी प्रकार जल में विचरण करनेवाला मगर और हमारे घरों की दीवारों पर रेंगनेवाली छिपकिली दोनों उनकी दृष्टि में एक ही बिरादरी के प्राणी हैं, इस नाते कि वे हैं 'उरंगम' या रेंगकर चलनेवाले जीव। वस्तुतः वैज्ञानिकों ने समस्त जीव-संसार को जिस प्रकार से विभाजित किया है, उसका मुख्य आधार है अपृष्ठवंशी (अर्थात् बिना रीढ़वाले) और पृष्ठवंशी (अर्थात् रीढ़वाले) जीवों का भेद। इन्हीं दो महाविभागों में सारे प्राणि-जगत् को वे विभक्त मानते हैं। तदनंतर, अनेक उपविभागों की योजना करके उनमें यथास्थान उन्होंने भिन्न-भिन्न जीवों को वर्गीकृत कर दिया है ! तो आओ, अब देखें कि वैज्ञानिकों द्वारा किया गया जीव-जगत् का यह वर्गीकरण किस प्रकार का है। इसे हम नीचे एक तालिका के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं :—

प्राणि-जगत् की सीढ़ीनुमा वर्ग-व्यवस्था

(क) अपृष्ठवंशी विभाग

१. 'प्रोटोज़ोआ' अर्थात् एककोशीय आदि जीव (अमीबा, फ़ोरेमिनीफ़ेरा, रेडियोलेरिया, बैक्टीरिया आदि)।
२. 'पोरिफ़ेरा' अर्थात् बहुछिद्री बहुकोशीय प्राणी (स्पंज)।
३. 'सीलेनटेराटा' अर्थात् लस-मछली, मूँगा, एनीमोन या समुद्री फूल जैसे बहुकोशीय सरल जीव।
४. 'वर्मीज़' या कृमि (केंचुवा, जोंक, चुन्ने आदि गंडेदार जीव)।
५. 'एकिनोडर्मा', अर्थात् सितारा-मछली, समुद्री खीरे, आदि 'कंटक-चर्मी' जीव।
६. 'मोलस्का' या घोंघा व सीपी की भाँति के प्राणी।
७. 'आर्थोप्रोडा' या जोड़दार पैरवाले प्राणी (मक्खी, बर्रे, मच्छर, काँतर, बिच्छू, तितली, दीमक, चींटी, जूँ, टिड्डी, झींगुर, खटमल, केकड़ा, झींगा, पतिंगा, आदि)।
८. उपपृष्ठवंशी या बिना खोपड़ीवाले रीढ़दार प्राणी।

(ख) पृष्ठवंशी विभाग

१. मत्स्य-वर्ग (भाँति-भाँति की मछलियाँ)।
२. मंडूक-वर्ग (मेंढक आदि उभयचर प्राणी)।
३. उरंगम-वर्ग (छिपकली, बिसखपरा, मगर, कछुवा, सर्प आदि)।
४. पक्षी-वर्ग (भाँति-भाँति के पखेरू)।
५. स्तनपोषी-वर्ग, जिसके कई उपवर्ग हैं:----
   (अ) तिमि-वर्ग (ह्वेल, सूँस आदि)।
   (आ) बच्चों को थैली में रखनेवाले जीव (कँगारू)।
   (इ) शफ या खुरवाले जानवर (घोड़ा, गाय, बकरी, आदि)।
   (ई) कुतरकर खानेवाले प्राणी (गिलहरी, चूहा, साही)।
   (उ) मांसभक्षी जीव (सिंह, भेड़िया, भालू, बिल्ली, आदि)।
   (ऊ) कीटभक्षी जीव (छछूँदर आदि)।
   (ए) चमगादड़ जैसे करपक्षी जीव।
   (ऐ) 'प्राइमेट्स' (लीमूर, वानर, बनमानुस और मनुष्य)।

उपर्युक्त तालिका से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जीव-जगत् में क्रम-ज्यादा उन्नति के क्रम से प्राणियों के विकास की एक प्रकार की सीढ़ीनुमा वर्ण-व्यवस्था-सी हमें मिलती है। अर्थात् अमीबा जैसे एककोशीय सरलतम जीव-रूपों से लेकर मनुष्य जैसे परम विकसित बुद्धिशाली प्राणी तक, जीव-जगत् की व्यापक पृष्ठभूमि में आज की अपनी इस मौजूदा स्थिति ही में, हमें विकास की विविध श्रेणियाँ देखने को मिलती हैं। ये श्रेणियाँ बहुत-कुछ उस विकासक्रम से मिलती-जुलती हैं, जोकि पृथ्वी के करोड़ों वर्षों के इतिहास में जीवन के आरंभ से लेकर मनुष्य के चरम उत्कर्ष की स्थिति तक, भिन्न-भिन्न युगों के विभिन्न प्राणि-रूपों के तरतीबवार सिलसिले में, हमें दृष्टिगत होती है। इसका तो अर्थ यह हुआ कि जीवधारियों के विकास की मानों दो निसेनियाँ या सीढ़ियाँ हैं! एक तो है करोड़ों वर्षों की अवधि में काल के विस्तृत अंचल में फैली हुई जीवन के विकासक्रम की दीर्घव्यापी महान् निसेनी! यह वह निसेनी है, जिसमें किसी धुँधले अतीत में जब पहलेपहल एककोशीय जैव प्रतिरूपों के रूप में जीवन की आदि रश्मियाँ निखरी होंगी, तब से अब तक के प्राणि-विकास का सारा का सारा इतिहास पसरा पड़ा है। और दूसरी है वर्त्तमान जीव-जगत् के आँगन में ही, एक ही साथ ठेठ एककोशीय जैव स्थिति से मानवीय विकास की उच्चतम स्थिति तक की प्राणि-विकासक्रम की उत्तरोत्तर सभी श्रेणियों का दिग्दर्शन करानेवाली वह वर्ण-व्यवस्था, जिसकी भी एक निसेनी के रूप में हम कल्पना कर सकते हैं।

जीवधारियों का वंश-विकास-वृक्ष

परन्तु इस प्रकार एक उतार-चढ़ावदार निसेनी के रूप में कल्पित करने के बजाय, यदि हम जीवधारियों के विकास की इस क्रमबद्ध झाँकी को विविध शाखाओं और उप-शाखाओं से युक्त एक विशाल वृक्ष के रूप में चित्रित करें तो ज़्यादा उपयुक्त होगा। कारण, जीवन का स्वरूप तो एक पौधे जैसा ही है—वह एक ही सामान्य तने से विविध शाखाओं-उपशाखाओं के रूप में क्रमशः प्रस्फुटित और विकसित हुआ है। इन शाखाओं में से कई डालियाँ तो अनुकूल परिस्थितियों का योग प्राप्त कर उत्तरोत्तर बढ़ती और पुष्पित-पल्लवित होती चली गईं और बहुतेरी प्रतिकूल अवस्थाओं का सामना पड़ने के कारण कुछ ही दूर तक बढ़ने के बाद मानों कुंठित हो गईं अथवा एकदम सूखकर ठूँठ बन गईं। जीवधारियों का यह विकास-वृक्ष आज के दिन जिन विविध शाखा-प्रशाखाओं की झाँकी दरसाते हुए पृथ्वी के आँगन में लहलहा रहा है, वह वैसा ही तो लाखों-करोड़ों वर्ष पूर्व संभवतः न लहलहाता रहा होगा, क्योंकि उन दिनों उसकी बहुतेरी वर्त्तमान शाखें—जैसी कि मनुष्य की शाखा—शायद प्रस्फुटित ही न हो पाई होगी और अन्य अनेक शाखाओं पर भी आज के प्रतिनिधि जीव-रूपों के बजाय उनके कोई पुरातन पुरखे या आदिम प्रतिरूप ही उन दिनों प्रदर्शित होते रहे होंगे। फिर भी उसका मूल तना तो तब भी वैसा ही रहा होगा, जैसा कि आज वह है। उसी तने से युग-युग में क्रमशः नई-नई डालियाँ और उपशाखाएँ फूटती चली गईं। फलतः इस महान् वृक्ष का विस्तार भी उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया। कौन जानता है, आगे चलकर इसमें अभी और कौन-कौन सी नई शाखें फूटेंगी!

जैसा कि पृष्ठ ७ पर दिये गये चित्र से स्पष्ट है, जीवधारियों के विकास-क्रम के इस महान् वंशवृक्ष के मूल में एककोशीय वर्ग के 'अमीबा', 'रेडियोलेरिया', 'फ़ोरेमिनीफ़ेरा', आदि वे अति सूक्ष्म और सरलतम प्राणी हैं, जिन्हें हम बिना सूक्ष्मदर्शक यंत्र की सहायता के नहीं देख पाते। इसी वर्ग में विभिन्न रोगों को उत्पन्न करनेवाले वे विविध कीटाणु भी सम्मिलित हैं, जो 'परोपजीवी' अर्थात् दूसरों के शरीर पर बसर करने-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाले होते हैं। ये हमारे महान शत्रुओं में से हैं। परंतु इस समुदाय के बहुतेरे जीव हमारे लिए उपयोगी और लाभदायक भी हैं। इन आदि प्राणियों में से कई तो महान् रचयिताओं के रूप में धरती के इतिहास में नाम पा गये हैं, जिनमें सबसे प्रसिद्ध करोड़ों वर्षों तक अपनी ठठरियों का अंबार लगाकर चूने या खड़िया मिट्टी की चट्टानों के स्तर उपजानेवाले वे एककोशीय समुद्री जीव हैं, जिनका उल्लेख इस पुस्तकमाला के पिछले एक खंड में धरती की जीवन-कहानी के सिलसिले में किया जा चुका है। आदि जीवों का यह वर्ग वैज्ञानिक बोली में 'प्रोटोज़ोआ' के नाम से पुकारा जाता है। इस वर्ग के कुल मिलाकर कोई दस हज़ार जाति के जीवों की गणना अब तक की जा चुकी है!

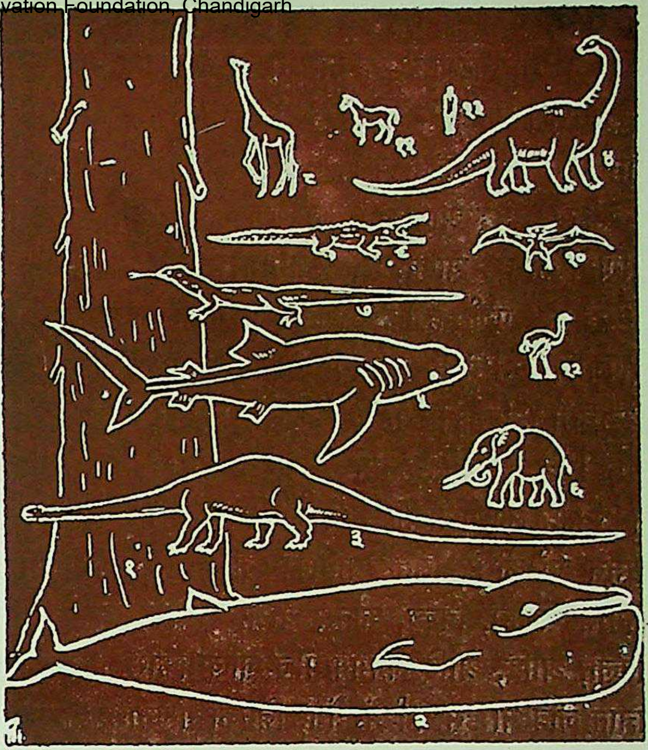

वड़े आकार के कुछ प्राणियों के डीलडौल की पारस्परिक तुलना। १. तुलनार्थ, संसार के सबसे ऊँचे वृक्ष 'सिकोआ' का तना (कुल ऊँचाई ३५० फ़ीट) २. सबसे बड़ा वर्त्तमान प्राणी तिमि या ह्वेल (लंबाई १०० फ़ीट); ३. जाइजेण्टोसॉरस नामक सबसे बड़ा विलुप्त प्राणी (लंबाई लगभग १०० फ़ीट); सबसे ऊँचा विलुप्त प्राणी ब्रेकियोसॉरस (ऊँचाई ३० फ़ीट); ५. सबसे बड़ी मछली ह्वेल शार्क (६० फ़ीट); ६. सबसे बड़ा वर्त्तमान स्थलचर हाथी (ऊँचाई १०॥ फ़ीट); ७. सबसे बड़ी विलुप्त छिपकिली (लगभग ५० फ़ीट); ८. सबसे ऊँचा वर्त्तमान स्थलचर 'जिराफ़' (ऊँचाई २० फ़ीट); ९. सबसे बड़ा वर्त्तमान जलस्थलचर उरंगम मगर (लंबाई लगभग ३० फ़ीट); १०. सबसे बड़ा विलुप्त पक्षी 'टेरानोडॉन' (२५ फ़ीट); ११. घोड़ा (ऊँचाई ६॥ फ़ीट); १२. सबसे बड़ा वर्त्तमान पक्षी शुतुर्मुग (ऊँचाई ७ फ़ीट); १३. मनुष्य (औसत ऊँचाई ६ फ़ीट)।

तदुपरान्त दूसरा वर्ग उन बहुछिद्री मध्यम-वर्गीय सूक्ष्म प्राणियों का है, जिनके प्रसिद्ध प्रतिनिधि के रूप में समुद्र में पाये जानेवाले 'स्पंज' नामक बहुछिद्री जीवों को हम पहचानते हैं। इस बहुछिद्री वर्ग का वैज्ञानिक नाम 'पोरिफ़ेरा' है। इस वर्ग के जीवों का मुख्य लक्षण यह है कि इनके शरीर में बहुत-से छिद्र होते हैं, जिनके रास्ते वे जल को सोख लेते हैं। ये अधिकतर समुद्र आदि जलाशयों में उपनिवेश बसाकर रहते हैं। लगभग ढाई हज़ार जाति के स्पंजों का पता वैज्ञानिकों को है। इन्हीं के भाई-बन्धु मूँगे या प्रवाल नामक वे बहुकोशीय सरल जीव हैं, जो कि वृक्षों की तरह निरंतर अपनी शाखाओं का विस्तार करते हुए अपने रक्तवर्ण कंकालों का अंबार रच-रचकर, छिछले समुद्रों में लंबे-चौड़े द्वीपों की रचना करने के लिए मशहूर हैं। इसी समुदाय का अन्य एक सरल बहुकोशीय आदि प्राणी 'लस-मछली' (या जेली फ़िश) नामक वह जीव है, जिसके समूह प्रायः प्रत्येक समुद्रतट पर जल की ऊपरी सतह पर तैरते देखे जा सकते हैं। इन जंतुओं की एक विशेषता यह होती है कि इनके शरीर पर एक प्रकार के डंक मारनेवाले बारीक सूत-से होते हैं, जो छोटे-छोटे कोशों में बंद रहते हैं। इसीलिए इनसे छू जाने पर हमारे बदन में जलन-सी होने लगती है। 'लस-मछली' इनका नाम इसलिए पड़ा है कि इनका शरीर, जो दबाते ही पिचक जाता है,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक प्रकार के लसलसे पदार्थ का बना होता है। जीवधारियों के वंशवृक्ष की यह तृतीय शाखा वैज्ञानिकों की भाषा में 'सीलेनटेराटा' के नाम से पुकारी जाती है। इस वर्ग के अन्य एक अनूठे प्रतिनिधि 'एनीमोन' या समुद्री फूल नामक वे प्रसिद्ध जलजीव हैं, जो बाहरी रूप-रंग में एकदम वनस्पतिवर्ग के पुष्पित पौधों जैसे जान पड़ते हैं। इनका विशेष विवरण आगे के एक प्रकरण में तुम्हें पढ़ने को मिलेगा।

इसके बाद आती है केंचुवा, जोंक, चुन्ने आदि गंडेदार और बिना गंडे के कृमि वर्ग के कतिपय क्षुद्र प्राणियों की वह शाखा, जो स्थानाभाव के कारण पृ० ७ के चित्र में दिग्दर्शित न हो पाई है, तथापि इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि इसके कई प्रतिनिधि अन्य जीवों के शरीर में रहकर गुज़र-बसर करनेवाले मशहूर परोपजीवियों में से हैं। पाँचवीं और छठी शाखाएँ क्रमशः सितारा-मछली, समुद्री ककड़ी और खीरे आदि कंटकचर्मी ('एकिनोडर्मा') वर्ग के एवं सीपी, शंख, कौड़ी आदि घोंघा-वंश के जीवधारियों की हैं, जो पृ० ७ के चित्र में निर्देश-संख्या ६ और ७ द्वारा सूचित हैं। इन्हीं के समकक्ष की एक महत्त्वपूर्ण शाखा—जो दो स्वतंत्र उपशाखाओं के रूप में विभक्त होकर बढ़ती चली गई है—जोड़दार पैरवाले क्षुद्र जीवों के उस विस्तृत वर्ग की है, जिसे वैज्ञानिकों की बोली में 'आर्थोप्रोडा' संज्ञा प्रदान की जाती है। इस महावर्ग में झींगा, केंकड़ा, बिच्छू, काँतर, चींटी, दीमक, मच्छर, मकड़ी, बर्र, मक्खी, खटमल, जूँ, टिड्डी, पतिंगा, तितली, आदि, आदि लगभग पाँच लाख प्रकार के ज्ञात जीव सम्मिलित हैं! इनके अलावा और भी कितने अज्ञात जीव भी इस वर्ग में होंगे, जिनकी गणना अभी नहीं हो पाई है! निस्संदेह यही जीवधारियों का सबसे विस्तृत समूह है, क्योंकि इस वर्ग की प्रत्येक श्रेणी के जीवों की संख्या कोटि-कोटि की सीमा तक पहुँची हुई है! कहते हैं, यदि किसी तराजू के एक पलड़े में एक ओर इस वर्ग के समस्त जीव रक्खे जायँ और दूसरी ओर अन्य सभी वर्गों के छोटे-बड़े सभी जीव-जंतु भर दिए जाएँ तो भी इन जोड़दार प्राणियों का ही पलड़ा भारी पड़ेगा—वे परिमाण में अन्य जीवों से लगभग पाँच गुना अधिक निकलेंगे!

जीवधारियों के वंशवृक्ष की अब तक की शाखें 'अपृष्ठवंशी' (अर्थात् बिना रीढ़ के) प्राणियों के बृहत् समुदाय की ही थीं, जोकि जंतु-विकास की निचली मंज़िल की श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इसके उपरान्त अब हम उत्तरोत्तर क्रम से इस वंशवृक्ष की उन ऊपरी डालियों की झाँकी पाते हैं, जो कि 'पृष्ठवंशी' या रीढ़वाले प्राणियों के विभिन्न वर्गों की शाखाएँ हैं। उपर्युक्त दोनों समुदायों की संधि-रेखा पर अवस्थित, विकासवाद के सिद्धान्त की ज्वलन्त साक्षी के रूप में जीवधारियों का एक अनूठा वर्ग उन बिना खोपड़ीवाले किन्तु रीढ़दार प्राणियों की दिलचस्प श्रेणी का है, जो 'प्रोटोकारडाटा' या उपपृष्ठवंशियों के नाम से पुकारे जाते हैं। ये जीव असली रीढ़दार और बिना रीढ़ के प्राणियों के बीच की उपज हैं। इनमें से कई के तो रीढ़ भी नहीं है, फिर भी गलफड़े के छिद्रों जैसे पृष्ठवंशियों के कुछ लक्षण उनमें हैं। पृ० ७ के चित्र में इनकी शाखा निर्देश-संख्या ८ द्वारा सूचित है।

पृष्ठवंशी-समुदाय की सीमा में प्रवेश करने पर हमें उत्तरोत्तर विकास के क्रम से 'मत्स्य' (अर्थात् भाँति-भाँति की मछलियों), 'मंडूक' (मेंढक जैसे उभयचर प्राणियों), 'उरंगम' (छिपकिली, गोह, बिसखपरा, मगर, कछुवा, सर्प आदि रेंगकर चलनेवाले जीवों), 'पक्षी' (भाँति-भाँति के पखेरुओं या उड़नेवाले जीवों) तथा 'स्तनपोषी' (स्तन से दूध पिलाकर संतान का पालन करनेवाले विविध प्रकार के उच्च कोटि के जीवधारियों) आदि वर्गों की शाखाएँ जीवन के इस वंश-विकास-वृक्ष पर से निकली हुई दिखाई देती हैं। पृ० ७ के चित्र में ये

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शाखाएँ निर्देश-संख्या ६, १०, ११, १२, १३ और १४ द्वारा सूचित हैं। इनमें स्तनपायियों के अनेक उपवर्ग हैं, यथा तिमि-वर्ग (ह्वेल, सूँस आदि), कँगारू-वर्ग, शफ-वर्ग (घोड़ा, गाय आदि), मांसभक्षी वर्ग (सिंह, बाघ, तेंदुआ, बिल्ली, भेड़िया, सियार, लोमड़ी, कुत्ता, भालू, बिज्जू, लकड़बग्घा आदि); कुतरकर खानेवाले जीवों का वर्ग (चूहा, गिलहरी, खरगोश, साही आदि), कीटभक्षी वर्ग (छछूँदर आदि), करपक्षी वर्ग (चमगादड़ आदि), और 'प्राइमेट्स' या प्रधानभागीय जीवों का वर्ग (जैसे लीमूर, वानर, बनमानुस आदि)। इन्हीं उपवर्गों में से अंतिम वर्ग का सदस्य मनुष्य है, जो सब प्राणियों से अधिक बुद्धिशील होने के नाते जीवधारियों के इस विकास-वृक्ष की चोटी पर की शाखा पर स्थित है।

'विकासवाद' की पहेली और स्वभाव, आकृति; डीलडौल, बर्त्ताव आदि संबंधी विविध जीवधारियों की अपनी-अपनी विशेषताएँ

अमीबा जैसे एककोशीय सरलतम आदि प्राणी से लेकर मनुष्य जैसे मस्तिष्क के धनी, अत्यंत पेचीदा और चरमतम विकास पर पहुँचे हुए स्तनपोषी जीव तक, समस्त जंतु-जगत् के प्राणियों की लगभग दस लाख जातियाँ-उपजातियाँ वैज्ञानिकों द्वारा सूचित की जाती हैं! इन अगणित प्रकार के जीव-जंतुओं के डीलडौल, वर्ण, आकृति, शरीर-रचना, स्वभाव, बर्त्ताव, आदि में विभिन्नताओं का पाया जाना और विकास की स्थिति के अनुरूप उन सब में अपनी-अपनी विशिष्टताओं का होना एक नितान्त स्वाभाविक बात है। भला, भाँति-भाँति की खूबियों से भरी हुई इतनी लंबी-चौड़ी जीव-सृष्टि का विगतवार विवरण इस छोटी-सी पुस्तक के दायरे में कैसे किया जाय! इसके लिए तो आवश्यक है कई सौ पृष्ठों का एक स्वतंत्र ग्रंथ अथवा अनेकों अलग-अलग पुस्तकें। अतः यहाँ तो इस अद्भुत जीव-जगत् की एक परिचयात्मक भूमिका मात्र हम दे रहे हैं और अगले प्रकरणों में भी उसके कुछ प्रतिनिधि नमूनों—अर्थात् अनेकानेक विचित्रताओं से भरे हुए उसके कुछ मनोरंजक सदस्यों—का ही हाल हम तुम्हें बताने जा रहे हैं। इन अलग-अलग प्रकार के जीवों की आगे प्रस्तुत की गई जीवन-झाँकियों में उन प्राणियों की रहन-सहन और उनकी प्रकृति-विषयक अनेक दिलचस्प बातें तुम्हें ज्ञात हो सकेंगी, तथापि अभी बहुतेरी बातें ऐसी हैं, जो इस पुस्तक के परिमित दायरे में नहीं आ सकेंगी। इन सब बातों पर आगे चलकर इस पुस्तकमाला के किसी स्वतंत्र खंड ही में विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला जा सकेगा।

साथ ही एक प्रश्न और है और वह यह है कि इन विविधताओं के बावजूद एक श्रेणीबद्ध विकास-शृंखला का प्रदर्शन करती हुई यह जीव-सृष्टि क्योंकर इस पृथ्वीतल पर विकसित हुई, और क्योंकर समय-समय पर उसके अनोखे रूप-प्रतिरूप प्रकट होकर, कई तो सदा के लिए विलुप्त हो गए और बहुतेरे आज भी इस धरती पर अपना बोलबाला स्थापित किये हुए हैं? निश्चय ही यह एक जटिल और विवादास्पद प्रश्न है। इसका किंचित समाधान तो इस पुस्तकमाला के पिछले एक खंड में धरती की जीवन-कथा के विवरण के अंतर्गत किया जा चुका है, जहाँ पर कि इस धरती पर जीवन के विकास की पृष्ठभूमि का एक विस्तृत चित्र हम प्रस्तुत कर चुके हैं। फिर भी यह प्रश्न ऐसा एक व्यापक प्रश्न है, जिसका उत्तर थोड़े में नहीं दिया जा सकता। वह 'विकासवाद' के पूरे विषय को अपनी बाँहों में समेट लेता है। अतएव इसका भी निराकरण इस छोटे से प्रकरण में होना संभव नहीं। इसके लिए भी पूरी एक पुस्तक चाहिए, जोकि आगे हम कभी प्रस्तुत करेंगे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जानवरों की आयु

जंतु-जगत् के अनेक आश्चर्यों में से एक यह भी है कि भिन्न-भिन्न प्राणियों की अपनी-अपनी एक सुनिश्चित-सी आयु पायी जाती है, जिसका क्या रहस्य है यह आज भी वैज्ञानिक नहीं बता पाते। उदाहरणार्थ, यह किसी के भी समझ में नहीं आता कि क्यों सिंह, ऊँट या चिम्पेंज़ी जैसे कतिपय जीव तो पैंतीस या चालीस साल से अधिक ज़िन्दा नहीं रह पाते, जब कि कई एक मछलियाँ और कछुए सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहते देखे जाते हैं ! अथवा पक्षी-जगत् के गरुड़, राजहंस, तोता या कौए जैसे पखेरू तो शतायु अर्थात् सौ वर्ष तक जीनेवाले होते हैं और बेचारे सारस या मोर जैसे दूसरे कुछ पक्षी तीस वर्ष से अधिक उम्र तक क्यों नही पहुँच पाते ! इस संबंध में कुछ लोगों की यह दलील है कि आयु का दारोमदार शायद डीलडौल पर रहता है। इस बारे में वे 'तिमि' (या ह्वेल मत्स्य) अथवा हाथी का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जो दोनों ही डीलडौल में जंतु-जगत् के सिरमौर होते हुए प्रसिद्ध दीर्घजीवी भी हैं। तिमि या ह्वेल तो न केवल दुनिया का सबसे बड़ा प्राणी ही है, बल्कि वही सबसे अधिक आयु भी पाये हुए है ! परन्तु दूसरी ओर यह भी तो कहा जा सकता है कि यदि आयु आकार-प्रकार ही से संबद्ध होती तो भला लघुकाय तोता क्योंकर सौ वर्ष की उम्र तक पहुँचते पाया जाता और गाय या घोड़े जैसे बड़े डीलडौल के प्राणी भला पचीस वर्ष की उम्र ही तक पहुँचते-पहुँचते काल के गाल में क्यों समा जाते ! सच तो यह है कि आयु का रहस्य शायद प्राणी के डीलडौल में नहीं, प्रत्युत उसके शरीर की वृद्धि और विकास का नियंत्रण करनेवाली कतिपय ग्रंथियों एवं रहन-सहन की परिस्थितियों में छिपा होगा, जिनके कि अधीन कतिपय जीव-रूप तो जीवन-संघर्ष में अधिक सफलीभूत हो काफ़ी समय तक अपने आसपास की परिस्थितियों में टिके रह पाते होंगे और शेष न टिक पाने के कारण शीघ्र ही लथड़ जाते होंगे।

लो, अब विभिन्न प्राणियों में से कुछ की उम्र के अद्भुत आँकड़े भी सुन लो ! जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, आज के प्राणि-जगत् में सबसे अधिक काल तक जीवित रहनेवाला जानवर 'तिमि' (ह्वेल) है, जिसकी कि उम्र चार सौ से पाँच सौ वर्ष तक की कूती जाती है ! उसके बाद दीर्घजीवियों में सम्मान का दूसरा स्थान प्राप्त है एक जाति के स्थलवासी कछुओं को, जो तीन-चार सौ वर्ष या उससे भी अधिक काल तक ज़िन्दा रहते पाये गये हैं ! तीसरा स्थान 'कार्प' या 'पाइक' नामक मछलियों का माना जाता है, जिनकी उम्र दो सा वर्ष बताई जाती है ! तदुपरान्त क्रमशः राजहंस (१५० वर्ष), हाथी (१२५-१५० वर्ष), गरुड़ (१००-१०५ वर्ष), मगर (१०० वर्ष), कौआ (१०० वर्ष), तोता (६०-१०० वर्ष), बत्तख (८० वर्ष), बगुला (६० वर्ष), भालू (५० वर्ष), सिंह, ऊँट, चिम्पेंज़ी और ओरेंगउटाङ्ग (३५-४० वर्ष), कबूतर, सारस आदि (१८-२० वर्ष), तथा कुत्ता, बिल्ली, भेड़, बकरी आदि (१३-१८ वर्ष) का नंबर आता है ! सबसे कम आयु 'मे फ़लाइ' नामक मक्खी की होती है, जो केवल चार घंटों की अल्प अवधि ही में अपनी इहलीला समाप्त कर देती है ! इसी तरह 'ड्रेगन फ़लाइ' नामक अन्य एक पतिंगा भी केवल सात सप्ताह तक और टिड्डी चार सप्ताह तक ही अपनी ज़िन्दगी को क़ायम रखते पायी जाती है। वैसे, यह बात नहीं है कि सभी कीट-पतिंगें अल्पजीवी ही हों ! उदाहरणार्थ, कुछ चींटियाँ दस-पंद्रह वर्ष तक और झींगुर जाति के कतिपय कीट पंद्रह-सोलह वर्ष तक जीवित रहते भी पाये गये हैं ! अन्य अपृष्ठवंशी दीर्घजीवियों में 'क्लैम' नामक घोंघे वर्ग का एक प्राणी है, जिसकी कि आयु संभवतः सौ वर्ष तक की होती है !

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

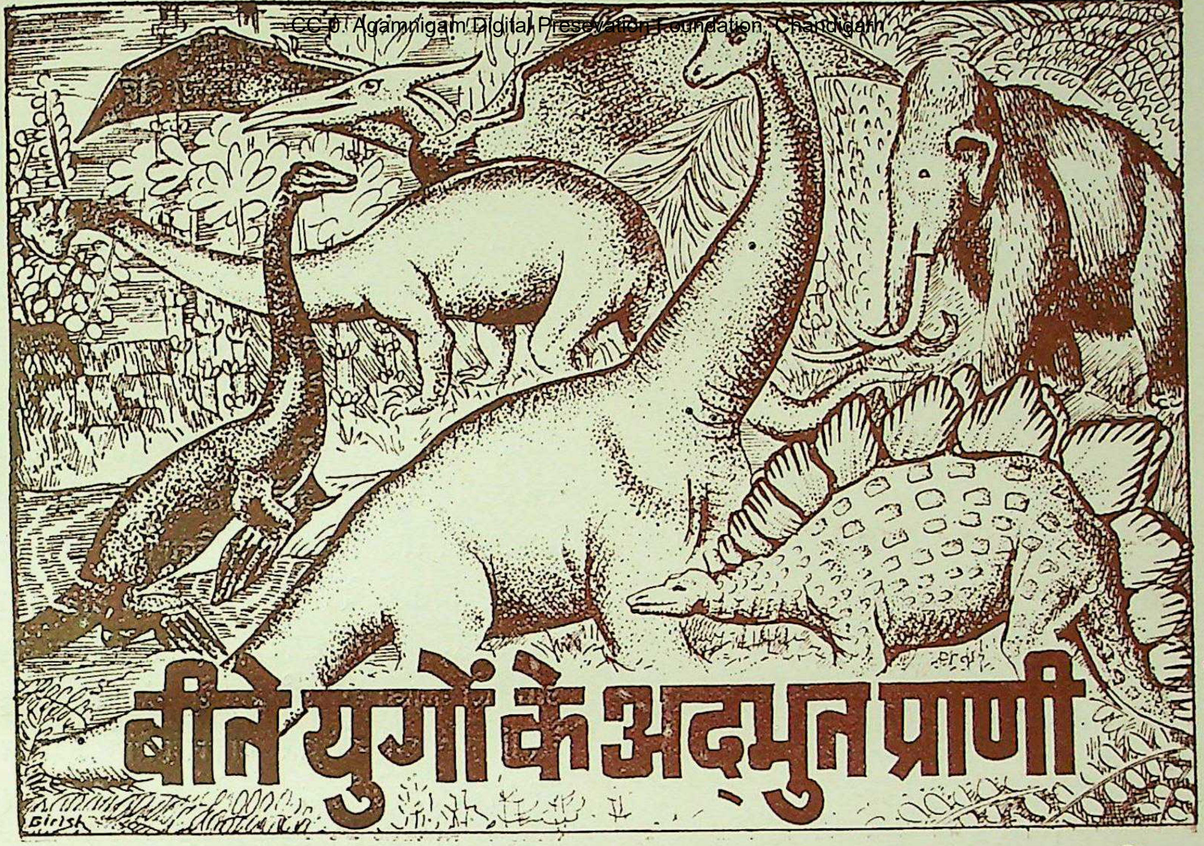

बीते युगों के अद्भुत प्राणी

इस पुस्तकमाला के पिछले एक खंड में, पृथ्वी की जीवन-कहानी का वर्णन करते हुए, हम तुम्हें बता चुके हैं कि किस तरह धरती पर पहलेपहल जीवन का प्रवेश हुआ था ! किस तरह करोड़ों वर्षों तक भाँति-भाँति के साँचों में ढाल-ढालकर और निरन्तर चालू रहनेवाली अपनी महान् प्रयोगशाला में भिन्न-भिन्न कसौटियों पर कस-कसकर, महाकलाकार प्रकृति अंत में जीवधारियों के वे वर्त्तमान रूप प्रकट कर पाई, जो कि उसकी इस अनूठी प्रदर्शनी में आज दिग्दर्शित हैं ! इन विद्यमान जीव-रूपों के आदि पुरखे—जो कि अलग-अलग युगों में अलग-अलग भेस धारण कर धरती के इस रंगमंच पर क्रमशः उतरे और कुछ लाख या करोड़ वर्षों तक अपनी लीला दिखाकर अंत में सदा के लिए अंतर्द्धान होते देख पड़े—निस्संदेह आज के अपने इन वंशजों की तुलना में वैसे ही भोंडे, बेडौल, अविकसित तथा चमत्कारहीन रहे होंगे, जैसे कि रेल, हवाई जहाज़ आदि आविष्कारों के प्रारंभिक रूप आज के अपने विकसित नमूनों के आगे जान पड़ते हैं ! फिर भी, ऐतिहासिक दृष्टि से जीव-विकास की कहानी में उनका अपना जो एक महत्त्व का स्थान बन चुका है, वह तो सदैव अटल रहेगा ही । साथ ही संग्रहालयों में एकत्रित भाँति-भाँति की दुर्लभ पुरातत्त्व-सामग्री की तरह, हमारे लिए वे जो एक आश्चर्य की वस्तु बन चुके हैं, सो भी कभी मिटने के नहीं ! और कुछ नहीं तो उनमें से कई के वे असाधारणतया भारी-भरकम डीलडौल और दानवीय रूप ही हमें क्या कोई कम विस्मित एवं आश्चर्यचकित करते रहेंगे, जिनकी कि तुलना के कोई भी नमूने आज के दिन इस धरती पर देखने को नहीं मिलते ! विशेषकर, मध्यकालीन कल्प के वे दानवाकार उरंगम तो सदैव ही हमारे लिए एक दिलचस्पी की चीज़ बने रहेंगे, जिनके आकार के प्राणी फिर दुनिया के आँगन में कदाचित् ही पैदा हो सकेंगे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

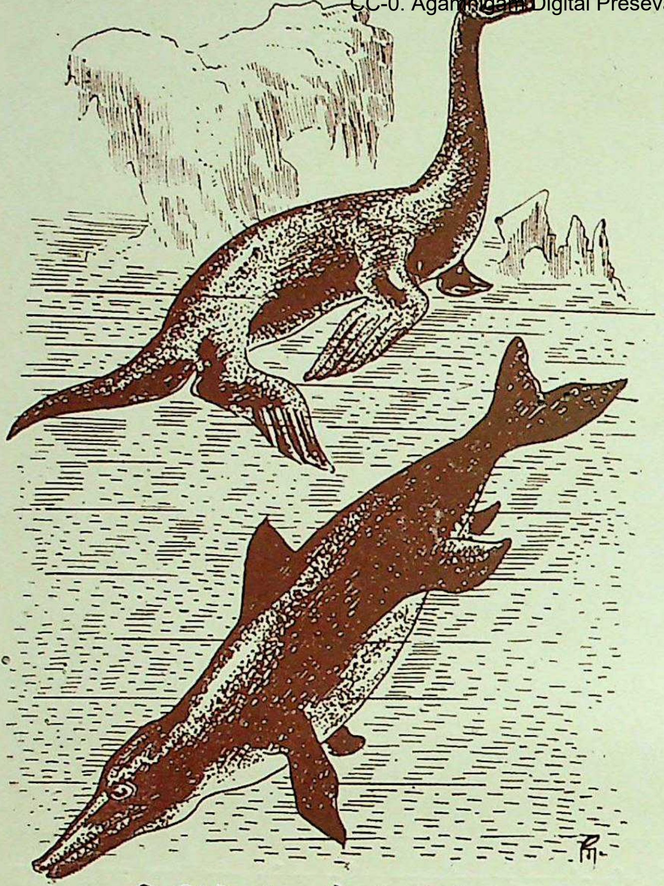

प्लिसियोसॉरस और इक्थियोसॉरस

(ऊपर) हंस की-सी लंबी गरदन, सूँस या कछुए के-से बदन और तैरने में मदद देनेवाले डैनेनुमा पैरोंवाला दानवाकार उरंगम 'प्लिसियोसॉरस' (लंबाई ४० फ़ीट) ; और (नीचे) मगर के-से मुँह और शार्क मछली के-के बदनवाला राक्षसी जीव 'इक्थियोसॉरस' (लंबाई ४० फ़ीट), जिन्होंने आज से पंद्रह-बीस करोड़ वर्ष पूर्व जलमंडल पर अपना प्रभुत्व जमा रक्खा था !

सौ फ़ीट लंबी और तीस फ़ीट ऊँची ठठरियाँ

तुम पूछ सकते हो कि यदि ये जीव आज पृथ्वी पर विद्यमान नहीं हैं तो फिर उनके बारे में जो जानकारी हम लोगों को है, वह कहाँ से और कैसे प्राप्त हुई होगी ? इसका उत्तर इनकी उन अद्भुत ठठरियों से हमें मिलता है, जो कि वैज्ञानिकों को भूपृष्ठ की प्राचीन चट्टानों के स्तरों के बीच प्रस्तरीभूत रूप में जगह-जगह दबी हुई मिली हैं । इनमें से कई तो लगभग सौ फ़ीट लंबी हैं और क़द में अनेकों पचीस-तीस फ़ीट तक ऊँची हैं ! भला, इतने लंबे-चौड़े डीलडौल के ये भीमकाय राक्षसी प्राणी जीवितावस्था में कैसे भयावने दिखाई देते रहे होंगे ! ये प्रस्तरीभूत अस्थिपंजर, अर्थात् समय के प्रभाव से पत्थर बन जानेवाले करोड़ों वर्ष पूर्व के ये कंकाल, जिन्हें वैज्ञानिकों ने जोड़-जोड़कर अजायबघरों में प्रदर्शित कर रक्खा है, हमें मूक रूप में उन अनोखे और भयावने प्राणियों की कहानी सुनाते हुए मानों हमारे कल्पनापट पर करोड़ों वर्ष पूर्व के उनके जीवन की सारी झाँकी चित्रित-सी कर देते हैं ! उन बीते युगों के सभी नमूनों का विवरण प्रस्तुत करने के लिए तो न यहाँ स्थान ही है, न उसकी आवश्यकता ही है ! इनके विकास की गाथा तो इस पुस्तक-माला के द्वितीय खंड में धरती की आत्मकथा के प्रकरण में हम दे ही चुके हैं । यहाँ केवल कुछ गिने-चुने असाधारण और अद्भुत प्राणियों का ही विवरण हम तुम्हारे लिए उदाहरणार्थ एवं मनोरंजन के हेतु प्रस्तुत कर रहे हैं ।

पंद्रह से बीस करोड़ वर्ष पूर्व के महासागरों के स्वामी—प्लिसियोसॉरस और इक्थियोसॉरस

पृथ्वी के इतिहास का आज से पंद्रह-बीस करोड़ वर्ष पूर्व का मध्यकालीन जीव-सृष्टि-कल्प यदि 'दानव-युग' के नाम से पुकारा जाय तो कहीं अधिक सार्थक नाम वह होगा, क्योंकि उन दिनों क्या धरती और महासागर और क्या आसमान, सभी पर ऐसे भीमकाय, डरौने और दानवों के-से जीवधारियों का बोलबाला छा गया था, जिनकी कि कल्पना करके भी आज हमारे रोंगटे खड़े होने लगते हैं ! जिन दो भयावने जीवों का उल्लेख हम यहाँ करने जा रहे हैं, वे भी उन्हीं प्राणियों में से थे । वे जलमंडल पर अपना आतंक जमाए हुए थे, जब कि गोह की शक्ल के उनके अन्य समकालीन दानवों ने स्थलभाग पर अपना साम्राज्य जमा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रक्खा था। इनमें प्लिसियोसॉरस था, [illegible] लंबी गरदन और सूँड़वाला कछुए के-से बदनवाला एक अनोखा जीव, जिसकी लंबाई लगभग ४० फ़ीट थी। यह मूल रूप में तो, संभवतः, एक स्थलचर उरंगम था, परन्तु शायद बदलती हुई परिस्थितियों से विवश होकर इसे अंत में जल का आश्रय ग्रहण कर लेना पड़ा था। इसीलिए इसके हाथ-पैर बदलकर, क्रमशः, एक प्रकार के पतवारनुमा चौड़े डैनों जैसे अंगों में परिणत हो गये थे। इनसे बड़ी आसानी से वह तैर लेता था। लेकिन महासागरों का निवासी बन जाने पर भी यह भीमकाय प्राणी अन्य स्थलचरों की भाँति केवल फेफड़ों से ही साँस ले पाता था—उसे मछलियों की भाँति पानी में डूबे रहकर साँस लेते रहने की सुविधा प्राप्त न थी। फलतः अपना सारा शरीर जल में डुबाये रहने पर भी हवा के लिए वह अपना मुँह प्रायः जल से बाहर ही निकाले रहा करता होगा। इस काम में उसकी लंबी गरदन विशेष रूप से सहायक होती रही होगी।

इस दैत्य के दाँत बड़े पैने, मज़बूत और कराल थे और मगर की दंतपंक्तियों की भाँति उसके सशक्त जबड़े में वे शिकंजेनुमा ढंग से लगे रहते थे। यह न केवल भाँति-भाँति के जलजीवों का ही शिकार करके उनसे अपना जीवन-निर्वाह किया करता रहा होगा, प्रत्युत अपनी लंबी गरदन और मज़बूत जबड़ों की बदौलत, आज के मगर-घड़ियाल आदि की तरह, कभी-कभी तटवर्ती भूभाग के असावधान जीव-जंतुओं को भी अपनी लपेट में ले लेने से न चूकता होगा। छोटे-बड़े आकारों की, इस जंतु की कई एक ठठरियाँ संसार के विभिन्न भागों से प्राप्त हुई हैं। उनमें कई तो तीन-चार फ़ीट तक की छोटी भी हैं। कई के पेट में मछलियों और उरंगम पक्षियों की हड्डियों के साथ-साथ कंकड़-पत्थरों के टुकड़े तक मिले हैं, जिन्हें मगर, शुतुर्मुर्ग़ आदि की तरह यह अपना आहार पचाने के लिए, संभवतः, उदरस्थ कर लेता था! यह नहीं कहा जा सकता कि

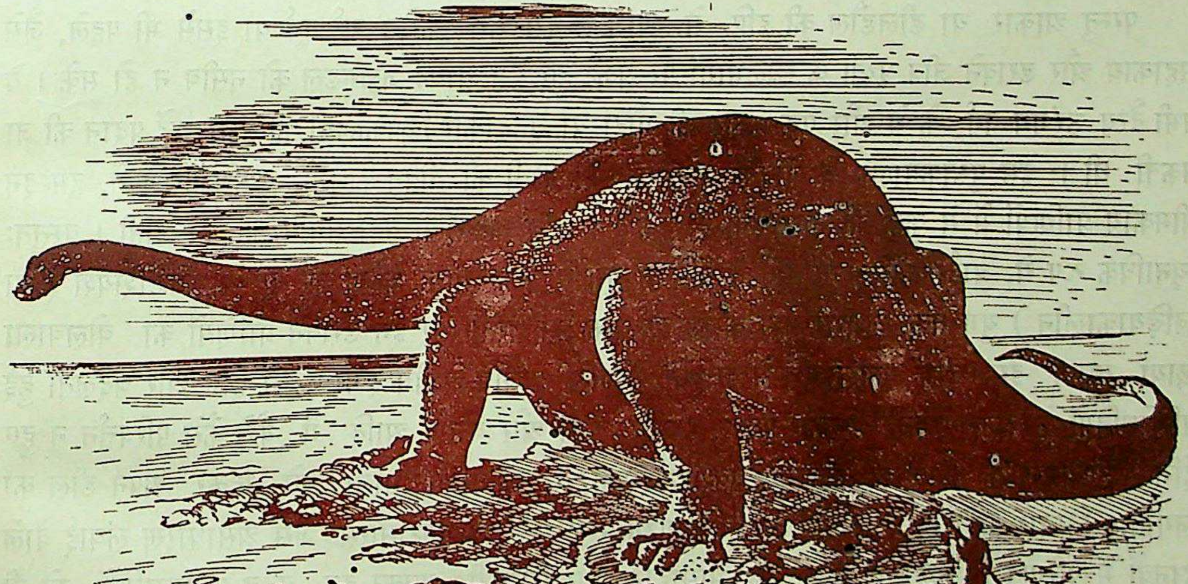

प्राचीनकाल का सबसे विशालकाय विलुप्त प्राणी—'जाएजेएटोसॉरस'

ब्राण्टोसॉरस, एटलाण्टोसॉरस या डिप्लोडोकस की जाति के इस भीमकाय गोहनुमा विशालाकृति शाकाहारी जीव की एक ठठरी अफ्रीका के भूभाग से प्राप्त हुई है। कहते हैं, इसकी कुल लम्बाई १०० फ़ीट के लगभग होती थी। आकार की तुलना के लिए, चित्र में पास ही मैं एक कल्पित मानवाकृति भी खड़ी कर दी गई है। इससे इसकी विशालता का अंदाज़ कर लीजिए!

यह जीव अंडज था या कोई जरायुज प्राणी। परन्तु यदि यह अंडज ही रहा होगा तो निश्चय ही अंडे देने के लिए इसे कभी-कभी स्थल की भी शरण लेनी पड़ती रही होगी।

Arya Samaj Foundation Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस ऊपर उल्लिखित दानव-युग का दूसरा विकराल जलजीव--'इक्थियोसॉरस'--भी आकार में २ से ४० फ़ीट तक लंबा एक शिकारी प्राणी था, परन्तु उसकी विशेषता यह थी कि एक तो उसकी गरदन प्लिसियोसॉरस जैसी लंबी न होकर मत्स्य की-सी थी एवं दुम भी छिपकिलियों या उरंगमों जैसी न होकर ठीक मछलियों जैसी ही थी। साथ ही उसके बदन पर मछलियों की तरह के डाँड़नुमा डैनों के दो जोड़े पाये जाते थे। इसके अतिरिक्त एक डैना प्रायः पीठ के ऊपर भी होता था। ये डैने क्या काम देते थे, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इनसे काम लेने के बजाय वह केवल अपनी लचीली दुम की ही मदद से तैरता था। जो भी हो, यह जलजंतु भी एक भयावना प्राणी था, जो लगभग दस करोड़ वर्ष तक (अर्थात् ट्रायेसिक युग के मध्यकाल से लेकर ठेठ क्रिटैशियश युग के अंत तक) इस दुनिया के जलभागों पर अपना दबदबा स्थापित किये रहा! इसके दाँत तीखे तो थे, पर छोटे होते थे, जिससे ज्ञात होता है कि यह नन्हें-नन्हें जलजंतुओं ही को खाकर अपना निर्वाह किया करता रहा होगा। इस प्राणी की असंख्य ठठरियाँ प्रस्तरविकल्पों के रूप में प्राप्त हुई हैं, जिनमें से कई के तो उदर में इसी के छोटे-छोटे बच्चों की भी ठठरियाँ मिली हैं। यह इस बात की सूचना है कि ये प्राणी अंडज न थे, बल्कि तिमि या ह्वेल की तरह अपने बच्चों को पेट में ही बड़ा करके उन्हें पैदा किया करते थे।

दानव-युग के विविध स्थलचर एवं जलस्थलचर दैत्याकार उरंगम या 'डिनोसॉर'

परन्तु आकार या डीलडौल की दृष्टि से, आज से दस-बीस करोड़ वर्ष पूर्व या इससे भी पहले, जैसे महाकाय और डरावने जीव पृथ्वी के स्थलभागों पर प्रकट हुए वैसे शायद जलमंडल को नसीब न हो सके। ये सभी दैत्य उरंगम वर्ग के थे और एक प्रकार की गोहों या बृहदाकार छिपकलियों की संज्ञा इन्हें प्रदान की जा सकती थी। इस पुस्तकमाला के पिछले एक खंड में, पृथ्वी की जीवन-कहानी के सिलसिले में, हम इन भीमकाय प्राणियों में से कुछ की नामावली दे चुके हैं। परंतु वह सूची वहीं समाप्त नहीं हो जाती। वस्तुतः न्यूनाधिक रूप से, बाईस करोड़ वर्ष पूर्व के पर्मियन युग से लेकर बारह करोड़ वर्ष पूर्व के क्रिटैशियश (या खड़ियाकालीन) युग तक, लगभग दस करोड़ वर्ष तक इस धरती पर इन डरावने प्राणियों का बोलबाला छाया रहा। इस दीर्घ कालावधि में इन्होंने कितने अजीब-अजीब रूप न धरे होंगे और बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप इनके आकार-प्रकार, शरीर-रचना और बर्त्ताव आदि में कैसे-कैसे परिवर्त्तन न हुए होंगे! उदाहरण के लिए कई एक यदि विशुद्ध शाकाहारी या वनस्पतिभोजी बने रहकर अपने डील का लगातार विस्तार करते हुए 'डिप्लोडोकस', 'ब्राएटोसॉरस' या 'जाएजेएटोसॉरस' जैसे असाधारण लंबाई वाले दानवों में परिणत हो गए, तो अन्य कई मांसाहारी और शिकारी बनकर इन बृहत् शरीरधारियों को ही अपने जीवन-निर्वाह का साधन बना 'टाइरेनोसॉरस' जैसे अति भयावने और क्रूर जीवों की झाँकी उन्हीं युगों में इस धरातल पर दरसा गए! कुल मिलाकर कोई पाँच हज़ार से भी अधिक प्रकार के इन डिनोसारों का पता वैज्ञानिकों को अब तक प्राप्त हुआ है, जिन्हें मुख्य रूप से चार वर्गों में बाँट दिया गया है। प्रथम, पशुओं के-से पैरवाले; दूसरे, पक्षियों के-से पैरवाले; तीसरे, छिपकिलियों या गोहों के-से पैरवाले; और चौथे,

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

कवचधारी ! इनके शाकाहारी और मांसाहारी, ये दो महाविभाग किये जा सकते हैं मांसाहारियों या आमिषभोजियों में कई ऐसे भी थे, जो अन्य डिनासाँरों के अंडे चुराकर उन्हीं पर अपना गुज़र-बसर चलाने के अभ्यस्त थे। यह इसलिए संभव था कि इस युग के लगभग सभी बृहत्काय प्राणी अंडज थे।

ब्राण्टोसाँरस, डिप्लोडोकस और जाएजेण्टोसाँरस

अब आओ, क्रम से इन दोनों ही प्रकार के दैत्याकार उरंगमों में से कुछ चुने हुए प्रतिनिधियों को लेकर उनका दिलचस्प वृत्तान्त तुम्हें बताएँ। इस सिलसिले में सबसे पहले जो नाम हमारे सामने आते हैं, वे हैं निस्संदेह 'डिप्लोडोकस', 'ब्राण्टोसाँरस' और 'जाएजेण्टोसाँरस' नामक उन महाकाय शाकाहारियों के, जिन्होंने कि डीलडौल के लिहाज़ से न केवल अपने ही युग का बल्कि सदा के लिए जंतु-जगत् का मानों सभी युगों का रेकार्ड-सा तोड़ दिया था। साँप की-सी लंबी गरदन और गोहों जैसे बदनवाले ये भारी-भरकम जीव अपनी लंबी दुम को मिलाकर साठ से सौ फ़ीट तक की लंबाई के होते थे और पैरों से पीठ पर की कूब तक की उनकी ऊँचाई प्रायः सोलह से तीस-पैंतीस फ़ीट तक की होती थी। ये विशुद्ध शाकभोजी थे और प्रायः ऐसे दलदली क्षेत्रों में रहा करते थे, जहाँ पानी में पैदा होनेवाले नरम-नरम पौधों की प्रचुरता थी। इस वर्ग के 'डिप्लोडोकस' नामक प्रख्यात प्राणी के जो अनेक प्रस्तर-विकल्प अमेरिका के व्योमिङ्ग नामक स्थान में मिले हैं, उनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस वर्ग के जीवों का अधिकांश जीवन पानी के ही भीतर बीता करता रहा होगा; क्योंकि इनके केवल एक ही नासिका-रंध्र होता था और वह भी मस्तक के ठेठ ऊपरी सिरे पर ! यह एक उल्लेखनीय बात है कि अपने भारी-भरकम डील के मुक़ाबले में

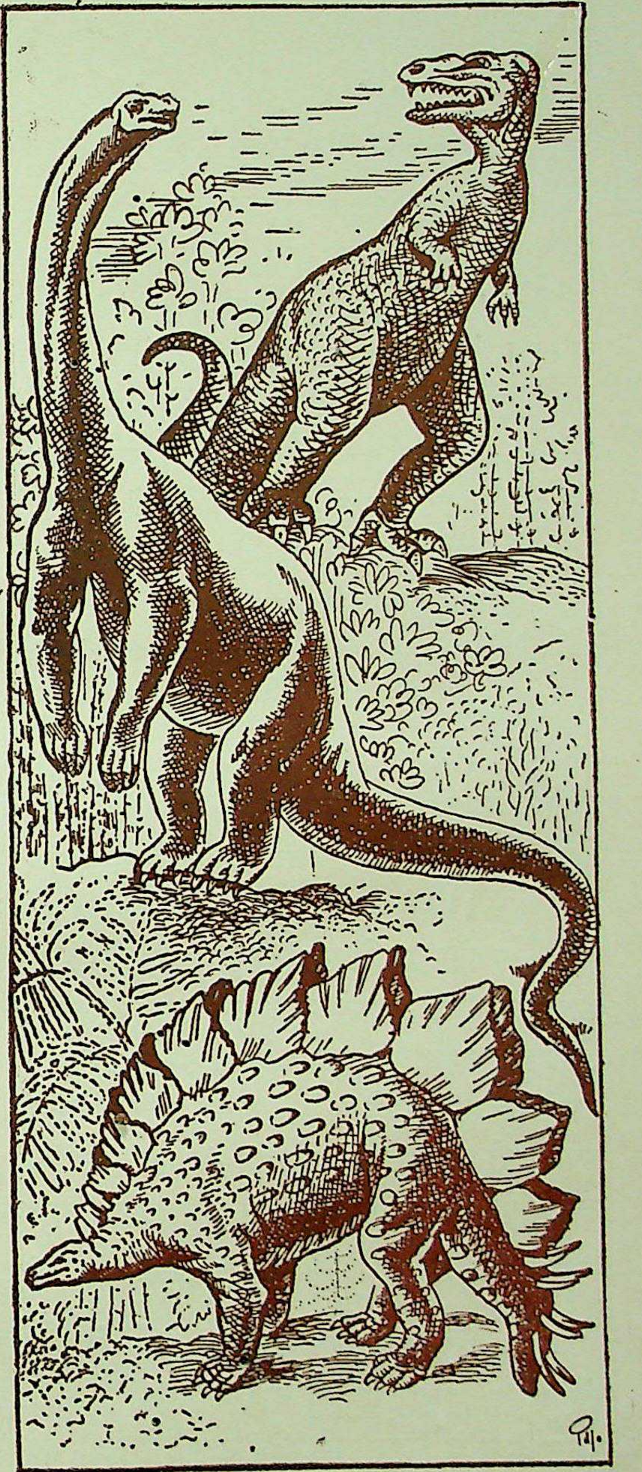

पंद्रह-बीस करोड़ वर्ष पूर्व के कुछ विलुप्त दानवीय प्राणी (ऊपर) टाइरेनोसाँरस नामक विकराल हिंसक; (मध्य में) शाकाहारी ब्राण्टोसाँरस; (नीचे) कवचधारी स्टैगोसाँरस।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस दानवराज का मस्तिष्क-भाग अत्यन्त लघु था—वह नगण्य-सा था ! इससे यह अनुमान किया जाता है कि यह एक निरा भोंदू जीव था ! शायद इसीलिए क्रिटेशियश युग की समाप्ति पर, पृथ्वी पर उष्ण जलवायु का सहसा अंत होते ही, जब घोर शीत का वातावरण प्रस्तुत हुआ और इस जीव के जीवन-निर्वाह के एकमात्र साधन दलदली इलाक़ों के शैवाल क्रमशः ग़ायब हो चले तो यह महाकाय प्राणी भी धरती पर से एकाएक उठ गया ! कारण यह था कि यह उन बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल अपने आपको न बना सका ! इसी वर्ग का ब्राण्टोसॉरस नामक दूसरा प्रतिनिधि साठ-सत्तर फ़ीट लंबा और वज़न में संभवतः तीस-पैंतीस टन (अर्थात् साढ़े आठ सौ से लगभग हज़ार मन) का होता था ! ऐसे महाकाय जीवों के समक्ष आज का हमारा सबसे बड़ा स्थलचर हाथी भी (जोकि अधिक से अधिक ५ टन वज़न का होता है) शायद एक चूहे-सा ही ज्ञात होता ! कहते हैं, हाथी को अपने निर्वाह के लिए प्रतिदिन लगभग एक हज़ार पौंड घास-पात एवं २० पौंड अनाज चाहिए । इसके मुक़ाबले में शायद ब्राण्टोसॉरस को इससे छः-सात गुने अधिक रातब की प्रतिदिन आवश्यकता पड़ती रही हो तो कोई ताज्जुब नहीं ।

जब कि केवल साठ-सत्तर फ़ीट लंबे ब्राण्टोसॉरस का यह हाल था तो उसके बड़े बन्धु 'डिप्लोडोकस' या 'जाएजेण्टोसॉरस' जैसे विशालकाय जीवों की बात कौन करे, जोकि आकार में ८५ से लगभग १०० फ़ीट तक पहुँचते पाये जाते थे ! डिप्लोडोकस था अमेरिका के दलदली क्षेत्रों का वासी । इसे ही 'एटलाण्टोसॉरस' के नाम से भी कहीं-कहीं पुकारा गया है । गरदन उठाने पर, इस प्राणी की कुल ऊँचाई शायद पैंतीस फ़ीट तक पहुँच जाती थी ! पर 'जाएजेण्टोसॉरस' अपने नाम के ही अनुरूप इन सबमें बड़ा था । उसकी एक ठठरी अफ्रीका महाद्वीप के भूभाग से प्राप्त हुई है । कहते हैं, यह प्राणी दुम से सिर तक कोई सौ फ़ीट लंबा रहा होगा ! ज़रा कल्पना करो कि अजगर की-सीं मोटी गरदन, छिपकिली की-सी दुम, गोह की-सी शक्ल-सूरत और मोटी खुरदरी खाल से मढ़े कल्पनातीत आकार के भारी-भरकम धड़वाला यह घिनौना प्राणी जब अपने भौंडे पैरों और दुम के सहारे सरकता हुआ धरती पर चलता होगा, या किसी दलदल में पैठकर पानी और कीचड़ से लथपथ अपनी गरदन एवं दुम को इधर से उधर लचकाता, मोड़ता या फटकारता होगा तो कितना भयावना वह लगता होगा ! परन्तु ऐसी डरावनी और वीभत्स आकृति पाकर भी इस वर्ग के ये सभी प्राणी ख़तरनाक न थे—वे दरअसल बहुत सीधे-सादे, भोंदू और नितान्त अहिंसक जीव थे । ये बेचारे तो अपने भारी-भरकम शरीर और मंद बुद्धि के कारण स्वयं ही दूसरों के शिकार बन जाते थे । प्रायः वे किसी दल-दल में फँसकर असहाय बन जाते और तब उनके दुश्मन वार करके उनके टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे !

स्टैगोसॉरस नामक अद्भुत कवचधारी उरंगम

जिन दिनों धरातल के दलदली क्षेत्रों में उपर्युक्तवर्णित गोहनुमा भीमकाय जलस्थलचर प्राणियों का बोलबाला छाया हुआ था, तभी कलाकार प्रकृति अपनी महान् प्रयोगशाला में चुपचाप उरंगमों के एक और प्रकार के साँचे तैयार करने और उनमें तरह-तरह की ऐसी अनोखी शक्लें ढालने में लगी हुई थी, जिन्हें देख-कर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है ! इन अजीब आकार-प्रकार के कवचधारी या शस्त्रसज्जित उरंगमों के वर्ग का सबसे प्रसिद्ध प्रतिनिधि 'स्टैगोसॉरस' नामक एक भीमकाय अनोखा प्राणी था । यह कोई बीस-पचीस फ़ीट लंबा जानवर रहा होगा, जिसकी पिछली टाँगें अगले पैरों से बहुत बड़ी होती थीं । इसकी आकृति का मिलान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम कुछ-कुछ आजकल के गैंडों जैसे जंतुओं की आकृति से कर सकते हैं। परंतु एक बात में यह उरंगम सबसे निराला था। उसने अपनी पीठ पर की धन्वाकार कूब पर अस्थियों से मढ़ी हुई दो फ़ीट ऊँची त्रिकोणाकार खड़ी पट्टियों या फलकों की एक दोहरी शृंखला-सी उगाये रक्खी थी! उसकी इस अनोखी रक्षा-प्राचीर को दूर से देखने पर ऐसा भान होने लगता था, मानों किसी क़िले या दुर्ग के ऊपरी परकोटे पर बने हुए कँगूरों की पंक्तिबद्ध मालिका वह हो! तारीफ़ तो यह थी कि यह कवच-मालिका केवल पीठ ही के इलाक़े तक सीमित न रहकर, उत्तरोत्तर क्रम से अधिकाधिक नीची होती हुई, ठेठ पूँछ तक उतर आई थी और वहाँ उसका स्वरूप दो-दो फ़ीट लंबे तीखे भालानुमा शूलों की दो पंक्तियों में बदल गया था! भला, इतना भारी कवच पीठ पर लादे रहनेवाला जीव क्योंकर द्रुतगामी हो सकता था! अतः, स्वभावतः ही, इस प्राणी की चाल अति मंद थी और उसका सिर मानों अपने ऊपरी आवरण के बोझ से दबा जाकर एकदम जमीन को छूता हुआ-सा नीचे झुका रहता था! तुम कहोगे कि इस दानवीय आकृति को पाने के बाद तो शायद इस दैत्य का मुक़ाबला करनेवाला उस युग में फिर कोई बचा ही न रह गया होगा और वह एक प्रकार से बिल्कुल अजेय बन गया होगा! परन्तु बात ऐसी न थी। वस्तुतः इस बेचारे की आकृति में क़िलेबन्दी की यह जो सारी योजना प्रकृति ने की थी, वह थी केवल उसकी अपनी रक्षा के हेतु ही। यह स्वयं तो दरअसल एक सीधा-सादा शाकाहारी प्राणी था! चूँकि उसके आसपास के वातावरण में उन दिनों टाइरेनोसाँरस जैसे अति भयंकर एवं क्रूर डीनासॉरों के आतंक के कारण भारी भरकम बदनवाले सभी निशस्त्र और अरक्षित प्राणियों की जान पर आ पड़ी थी, अतः प्रकृति ने ब्राण्टोसाँरस, डिप्लोडोकस आदि अन्य भीमकाय जीवों के मुक़ाबले में अशक्त इस भारी-भरकम प्राणी के बचाव की व्यवस्था करने में बनती कोशिश कोई कोर-कसर न रखते हुए उसे यह कवच प्रदान किया था! इसमें संदेह नहीं कि जब यह अनोखा कवचधारी अपने बचाव के लिए किसी पर अपनी उस शूलमंडित पूँछ की फटकार लगाता होगा तो फिर उसकी शायद खैर न रहती होगी! परन्तु इस सारी योजना के बावजूद भी यह जीव अधिक काल तक इस धरती पर न टिक सका! वह भी जुरैसिक युग का अंत आते-आते अन्य शाकभोजी डिनासॉरों की तरह इस दुनिया से विलुप्त

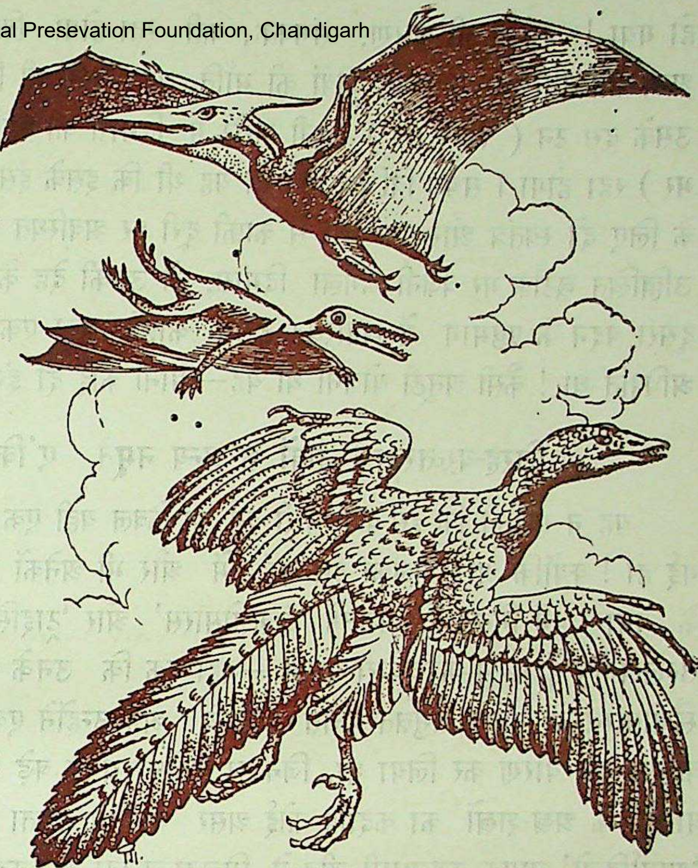

आज से करोड़ों वर्ष पूर्व के दानवीय आदिम पक्षियों के नमूने (ऊपर) टेरानोडॉन; (मध्य में) टेराडेक्टाइल; और (नीचे) आर्कियोर्निस। ध्यान रहे इनमें प्रथम दोनों उरंगम डिनासॉर थे, असली पक्षी नहीं।

हो गया ! इसका भी कारण, संभवतः यही रहा होगा कि जहाँ तक मस्तिष्क का संबंध था, अपने अन्य समसामयिक महाकाय जीवों की भाँति, यह प्राणी भी नितान्त अकिंचन या कंगाल था। कहते हैं, उसके दस टन (२७० मन) वज़नी शरीर में दिमाग़ का परिमाण शायद दो-ढाई औंस (लगभग छटाँक भर) रहा होगा। सबसे विचित्र बात तो यह थी कि इसके इस भारी-भरकम शरीर के संचालन या नियंत्रण के लिए दो स्वतंत्र और एक-दूसरे से काफ़ी दूरी पर अवस्थित अलग-अलग वात-संस्थान थे—एक तो ऊपर उल्लिखित छटाँक भर वज़नी अगला दिमाग़, जो उसकी देह के अग्रिम भाग का नियंत्रण करता था और दूसरा बदन के पृष्ठभाग में अवस्थित उससे काफ़ी बड़ा एक नाड़ी-जंजाल, जो उस पृष्ठभागीय क्षेत्र का अधिपति था ! कैसी अनूठी योजना थी यह—मानों कोई दो इंजनोंवाला रोड-रॉलर यंत्र वह हो ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिरह-बख़्तरवाले जीवों के अन्य नमूने--एंकिलोसॉरस और ट्राइसिरेटॉप्स

यह न समझो कि इस कवचधारी वर्ग का केवल यही एक असफल नमूना बनाकर ही प्रकृति चुप हो गई हो ! क्योंकि आगे चलकर इस संबंध में और भी अनेकों प्रयोग इन्हीं युगों में उसके द्वारा किये जाने के प्रमाण हमें मिलते हैं, जिनमें 'एंकिलोसॉरस' और 'ट्राइसिरेटॉप्स' नामक दो अनूठे जीव विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये कवचधारी प्राणी—जहाँ तक कि उनके रक्षा-साधनों का प्रश्न था—अपने पूर्ववर्ती स्टैगोसॉरस से अधिक समुन्नत प्रतीत होते थे। अब उन्होंने एक प्रकार के चलते-फिरते अजेय दुर्भेद्य क़िलों का-सा रूप धारण कर लिया था, जिन पर कतिपय सबसे बड़े हिंसक दानवों को छोड़कर अन्य किसी भी प्राणी के अस्त्र-शस्त्रों का कदापि कोई असर नहीं हो सकता था ! इनमें 'एंकिलोसॉरस', जो आजकल के 'आर्माडिलो' नामक कवचधारी जीव से मिलता-जुलता था, कछुए की तरह एक मोटी बख़्तरनुमा दुर्भेद्य ढाल के भीतर अपना सारा बदन सुरक्षित किये हुए था। इस कवच पर सेमर वृक्ष की डालियों या तने पर उगे हुए तीखे मोटे शूल-समूह की भाँति पंक्तिबद्ध अनेक तीखी खूँटियाँ-सी खचित थीं। साथ ही अगल-बगल तथा सामने की ओर एक पंक्ति ऐसे बर्छीनुमा नोकीले सींगों जैसी रचनाओं की थी, जिन्हें देखकर बड़े-बड़े क़िलों के फाटकों के द्वार पर लगे हुए लौह शूलों की याद आ सकती थी ! यह तो हुई इसकी केवल रक्षा-योजना। इसके अलावा आक्रमण के लिए प्रकृति ने इसे एक विकट और अनूठा शस्त्र प्रदान कर रक्खा था इसकी दुम के रूप में, जिसने कि सिरे पर कठोर हड्डी की एक गदा का रूप ले रक्खा था। इस गदारूपी पूँछ की फटकार से जब वह किसी पर प्रहार करता होगा तो फिर उसकी भला क्या कुशल रहती होगी !

दूसरा जीव 'ट्राइसिरेटॉप्स' इससे भी अधिक उन्नत श्रेणी का एक कवचधारी था। उसका आकार भी बहुत बड़ा था। उसकी लंबाई बीस से पचीस फ़ीट तक और ऊँचाई पीछे की ओर आठ-नौ फ़ीट तक की होती थी। जैसा कि इसके नाम ही से स्पष्ट है, वाह्य आकृति में आधुनिक गैंडे-सा जान पड़नेवाला यह उरंगम त्रिश्रृंगी, अर्थात् तीन नुकीले सींगोंवाला एक भयावना जीव था। ये सींग लगभग सात फ़ीट लंबे उसके भारी खोपड़े पर, दो मस्तक के ऊपर एवं एक गैंडे की तरह उसकी नाक पर, उगे हुए थे। इनके पीछे मानों बख़्तर का-सा काम देनेवाली ऊँची उठी हुई एक विशाल अस्थि-रचना थी, जो इस प्राणी के रूप को और भी डरावना बना देती थी। मालूम होता है कि अपने इन शूल जैसे सींगों द्वारा यह दानव शत्रुओं पर सीधा प्रहार करके अपने भारी शीश के दबाव मात्र से उन्हें दबोच देता होगा, या सींग पर उठाकर उन्हें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उछाल दिया करता होगा ! परन्तु दुर्भाग्य से इन कवचधारियों को भी उन्नत मस्तिष्क का वरदान प्राप्त न हुआ। तुम्हें यह जानकर ताज्जुब होगा कि सात फ़ीट लंबे इसके खोपड़े में जो दिमाग़ था, वह एक बिल्ली के बच्चे के मस्तिष्क से भी लघु था ! इसीलिए जीवन की प्रतियोगिता में अंततः इसे भी मात खाना पड़ी ! इसकी कई ठठरियाँ अमेरिका में खड़ियाकालीन युग की चट्टानों में मिली हैं ! उपर्युक्त दोनों ही कवचधारी प्राणी भयंकर शक्ल-सूरत के और पूर्णतया अस्त्र-शस्त्रसज्जित होते हुए भी शुद्ध शाकाहारी जीव ही थे।

बत्तखों की-सी चोंचवाले अनोखे उरंगम

बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप जीवधारी किस प्रकार अपनी शक्ल-सूरत एवं स्वाभाविक गुण-धर्म आदि में आवश्यक फेरबदल करके एकदम नयी जातियों को जन्म देते हैं, इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण हमें करोड़ों वर्ष पूर्व के इसी दानव-युग में प्रकट होनेवाले 'एनाटोसॉरस', 'पेरासारोलोफस' एवं 'कोरिंथोसॉरस' नामक उन अनूठे उरंगमों के रूप में मिलता है, जिन्होंने अपने आपको अर्द्ध-जलचर जीवों की श्रेणी में लाकर क्रमशः बत्तखों की चोंच के-से लंबाकार मुख और उन्हीं के-से जालदार पैर विकसित कर लिये थे। ये प्राणी अपना अधिकांश समय पानी में ही बिताया करते रहे होंगे। संभवतः, भाँति-भाँति के जल-पौधों या शैवालों पर वे बसर करते रहे होंगे ! इनमें से कई तो दुम से सिर तक पचीस से तीस फ़ीट तक लंबे थे और उनकी जो सबसे बड़ी विशेषता थी वह यह थी कि उनकी अद्वितीय दंत-पंक्तियों में कभी-कभी दो-दो हज़ार दाँत टँके रहते थे ! दाँतों की ये क़तारें क्या थीं मानों पिसाई की चक्की का एक कारखाना-सा वह था, जिसमें वे अपने आहार को पीस-पीसकर उसकी लुगदी-सी बना देते थे ! इनकी कई ठठरियाँ अमेरिका में मिली हैं।

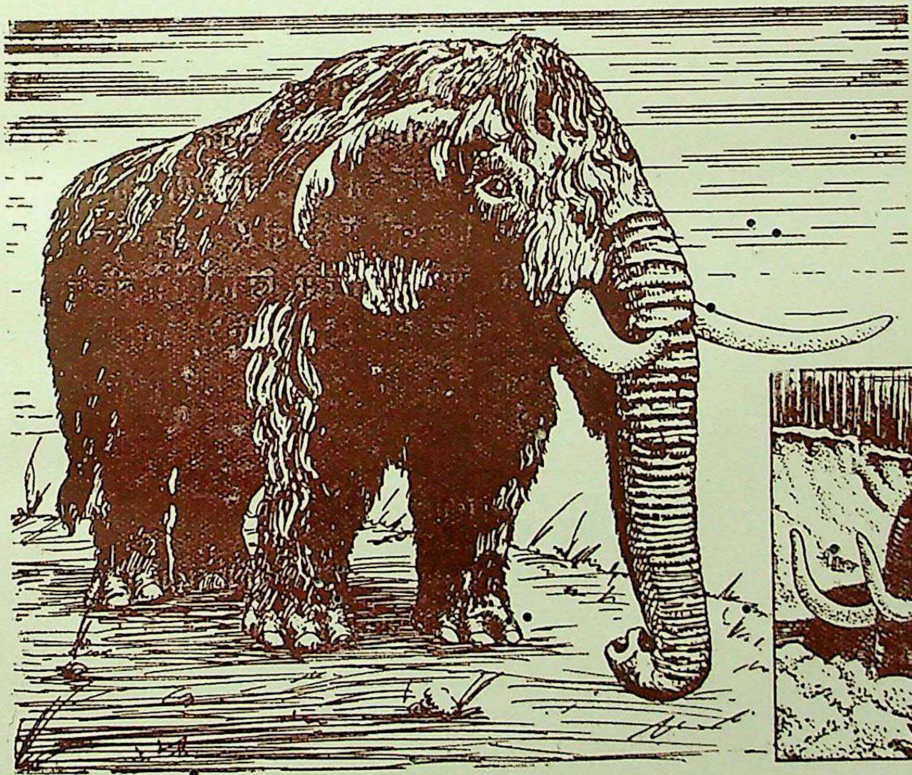

हाथियों का पुरखा—मैमथ

पचास हज़ार वर्ष पूर्व के इस जीव के न केवल अस्थि-कंकाल बल्कि मांस-मज्जासहित पूरे-के-पूरे शव साइबेरिया की चिरंतन हिमराशि में सुरक्षित दबे मिले हैं (देखो निचला चित्र)।

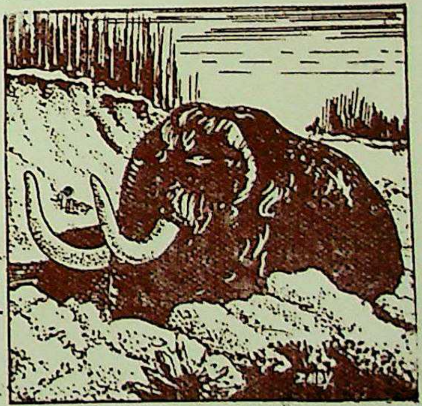

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सन् १८२२ ई० में डॉ० मेंटेल नामक एक जीव-वैज्ञानिक को इंगलैण्ड में खुदाई करते हुए किसी जीव के कुछ प्रस्तरीभूत दाँत मिले। तदुपरान्त उसकी कुछ हड्डियाँ भी प्राप्त हुईं, जिससे यह तो तय हो गया कि यह आधुनिक 'इगुआना लिज़ार्ड' जैसे किसी प्राचीन गोहनुमा उरंगम के अवशेष थे। परंतु निश्चय रूप से यह नहीं कहा जा सकता था कि वह उरंगम था कौन! तब पचास वर्ष बाद बेल्जियम की एक खदान में उस जीव की कोई बीस-बाईस पूरी ठठरियाँ मिल गईं! तभी उसका नाम रख दिया गया 'इगुआनोडॉन' या 'भयावनी गोह'। यह विशालकाय गोह जब अपने पिछले पैरों और दुम के सहारे खड़ी होती रही होगी तो न केवल विचित्ररूप और डरावनी ही बल्कि, बहुत-कुछ मसखरों-सी प्रतीत होती रही होगी; क्योंकि उसका चेहरा बिना कानों के ऊँट या गदहे के चेहरे की कल्पना यदि की जाय तो उससे बहुत-कुछ मिलता-जुलता-सा था! इस भीमकाय प्राणी की लंबाई ३० फ़ीट तक की होती थी और खड़े होने पर उसकी ऊँचाई १५ फ़ीट तक पहुँचते पाई जाती थी। इसकी एक सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसके हाथों की उँगलियों में अँगूठे का स्थान एक सींगनुमा अस्थि-रचना ने ले रक्खा था। शायद यह विचित्र शूल उसका आक्रमण या बचाव का मुख्य अस्त्र रहा हो! दूसरी विचित्रता यह थी कि इसके पैरों में केवल तीन उँगलियाँ थीं, जबकि हाथों में (अर्थात् अगले पैरों में) वे पूरी पाँच थीं। जीव-वैज्ञानिकों का ख़याल है कि शायद इसी अद्भुत उरंगम से आगे चलकर पक्षी-वर्ग का विकास हुआ हो।

इसी के समकक्ष का अन्य एक विशालकाय प्राणी था 'ब्रैकियोसॉरस', जो ऊँचाई के लिहाज़ से, संभवतः डिप्लोडोकस या जाएजेंटोसॉरस जैसे कतिपय सबसे बड़े दानवराजों को छोड़कर, सारे प्राचीन और अर्वाचीन जंतु-जगत् में अपना सानी नहीं रखता था! इस महाकाय प्राणी की ऊँचाई, पैरों से गरदन तक, तीस फ़ीट के लगभग थी और दुम से सिर तक की उसकी लंबाई का नाप था लगभग साठ फ़ीट! और तो और, उसकी एक-एक पसली लगभग दस-दस फ़ीट लंबी थी! तो फिर भला उसके वज़न का क्या पूछना था! वह था पूरे ५० टन (अर्थात् लगभग १४०० मन) वज़न का एक अस्थि-मांस का पहाड़! इसीका समकालीन एक छोटा-सा जीव था 'स्ट्रुथियोमिमस', जो आकार में केवल ५ फ़ीट ऊँचाई का होने पर भी अन्य डिनासॉरों को छकाने में बड़ा चतुर था। उसने अपना पेशा दूसरे डिनासॉरों के अंडे चुराकर उन्हीं से अपना गुज़र-बसर चलाना बना रक्खा था! चूँकि सभी उरंगम अंडज प्राणी थे, अतः इस अंडा-चोर के लिए भोजन की प्रचुरता रहती थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस युग के उन महाकाय जीवों के अंडे भी उनके आकार के अनुरूप बड़े डीलडौल के होते थे।

दानव-युग का सबसे विकराल और क्रूर प्राणी—टाइरेनोसॉरस

हमने अब तक भाँति-भाँति के जिन अनोखे स्थलचर और जलस्थलचर उरंगमों का विवरण प्रस्तुत किया, उनमें स्ट्रुथियोमिमस जैसे अंडाचोर को छोड़कर सभी शाकपातभोजी अहिंसक जीव थे। परन्तु भला यह क्योंकर हो सकता था कि टनों वज़न के उन महाकाय मांसल जीवों से खचित उस वातावरण में जंतुओं की कोई ऐसी हिंसक जाति न उपजती, जोकि इन्हीं शाकभोजियों के रक्त-मांस पर गुज़र-बसर कर अपना काम चलाती! वैसे तो, पृथ्वी के जल-भागों में प्लिसियोसॉरस और इक्थियोसॉरस जैसे भयंकर प्राणियों का विकास

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हो ही चुका था, जोकि हिंसा का मार्ग ग्रहण कर अन्य जीवों के शिकार द्वारा अपना भरण-पोषण करने की परिपाटी चला चुके थे। अतः कालान्तर में धरती के स्थलभागों पर भी मांसाहारी हिंसक प्राणियों की कुछ जातियाँ क्रमशः उपजकर अपना आतंक बढ़ाते दिखाई पड़ीं। ये घोरकर्मी भी उपजे तो थे स्वतः उरंगमों ही के वर्गों में से, परन्तु अपनी हिंसक प्रवृत्तियों के अनुरूप उन्होंने अपने बदन में अनेक सुधार कर लिये थे, जिनके कि बल पर वे अन्य प्राणियों के लिए कालरूप बन गये थे।

इन राक्षसों के सरदार का स्थान ग्रहण किये हुए था 'टाइरेनोसॉरस' नामक एक डरावना जंतु, जिसके मुक़ाबले का प्रलयंकर हिंसक जीव शायद सारे जंतु-जगत् के इतिहास में धरती के स्थलभागों पर दूसरा न हुआ! यह अमित बलशाली दैत्याकार प्राणी अपने समसामयिक जीवधारियों के लिए साक्षात् कालमूर्त्ति-सा था! उसकी लंबाई सैंतालीस से पचास फ़ीट तक की थी और खड़ा होने पर उसकी ज़मीन से ऊँचाई लगभग बीस फ़ीट तक पहुँचते पाई जाती थी! उसकी शरीर-रचना अति विचित्र थी। वह अपने भारी शरीर का सारा बोझ वृक्षों के तने जैसे अपने प्रचंड शक्तिशाली पिछले पैरों पर ही साधे रहता था, जिनकी तीनों उँगलियों के सिरे पर गरुड़ पक्षी के पंजे या बाघ के नखों से भी अधिक कराल तीन भयावने अंकुशवत् नख निकले हुए थे! इस पराक्रमी जीव के जबड़ों का जोड़ा क्या था मानों साक्षात् यम की चक्की जैसा वह था! वह गज़ भर की मुँहफाड़ का चार फ़ीट लंबा एक कराल यंत्र था, जिसमें दोहरी धारवाले करवाल-जैसे छः-छः इंच लंबे दाँतों की पंक्तियाँ ऊपर-नीचे जड़ी हुई थीं! यही इसके आक्रमण का सबसे ज़बर्दस्त शस्त्र था। इसके अतिरिक्त वह अपने उन अनोखे पंजेनुमा हाथों से भी शिकार को पकड़ने या चीरने-फाड़ने में काफ़ी सहायता लेता रहा होगा, जोकि उसकी भीमकाय देह की तुलना में असाधारणतया छोटे आकार के अर्थात् केवल डेढ़-दो फ़ीट ही लंबे थे! इस विकराल जंतु के सामने कोई भी समसामयिक प्राणी नहीं टिक सकता था, चाहे कितने ही दुर्भेद्य कवच के भीतर उसने अपनी देह क्यों न छिपा रक्खी हो। संभवतः, इसी के आतंक से तिलमिलाकर स्टैगोसॉरस, एंकिलोसॉरस और ट्राइसिरेटाप्स जैसे ज़िरह-बख्तरधारी जंतुओं का वर्ग विकसित हुआ था। यह आततायी था दरअसल इस युग के स्थलचरों का अपराजित सम्राट्।

फिर भी यह एक अचंभे की बात थी कि यह जानवर अधिक काल तक इस धरती पर अपना साम्राज्य स्थापित न रख सका! कहते हैं, जब उसे कुछ खाने को न बचा तो वह अपने ही भाई-बंधुओं का शिकार करने लगा! इस प्रकार, संभवतः, आपस में ही लड़कर ये दैत्य समाप्त हो गए! इसके रिश्तेदारों में सबसे उल्लेखनीय नाम 'ऑलोसॉरस', 'किरेटोसॉरस' और 'काम्पसोग्नेथस' के हैं, जो सब के सब घोर मांसाहारी प्राणी थे। इनमें 'आलोसॉरस' टाइरेनोसॉरस का लकड़दादा-सा था। वह अपने ज़माने का प्रचंड आततायी था। अन्य दोनों प्राणी छोटे आकार के थे। काम्पसोग्नेथस तो केवल २॥ फ़ीट आकार का था। यह तेज़ दौड़नेवाला जीव, संभवतः, आदिम पक्षियों का शिकार किया करता था!

नभचर उरंगम—टेरानोडान, टेराडेक्टाइल और आर्कियोर्निस

इसी युग में, बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको बदलकर, बहुतेरे उरंगमों ने अपनी बाजुओं में चमगादड़ के-से डैने उपजा लिये और एक प्रकार के आदिम पक्षियों का-सा रूप ग्रहण कर लिया, यद्यपि इनके वे डैनेनुमा पंख उनकी हाथों की चौथी उँगली से पिछले पैरों की पिंडली तक फैले हुए नाव के पाल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जैसे चमड़ी के विस्तार मात्र थे । हाँ, उनकी हड्डियाँ अवश्य पोली थीं । पर वे आज के पखेरुओं के पुरखे नहीं थे । इन उरंगमों में टेरानोडोन और टेराडेक्टाइल के नाम प्रसिद्ध हैं । टेराडेक्टाइल तो आकार में छोटे होते थे, पर टेरानोडान एक वृहत्काय जीव था । यह एक आधुनिक ग्लाइडर जैसा था । उसका विस्तार, पर फैलाने पर, पचीस से सत्ताईस फ़ीट तक का होता था । उसकी चोंच पेलिकन पक्षी की-सी लंबी होती थी और सिर पर एक ऊँची सींगनुमा रचना हुआ करती थी । पर इसकी चोंच में दाँत नहीं थे, जैसे कि टेराडेक्टाइलों में होते थे ! इसी युग में एक जीवधारी और हुआ, जो वास्तव में एक पंखदार आदिम पक्षी था। उसका मुँह तो उरंगमों का-सा था, जिसमें दंतपंक्तियाँ भी थीं, परंतु साथ ही साथ उसके पंख भी थे । यह प्राणी, संभवतः, उरंगमवंशज ही था, जिसके बदन पर के छिन्ने कालांतर में उड़ने में मदद देनेवाले अगल-बगल के एक जोड़ा पंख में परिणत हो गये थे । यह, संभवतः, एक कबूतर के आकार का रहा होगा । पर इसकी हड्डियाँ पक्षियों की अस्थियों की-सी पोली न थीं ! इसका एक पूर्वरूप 'आर्कियोप्टेरिक्स' कहलाता है और बाद का रूप 'आर्कियोर्निस' । इन्हीं उरंगमों से आगे चलकर असली पक्षियों का विकास हुआ ।

उइंटाथेरियम, मेगाथेरियम, ग्लिप्टोडॉन, ऊनी गैंडा, कटारदन्ती व्याघ्र, मैमथ आदि स्तनपोषी

: जब उरंगमों का युग समाप्त हुआ, तब भाँति-भाँति के स्तनपोषियों के आदिम रूप सामने आये । इनमें से एक था 'उइंटाथेरियम', जो गैंडे की शक्ल का और उतना ही बड़ा एक भारी भरकम जीव था । इसके सिर, नाक तथा भौंहों की जगह पर तीन जोड़े सींग थे । इसके अलावा उसके मुँह में दोनों ओर सुअर के-से दाँत बाहर निकले हुए थे । इसी युग का 'डिप्रोटोडान' नामक एक विलुप्त प्राणी, जिसकी ठठरियाँ ऑस्ट्रेलिया में प्राप्त हुई हैं, कंगारू का पुरखा प्रतीत होता था । परन्तु स्तनपोषी-युग के इस प्रभातकाल का सबसे अद्भुत और भयावना जीव था 'मेगाथेरियम', जो रीछ या भालू का लकड़दादा था । पिछले पैरों पर खड़े होने की दशा में वह बारह फ़ीट ऊँचा रहता था और उसकी कुल लंबाई लगभग २० फ़ीट थी । इस प्राणी की सबसे अनोखी विशेषता थी उसकी लंबी जीभ ! अन्य एक अद्भुत जीव, जो इन्हीं दिनों विकसित हुआ, आधुनिक 'आर्माडिलो' की शक्ल का एक कवचधारी था, जिसे 'ग्लिप्टोडान' नाम दिया गया है । यह क़रीब १२ फ़ीट लंबा और ५ फ़ीट ऊँचा प्राणी था ।

आगे चलकर प्लिस्टोसीन काल के महान् हिमयुग का सूत्रपात होने पर जब धरती का अधिकांश स्थलभाग बर्फ़ की मोटी चादर से ढक गया तो स्तनपोषियों की विविध जातियाँ अपने बदन पर घने रोएँ, बाल या ऊन का-सा आवरण विकसित कर सामने आईं । इन्हीं में से एक था वर्त्तमान गैंडों का पूर्वपुरुष 'ऊनी गैंडा', जिसकी खाल घने ऊनी बालों से ढकी थी । इसकी थूथन पर दो तीक्ष्ण सींग थे, जिनमें से एक बेहद लंबा था । इसी युग का दूसरा प्रसिद्ध प्राणी था हाथी का महान् पुरखा 'मैमथ', जिसके बालदार खाल से मढ़े हुए मांस-मज्जासहित पूरे के पूरे शव साइबेरिया के हिमक्षेत्रों में बर्फ़ के नीचे सुरक्षित दबे मिले हैं ! इस विशाल गजराज की ऊँचाई १३॥ फ़ीट अर्थात् आज के हाथियों से अधिक थी । इसी का एक पूर्ववर्ती रूप 'मेस्टाडान' नामक गजराज था । परंतु इस युग का सबसे विकराल प्राणी तो था हमारे आज के शेर या बाघ का पुरखा, 'कटारदन्ती व्याघ्र', जिसके मुँह के दोनों ओर दो कटारनुमा दाँत निकले हुए थे ! आगे चलकर, इनके वंशजों का हाल सुनाते समय, हम इनके बारे में तुम्हें कुछ अधिक बातें बता सकेंगे ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मनुष्य के निकट संबंधी

मदारी को बंदर नचाते देखकर किसे कुतूहल नहीं होता ? प्रायः उसकी डुगडुगी की आवाज़ सुनते ही बच्चे और बूढ़े सभी की एक उसी की ओर टकटकी-सी बँध जाती है ! जल्दी ही लोग उसके आसपास एक गोल घिरौंदा-सा बनाकर खड़े हो जाते हैं । तालियाँ बज उठती हैं ! एक ओर लकड़ी के एक कुंदे पर कुरसी के ढंग से बैठे होते हैं बंदर मियाँ, और दूसरी ओर कुछ फ़ासले पर हाथों से मुँह ढाँपे खड़ी पाई जाती है बँदरिया । दोनों रस्सियों से बँधे हैं और मदारी के डंडे के इशारों पर अपना-अपना करतब दिखाने को तैयार हैं । तब वही पुराना खेल, जिसे शायद बीसियों बार लोग देख चुके होते हैं, फिर से शुरू होता है । काँधे पर लकुटिया धरे बंदरराम ससुराल पहुँचते हैं—गौना कराने ! पर लाख मिन्नतें करने पर भी बँदरिया मानती नहीं—वह दूलहे के साथ जाने को राज़ी ही नहीं होती ! इस खींचतान और रूठने-मनाने की कशमकश के दर्मियान तरह-तरह के भाव-प्रदर्शन और नाटकीय मूक अभिनय की पूर्त्ति तो घँघरिया या जामा पहने हुए बंदर-बँदरिया की वह जोड़ी स्वयं ही करती है, पर उनके परस्पर के बोल और सवाल-जवाबों का इजहार करने का जिम्मा लेना पड़ता है बेचारे मदारी को ! इस तरह कुछ देर तक यह मसखरेपन की नक़ल चलती रहती है ! इस खेल का अंत प्रायः नृत्य द्वारा होता है । पैरों में घूँघरू बाँधे और कमर पर फटा-सा पाजामा या लँहगा पहने हुए इन मानवसम प्राणियों को मटक-मटककर डमरू या ढोलक की गत पर नाचते देखकर लोग ठहाका मारकर हँस पड़ते हैं ! इसी पर मदारी की बन पटती है और उसके फैलाये हुए दामन पर कुछ पैसे आ टपकते हैं । दूसरे दिन, मौक़े से यदि वह फिर कहीं अपने बंदरों के साथ उसी मोहल्ले में आ धमका तो भी उसके लिए तमाशगीरों की कोई कमी नहीं रहती ! फिर से दर्शकों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

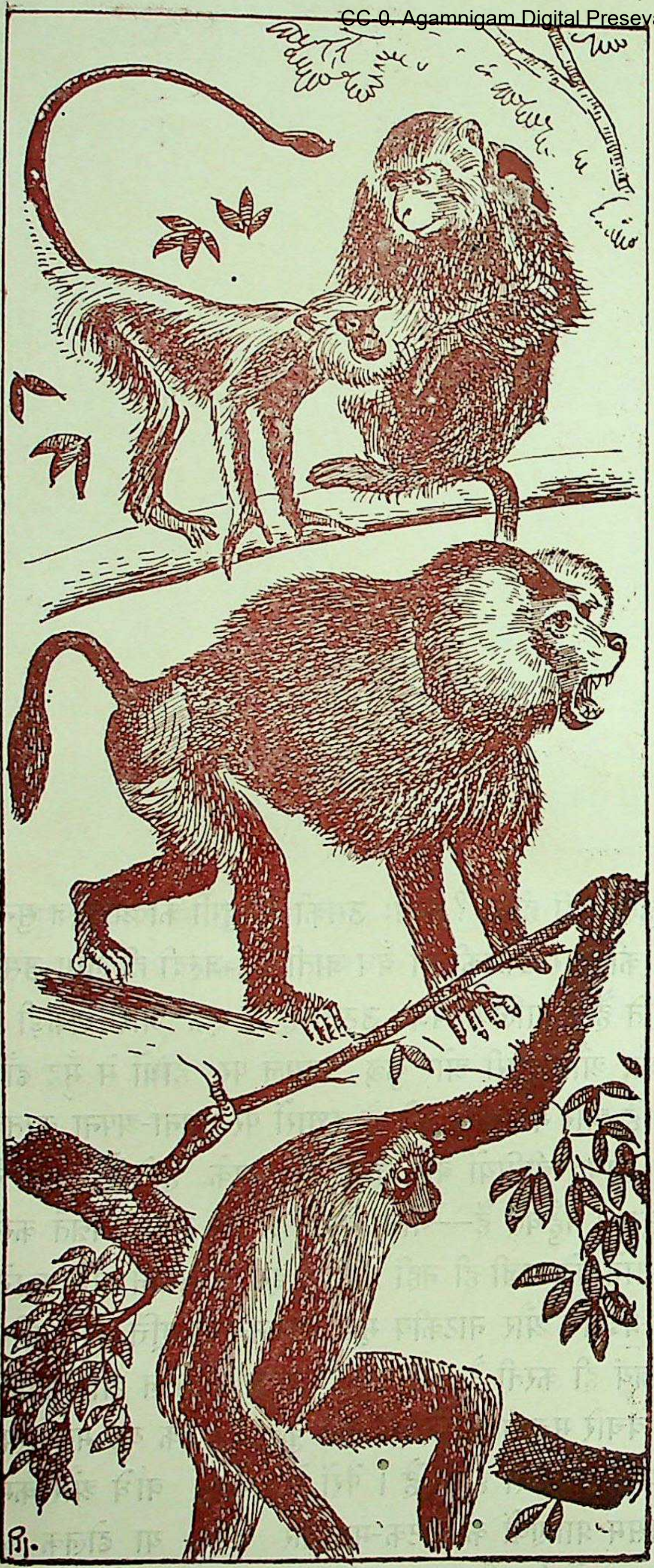

पुरानी दुनिया के वानरों के कुछ नमूने
(ऊपर) भारतवर्ष के लंगूर और बंदर; (बीच में) अरब और अबीसीनिया का बबून; (नीचे) मलाया का गिबन ।

मंडली का वैसा ही घेरा ज्यों-का-त्यों उसके आस-पास आ जुटता है! विशेषकर बच्चे तो उसके खेल को देखते कभी अघाते ही नहीं।

भला, इस तमाशे में लोगों की यह ज़बर्दस्त दिलचस्पी क्यों है? क्यों बच्चे बंदरों को देखते ही ताली पीटने लगते हैं और मुँह बना-बनाकर उन्हें चिढ़ाने में ख़ुशी मानते हैं? इसका एकमात्र कारण शायद यही है कि सारे जंतु-जगत् में केवल इसी वर्ग के जीव ऐसे हैं, जो मनुष्य से काफ़ी मिलते-जुलते हैं और वही सफलतापूर्वक बहुत-कुछ उसकी नक़ल कर सकते हैं! यदि पलभर के लिए हम उनकी दुम को भूल जाएँ तो आकृति आदि के लिहाज़ से उनमें और मनुष्य में जो आश्चर्यजनक समानताएँ पाई जाती हैं, उनकी बुनियाद पर सहज ही हम यह कह सकते हैं कि वे हमारे ही भाई-बन्धु या कोई नज़दीकी रिश्तेदार जैसे हैं! इसीलिए तो 'वानर', 'बनमानुस', आदि नामों से वे पुकारे जाते हैं। और भला, अपने नातेदारों में किसे दिलचस्पी नहीं रहा करती?

वानर मनुष्य के नातेदार ही हैं, पुरखे नहीं

परन्तु हमारे निकट संबंधियों की श्रेणी में आकर भी वानर-वर्ग के ये जीव हमारे पुरखे नहीं हैं। अर्थात्, इन्हीं से मनुष्य की उत्पत्ति हुई होगी, यह मानना सरासर भूल है! सच केवल इतना ही है कि जीवधारियों के वंश-विकास-वृक्ष पर फूट निकलनेवाली विविध महान् शाखा-प्रशाखाओं या डालियों में वानर-वंश की यह प्रशाखा मनुष्य की शाखा से सबसे नज़दीक या समकक्ष की एक पड़ोसी शाखा है। माना कि ये दोनों ही डालियाँ, प्रधानभागीय अर्थात् प्राइमेट्स-समूह की होने के नाते, अतीत की किसी धुँधली पृष्ठभूमि में कभी एक ही आदि रस-स्रोत द्वारा पोषित हुई होंगी!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परंतु मनुष्यों और वानरों के पुरखा-रूपी उन आदि जीव-रूपों का स्वरूप इन दोनों के वर्तमान रूपों से तो नितान्त भिन्न रहा होगा। मुमकिन है कि वे मत्स्य-वर्ग अथवा उरंगम-वर्ग के ही कोई पुरातन विलुप्त जीव रहे हों! अतः हमारे लिए इसमें लजाने की कोई बात नहीं, यदि हम बंदरों और बनमानुसों को, अपने सगोत्र न मानते हुए भी, एक प्रकार के अपने नातेदार-से मान लें!

'प्राइमेट्स' या प्रधानभागीय वर्ग के जीव

जैसा कि पिछले एक प्रकरण में बताया जा चुका है, जीवधारियों के वंश-विकास-वृक्ष की चोटी पर की शाखा 'प्राइमेट्स' या प्रधानभागीय वर्ग के प्राणियों की है, जिसका एक सदस्य मनुष्य भी है। 'प्राइमेट्स' या प्रधानभागीय जीवों का एक प्रधान लक्षण यह है कि मनुष्य को छोड़कर, अधिकांश स्तनपोषियों की तरह उनकी भी खाल पर घने बालों या ऊन की-सी रोमावली का एक आवरण चढ़ा रहता है। इसके अलावा लगभग सभी प्रधानभागीयों के एक दुम भी होती है, जो अलग-अलग जातियों में कहीं लंबी तो कहीं छोटी और कहीं बाहरी निगाह से एकदम छिपी हुई-सी पायी जाती है। इस वर्ग के प्राणियों में सभी के दो बार दाँत आते हैं—पहले तो दूध के दाँत और तदुपरान्त स्थायी दंत-समूह। प्रायः सभी के हाथ-पैरों में पाँच-पाँच उँगलियाँ होती हैं, जिन पर व्यवस्थित रूप से नाखून उगे रहते हैं। इनमें पैरों का सबसे बड़ा अँगूठा शेष चार उँगलियों से विपरीत या उल्टी तरफ़ मुड़ा हुआ-सा होता है। पर इस वर्ग के प्राणियों की जो सबसे उल्लेखनीय और मुख्य विशेषता कही जा सकती है, वह है इनकी खोपड़ी की विशिष्ट रचना एवं उसमें सुरक्षित मस्तिष्क की विकसित स्थिति,

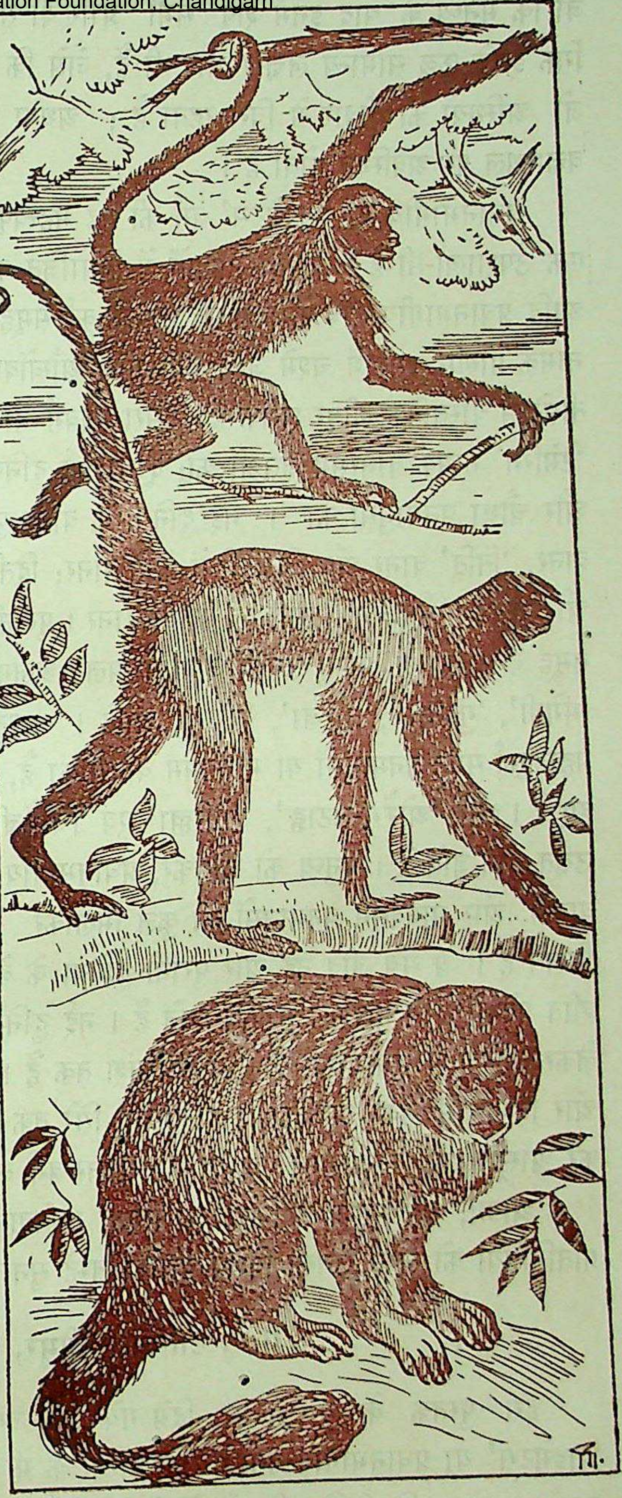

नई दुनिया के वानर-वर्ग के कुछ प्रतिनिधि
(ऊपर) 'हाउलर' वानर; (बीच में) मकड़ी-वानर, (नीचे) साकी वानर। ऊपरी दो नमूनों की दुम की लपेट पर ध्यान दीजिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जो कि मनुष्य के बाद इनमें शेष सभी प्राणियों से अधिक उन्नतावस्था में पाई जाती है। इसके अतिरिक्त इनके कुछ सामान्य लक्षण और भी हैं, जैसे कि इनकी आँखें एक प्रकार के प्रकोष्ठ में स्थित होती हैं, जो अस्थियों की दीवार से घिरा रहता है ; अथवा इन सबमें दो-दो स्तन-ग्रंथियाँ होती हैं, जोकि इनके वक्षःस्थल पर अवस्थित होती हैं।

प्रधानभागीय या 'प्राइमेट्स' वर्ग की यह महत्त्वपूर्ण शाखा वस्तुतः स्तनपोषियों की बृहत् शाखा की ही एक उपशाखा-सी है। वह दो उपवर्गों में विभाजित की जा सकती है। प्रथम में लीमूर और उनकी जाति के आदि प्रधानभागीय जीव सम्मिलित हैं। इनके कई समूह-उपसमूह निर्धारित किए गए हैं, जिनमें से एक में 'ऐ-ऐ' नामक प्राणी; दूसरे में चश्मे जैसी गोल-गोल आँखोंवाले 'टार्सियर' नामक जीव की सात उपजातियाँ; और तीसरे में वास्तविक लीमूर शरीक हैं। दूसरा उपवर्ग चार समूहों में विभक्त है। पहला समूह है 'मार्मोसेट' और 'टेमेरिन' नामक वानरसम जंतुओं का; दूसरा नई दुनिया के वानरों का; तीसरा पुरानी दुनिया के वानरों का और चौथा बनमानुसों का । नई दुनिया के वानर पुनः चार उपसमूहों में विभाजित हैं--प्रथम, निशाचर वानर, 'तिति' वानर और गिलहरियों के-से वानर; द्वितीय, 'साकी' वानर; तृतीय, 'हाउलिंग या हुक्कू' वानर; और चतुर्थ, 'कैपुचिन', ऊनी एवं मकड़ी-वानर। पुरानी दुनिया के सब वानर वैज्ञानिक दृष्टि से एक ही विशाल समूह के सदस्य हैं, परन्तु उनकी जातियाँ अलग-अलग हैं—यथा 'बबून', 'मैंड्रिल', 'मैकेक', 'बारबेरी एप', 'मंगेबी', 'गुइनान', 'गुरेज़ा', 'लंगूर', आदि। परन्तु विकास और उन्नति के लिहाज़ से इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण समूह बनमानुसों या मानवसम वानरों का है, जो कि जंतुजगत् में मनुष्य के बाद सर्वोपरि स्थान पाये हुए हैं। इनमें 'ओरेंग-उटाङ्ग', 'गोरिल्ला' एवं 'चिम्पैंज़ी' अधिक उन्नत हैं और 'गिबन' तथा 'सायमाङ्ग' कम उन्नत माने जाते हैं। मनुष्य को छोड़कर, प्रधानभागीय प्राणियों के इस विशद समूह के अर्द्ध-वानरों, असली वानरों और मानवसम बनमानुसों की कुल मिलाकर कोई छत्तीस-सैंतीस जातियों के प्राणियों के नमूने हमें मिलते हैं। ये सब जीव नई और पुरानी दुनिया के केवल उष्ण और समशीतोष्ण प्रदेशों में ही रहते हैं--शीत प्रदेशों में ये मुश्किल से पाये जाते हैं। नई दुनिया या अमेरिका में इनका विस्तार उत्तर में मैक्सिको से लेकर दक्षिण में भूमध्यरेखा के तीसवें अक्षांश तक है। पुरानी दुनिया में इनकी विविध जातियाँ जापान और तिब्बत से लेकर अफ्रीका के दक्षिणतम सिरे तक फैली हुई हैं। दुनिया के शेष भागों में--विशेषकर ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, आदि में—वानर-वर्ग का कोई जीव नहीं मिलता !

आओ, अब मनुष्य से निकट का रिश्ता रखनेवाले इन प्राणियों के अलग-अलग वर्गों के कुछ चुने हुए प्रतिनिधियों को लेकर उनका विशेष वृत्तान्त तुम्हें सुनाएँ।

ऐ-ऐ, टार्सियर, लीमूर, आदि वानरसम प्राणी

इस पुस्तक के पृ० ७ पर दिये गये जंतु-जगत् के विशाल वंश-विकास-वृक्ष की तरह यदि हम 'प्राइमेट्स' या प्रधानभागीय वर्ग के जीवधारियों के भी एक पृथक् वंशवृक्ष का चित्रण करें तो उसके तने पर से पाँच मुख्य डालियाँ निकली हुई हमें दिखानी होंगी—सबसे ऊपर तो मनुष्य और बनमानुसों की पृथक्-पृथक् उन्नत शाखाएँ; तदुपरान्त मध्य में नई और पुरानी दुनिया के वानर-वर्गों की अलग-अलग विस्तृत शाखाएँ; और अंत में सब से नीचे 'ऐ-ऐ', 'टार्सियर', 'लीमूर', आदि उन अर्द्ध-वानर या वानरसम प्राणियों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की वह विविध प्रशाखायुक्त डाली, जो इस प्रधानभागीय वंश-विकास-वृक्ष की सबसे पुरातन और आदिम शाखा कही जा सकती है। इस अर्द्ध-वानर-समूह के सभी जीव—जिनके कतिपय लक्षण ही वानरों से मिलते हैं—उन अनेकों प्रारंभिक प्रयोगों के उदाहरण हैं, जो कि प्रकृति द्वारा असली वानरों के निर्माण के पूर्व किये गये होंगे। इनके लगभग सब के सब नमूने अब पुरानी दुनिया ही के दायरे में शेष रह गये हैं। विशेषकर असली लीमूर तो केवल मेडागास्कर द्वीप ही में मिलते हैं।

इस वर्ग का एक प्रख्यात प्राणी 'ऐ-ऐ' है, जो कि गिलहरी की-सी लंबी और घनी बालदार दुम, चूहे की तरह आगे निकले हुए मुँह, बड़ी-बड़ी आँखें, गोलाकार सिर, तीक्ष्ण नख-वाली अँगुलियाँ और खरगोश या चूहे जैसे कुतरकर खानेवाले दंतक जीवों के-से दाँतों के कारण प्राणिशास्त्रियों के लिए एक पहेली बन गया था, जब कि पहलेपहल सन् १७८० ई० में खोजकर वह योरप लाया गया था! बिल्ली के डीलडौल का यह अनोखा जीव केवल रात ही को निकलता है। वह पेड़ों ही पर रहता है और अपनी संतान के हेतु एक बड़ा-सा घोंसला बनाता है। यह एक कीटभक्षी प्राणी है और इसके बड़े-बड़े कान डालियों के भीतर सूराख करके रहनेवाले कीड़ों का पता लगाने में बड़ी मदद देते हैं।

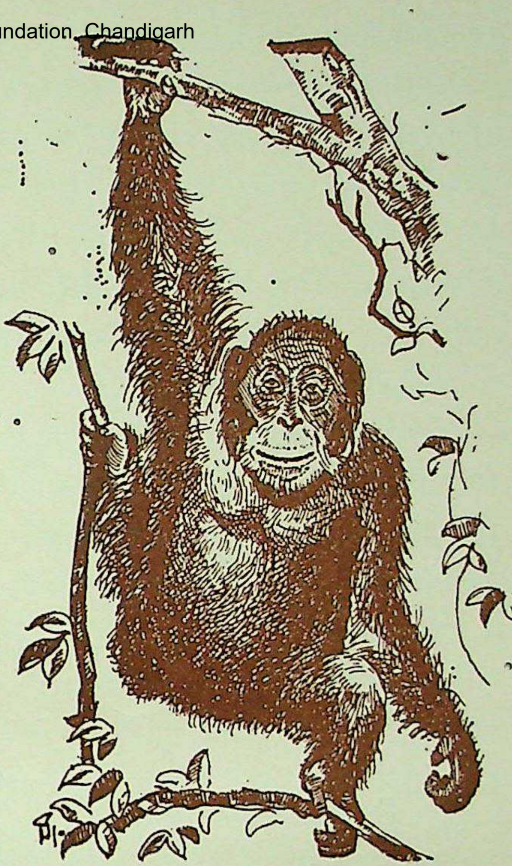

ओरेङ्ग-उटाङ्ग नामक बनमानुस
सघन वनों में पाया जानेवाला यह वृक्षवासी प्राणी एक बड़ा-सा घोंसला बनाकर रहता है।

इसी वर्ग के दूसरे अनूठे प्राणी 'टार्सियर' को यदि हम दूर से देखें तो मालूम देगा मानों अपनी उल्लू जैसी आँखों पर उसने बड़े-बड़े गोल शीशोंवाला चश्मा चढ़ा रक्खा है। दरअसल जैसी चौंका देनेवाली गोल आँखें इस छोटे-से प्राणी की होती हैं, जंतु-जगत् में शायद ही और किसी की हो! यह प्रधानभागीय वर्ग का एक अति प्राचीन जीव है। डीलडौल में तो यह एक बड़े-से चूहे जैसा ही होता है, परन्तु ऐसा जान पड़ता है मानों कलाकार कुदरत ने इसकी सृष्टि उस सारे सामान से की है, जो कि अन्य स्तनपोषियों के निर्माण से बचा रह गया था! इसका सिर गोल, कान काफ़ी बड़े, पिछले पैर अगले से बहुत अधिक लंबे, दुम भी बहुत लंबी और सिरे पर बालों का एक गुच्छा उगाये हुए, तथा खोपड़ी इस प्रकार की होती है, जिसमें आँखों के लिए दो बड़े गोलाकार प्रकोष्ठ निर्मित रहते हैं। 'ऐ-ऐ' की तरह यह भी वृक्षवासी और केवल रात्रि को ही विचरण करनेवाला एक जीव है। प्रधानभागीय वंश के विकास-वृक्ष में इसकी प्रशाखा सबसे प्राचीन मानी जा सकती है। यह पूर्वी द्वीप-समूह के बोर्नियो, सुमात्रा, जावा, सेलीबीज़ और फिलीपाइन आदि टापुओं में पाया जाता है।

तदनंतर अर्द्ध-वानरों की वह प्रशाखा हमें मिलती है, जिसमें कि लीमूर-वर्ग के असली जीव सम्मिलित हैं। इस वर्ग में पाँच प्रमुख नमूनों के प्राणी हैं। ये हैं—(१) स्लो-लीमूर या लोरिस; (२) गैलागो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
या बुश-बेबी; (३) माउज़-लीमूर; (४) असली लीमूर; और (५) इंद्रिस, सिफ़ाका तथा आवाही। इनमें स्लो-लीमूर या लोरिस, जिसे लजीला अर्द्ध-वानर कहा जा सकता है, बड़ा नाज़ुक और सुस्त जीव होता है। इस वर्ग में पॉटो, स्लो लोरिस, स्लेंडर या नाज़ुक लोरिस आदि कई उपजातियाँ होती हैं। इन समस्त जीवों की खाल पर का समूर मुलायम और ऊनी-सा होता है। आँखें इन सब की बड़ी-बड़ी होती हैं तथा हाथ-पैर समान लंबाई के होते हैं। दुम या तो कभी-कभी एकदम ग़ायब रहती है या होती भी है तो बहुत छोटी-सी। इनमें नाज़ुक लोरिस सबसे छोटे आकार का और बड़ा लजीला होता है। वह शायद एक चूहे के डीलडौल का होगा! ये सभी जीव अफ़्रीका से लेकर, बंगाल, आसाम, बर्मा, स्याम, अनाम, मलय-अंतरीप और पूर्वी द्वीप-समूह तक पाये जाते हैं।

गैलागो केवल अफ़्रीका ही में मिलता है! यह भी चूहे से लेकर बिल्ली तक के डीलडौल का एक वानरसम दुमदार प्राणी है और 'ऐ-ऐ' आदि की तरह वृक्षवासी तथा रात को विचरनेवाला है। परंतु स्लो-लोरिस की अपेक्षा यह बहुत अधिक फुर्तीला होता है। माउज़-लीमूर अपने नाम ही के अनुरूप छोटे चूहों से बड़े नहीं होते! ये केवल मेडागास्कर द्वीप ही में मिलते हैं। यहीं असली लीमूर भी केन्द्रित हैं, जो कि बिल्ली के आकार के होते हैं और ऊनी समूर की-सी अपनी रोमावली के लिए मशहूर हैं। इनमें का एक प्राणी छल्लेदार दुमवाला लीमूर है, जिसकी सलेटी रंग की दुम पर दस या बारह बड़े सुंदर काले रंग के छल्ले बने रहते हैं! इसके विपरीत, दूसरी जातियों के लीमूरों की दुमें केवल एक ही रंग की होती हैं। अन्य एक मशहूर लीमूर 'रफ़्फ़ेड लीमूर' कहलाता है। इसकी खाल का समूर अत्यंत घना होता है और दुम लंबी तथा झाड़ की-सी होती हैं। इसका सिर कुत्ते का-सा होता है और कानों पर बालों के गुच्छे होते हैं।

अंतिम वर्ग के 'इंद्रिस', 'सिफ़ाका' और 'आवाही' नामक जीव लीमूर-समूह के सबसे उन्नत नमूने हैं। इंद्रिस के पिछले पैरों की लंबाई अगले पैरों से काफ़ी बड़ी होती है। आवाही को ऊनी लीमूर भी कहते हैं, क्योंकि उसके बदन पर का समूर बहुत ही घना और ऊन का-सा होता है। उसकी दुम शेष सारे बदन से अधिक लंबी होती है और आँखें बहुत बड़ी पायी जाती हैं। सिफ़ाका ऊनी लीमूरों से काफ़ी बड़े होते हैं! इनकी खाल पर का आवरण ऊनी न होकर बालदार होता है। देखने में इनकी सूरत लोमड़ियों की-सी प्रतीत होती है और रंग प्रायः सफ़ेद-चितकबरा होता है, जिस पर लाल-पीले या काले धब्बों की छटा छायी रहती है। ये अन्य अर्द्धवानरों जैसे रात्रिचर न होकर प्रायः सुबह-शाम के वक़्त काफ़ी दौड़-धूप में लगे हुए देखे जा सकते हैं।

नई दुनिया के वानर—मार्मोसेट, मकड़ी-वानर, हाउलिंग वानर आदि

तुम कहोगे कि बंदर तो सब एक जैसे हैं, फिर नई-पुरानी दुनिया के वानरों का व्यर्थ का यह भेदभाव क्यों? जीव-वैज्ञानिकों द्वारा किये गये इस वर्गीकरण की सार्थकता का मर्म हम तब समझते हैं, जब कि एशिया और अफ़्रीका के वानरों तथा अमेरिका की नई दुनिया के बंदरों के बीच के कतिपय मौलिक भेद हमें ज्ञात होते हैं। इनमें एक सबसे बड़ा भेद यह है कि पुरानी दुनिया (अर्थात् एशिया, अफ़्रीका आदि) के वानरों के मुँह में गालों के अंतर्गत कतिपय ऐसी थैलियाँ बनी होती हैं, जिनमें वे अपनी खायी हुई चीज़ें अल्पकाल के लिए धरे रख सकते हैं। साथ ही उनके नथुने भी एक एक-दूसरे से काफ़ी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नज़दीक या सटे हुए-से रहते हैं तथा हाथों के अँगूठे की रचना सुव्यवस्थित ही होती है। इसके विपरीत नई दुनिया (अमेरिका) के वानरों में ये खूबियाँ नहीं होतीं। न तो उनके गालों में ऐसी थैलियाँ ही होती हैं, न उनके नथुने ही वैसे नज़दीक होते हैं। इनके हाथों के अँगूठे भी व्यवस्थित आकार-प्रकार के नहीं होते। हाँ, उनकी एक ख़ास विशेषता, जोकि पुरानी दुनिया के वानरों में नहीं पाई जाती, यह होती है कि उनमें से अधिकतर की दुमें बल खाकर डालियों के आसपास लपेटी जा सकनेवाली होती हैं। इस प्रकार दुम को किसी शाख में लपेटकर, इस वर्ग के बंदर पेड़ों पर से उछलते समय उससे मानों एक अतिरिक्त हाथ का-सा काम लेते पाये जाते हैं !

जैसा कि पिछले पृष्ठों में हम सूचित कर चुके हैं, मार्मोसेट और टेमेरिन नामक उपवर्गों के प्राणियों को मिलाकर, नई दुनिया के वानरों की कुल दस जातियाँ मिलतीं हैं। मार्मोसेट, जिसकी वेशभूषा देखने लायक होती है, एक रंग-बिरंगा छोटा-सा वानर होता है। उसका आकार चूहे या गिलहरी जितना होता है। इसका चेहरा तो काला होता है, पर उसके बीच सफ़ेद रंग की छोटी-सी नासिका सुशोभित रहती है और कानों पर सफ़ेद या काले बालों के दो गुच्छे खिले रहते हैं। यह अनूठा प्राणी अपनी सुंदरता के कारण प्रायः पालतू बना लिया जाता है। कहते हैं, खुश होने पर यह हँसता-मुसकराता-सा जान पड़ता है और जब कभी रंजीदा होता है तो आँसू टपकाने लगता है ! टेमेरिन भी मार्मोसेट जैसा अति लघुकाय दर्शनीय प्राणी होता है, जिसका आकार मुश्किल से सात-आठ इंच से दस-बारह इंच का होता होगा। इसकी भी वेशभूषा बड़ी चित्र-विचित्र होती है। इसकी चार जातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें 'रेशमी टेमेरिन' रेशम के-से अपने मुलायम बालों के कारण बड़ा ही मनोहर जान पड़ता है। कुछ के विचित्र प्रकार की मूँछें-सी भी निकली देख पड़ती हैं। ये दोनों दरअसल वानरसम जीव हैं।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, नई दुनिया के वानर-वर्ग के असली बंदरों की रात्रिचर, तिति, गिलहरी-वानर, साकी, हाउलिंग या हुक्कू वानर, कैपुचिन, ऊनी वानर, मकड़ी-वानर आदि अनेक उपजातियाँ हैं, जोकि उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के समस्त समशीतोष्ण और उष्ण भागों के वन-प्रान्तों में बिखरी पाई जाती हैं। 'रात्रिचर' वानरों के ललाट पर प्रायः तीन आड़ी काली रेखाएँ होती हैं। इनके कुक्कुर दंत बहुत बड़े और निचले कर्तनक दंत काफ़ी आगे निकले हुए होते हैं। ये रात्रि को ही विचरते हैं, इसी से इन्हें रात्रिचर नाम दिया

मनुष्य के निकट संबंधियों में सबसे अधिक शक्तिशाली, भयावना और विशालकाय प्राणी—गोरिल्ला

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गया है। 'तिति-वानरों' की वेशभूषा, अपने गहरे कत्थई रंग के बदन, काले ललाट तथा पीले रंग के हाथ-पैरों के कारण अत्यन्त दर्शनीय होती है। कई के बदन का ऊपरी भाग तो भूरा-सलेटी एवं निचला चटक नारंगी रंग का होता है। इन्हीं के भाई-बंधु 'गिलहरी-वानर' भी अपने चित्र-विचित्र चटकीले-भड़कीले रंगों के लिए मशहूर हैं। इनके सिर बड़े सुडौल और गोल तथा अँगूठे काफ़ी छोटे होते हैं। 'साकी' वानर का भी रूप देखने योग्य होता है। इसकी विविध उपजातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें कई के सिर पर के बाल एक प्रकार की टोपी की-सी शक्ल लिये रहते हैं। कई ऐसे भी होते हैं, जिनके कि सिर पर बाल होते ही नहीं! कई के चेहरे चटक लाल या सेंदुरिया रंग के होते हैं तो कई काले मुँहवाले भी होते हैं। उनके बदन पर के बालों का तो कहना ही क्या! कोई चटकीले कत्थई-लाल तो कोई भूरे-सफ़ेद! कोई पीले और सुनहले तो कोई सलेटी रंग की मिरज़ई पहने हुए-से देख पड़ते हैं! कई के नाक यदि लाल हैं तो दूसरों के एकदम चूने के-से सफ़ेद! इन रंग-बिरंगे वानरों की पूँछ भी विचित्र होती है। वह प्रायः घनी, बालदार और बिना बल खाई हुई-सी होती है। इसी वर्ग की एक जाति 'यूकारी' के नाम से मशहूर है।

नई दुनिया के वानरों की उपर्युक्त शाखा के साकी, यूकारी, तिति-वानर, रात्रिचर वानर, गिलहरी-वानर आदि जीव जितने सुन्दर होते हैं, उतना ही उन्हीं का एक चचेरा भाई-बन्धु 'हाउलिंग' या हुक्कू वानर देखने में भौंडा और बदशकल पाया जाता है! बंदरों की यह जाति मध्य और दक्षिणी अमेरिका में कसरत से फैली हुई है और इसकी एक मुख्य विशेषता है इसकी भयावनी हूक-हूक की आवाज़! यह आवाज़ कई मील की दूरी तक सुनी जा सकती है! सचमुच ही इन वानरों ने निरंतर अभ्यास द्वारा अपने स्वर-यंत्रों को इस प्रकार परिपक्व और असाधारणतया शक्तिशाली बना लिया है कि जिसकी बदौलत ये अद्भुत गहराई और ऊँचाई के स्वर निनादित कर सकते हैं। इनकी ये आवाज़ें केवल नर द्वारा ही प्रसारित की जाती हैं और सुबह-शाम ये अधिक सुनाई पड़ती हैं। नई दुनिया के समस्त वानरों में ये हुक्कू ही सबसे बड़े डीलडौल के होते हैं। पर इनमें मादा नर से बहुत ही छोटी होती है। इनकी दुम में डालियों आदि में लिपट जाने की खास विशेषता पाई जाती है। कहते हैं, जब इनमें के कई बंदर एक साथ चीखने लगते हैं तो उनका सम्मिलित निनाद सिंह की दहाड़ को भी मात करने लगता है। प्रायः ये जीव केवल अपनी भावभंगियों के प्रदर्शन और भाँति-भाँति की मुखमुद्राओं के सहारे ही एक-दूसरे को संकेत करते हुए पाये जाते हैं। परंतु इस वर्ग के सभी जीव बदशकल नहीं होते। इनकी कोई चौदह उपजातियाँ पाई जाती हैं। उनमें से एक लाल हुक्कू बंदर है, जिसकी सुनहली नारंजी एवं गहरी ताम्रवर्णीय चटकीली पोशाक अति आकर्षक होती है।

उपर्युक्त जाति के चित्र-विचित्र वानरों के अलावा, नई दुनिया की और भी जो बंदर-जातियाँ हैं, उनमें 'कैपुचिन' नामक गोल माथेवाले हृष्ट-पुष्ट काले-भूरे वानरों, उनसे बड़े 'ऊनी बंदरों' और इन्हीं की एक उप-जाति के 'मकड़ी-वानरों' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें मकड़ी-वानर अपनी दुबली-पतली देह, लंबे हाथ-पैर और लिपट जानेवाली बेहद लंबी दुम के लिए प्रख्यात हैं। अपने निकट संबंधी ऊनी बंदर की भाँति—जिसकी कि देह ऊन जैसी सघन रोमावली से आच्छादित रहती है—ये सभी वानर अनेक वर्णों के पाये जाते हैं। इन सब वानरों की एक मुख्य विशेषता यह है कि इनके हाथ-पैरों में अँगूठा या तो होता ही नहीं, या होता भी है तो वह केवल नाममात्र का एक निशान जैसा ही होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुरानी दुनिया के वानर—बबून, मैंड्रिल, मंगैबी, मैकेक, काले एप, गुरेज़ा, लंगूर आदि

हम पहले ही यह बात ज़ाहिर कर चुके हैं कि पुरानी दुनिया (अर्थात् एशिया, अफ्रीका, आदि) के बंदर जीव-विज्ञान की दृष्टि से एक ही महान् परिवार के अंतर्गत समाये हुए हैं। साथ ही उनके और नई दुनिया के वानरों के बीच विद्यमान मौलिक भेद भी हम तुम्हें बता चुके हैं। परन्तु उपजातियों के वर्गीकरण के लिहाज़ से इस महान् परिवार को दो बिरादरियों में बाँटा जा सकता है। एक में बबून, मंगैबी, मैकेक और काले एप सम्मिलित किये जा सकते हैं। दूसरी में, गुरेज़ा और लंगूरों को शरीक किया जा सकता है। इनमें प्रथम समूह के सभी बंदर गालों के भीतर की थैलियों और नितंबस्थान पर भौंडी निर्लोम मांसल रचनाओं से युक्त पाये जाते हैं। इनकी दुमें किसी-किसी में तो काफ़ी लंबी और किसी में बहुत छोटी या एकदम ग़ायब भी होती हैं! इस वर्ग के कुत्ते के-से मुँह के बबून नामक प्राणी शायद पुरानी दुनिया के वानरों में सबसे निम्न कोटि के माने जा सकते हैं। इनके चेहरे काफ़ी बड़े और विकसित होते हैं। हाथ-पैर समान लंबाई के पाये जाते हैं। ये चारों हाथ-पैरों के बल चौपायों की तरह ज़मीन पर पूरी तरह तलुवे जमाकर चलते हैं और ज़्यादातर धरती ही पर रहना पसंद करते हैं। कभी कदाचित् ही आहार की खोज में वे वृक्षों पर चढ़ते होंगे!

बबूनों की कई जातियाँ पाई जाती हैं, जो अरब से लेकर पूर्वी अफ्रीका तक फैली हुई हैं। इनमें से एक प्रख्यात जाति पीले बबूनों की है, जो अपने हरित-पीत वर्ण के समूर, सिंह की-सी लंबी पूँछ और भयावनी आकृति के लिए मशहूर हैं। इनके नर मादा से बहुत बड़े होते हैं और ख़तरे की स्थिति में वे अपनी जान की बाज़ी लगाकर उनकी रक्षा के लिए दौड़ पड़ते हैं। ये बड़े ही निर्भीक, छेड़ने पर आगबबूला हो जानेवाले ख़तरनाक जीव होते हैं। कहते हैं, तेंदुए और चीते तक उनसे बेहद डरा करते हैं! इनकी एक विशेषता इनके नितंबस्थान पर गहरे गुलाबी रंग की वे गद्दीदार मांसल रचनाएँ होती हैं, जिनके कारण पीछे की ओर से ये बड़े भौंडे जान पड़ते हैं। नरों के सिंह की-सी अयाल भी पाई जाती है। ये वानर प्रचंड शक्तिशाली, दीर्घजीवी और तेज़ निगाहवाले होते हैं। भाँति-भाँति की फल-तरकारियों के अलावा कतिपय कीड़ों को भी खा लेने के ये आदी हैं। इनके कुक्कुर दंत बहुत लंबे और भयावने होते हैं।

इसी बृहत् समुदाय का एक प्रसिद्ध सदस्य मैंड्रिल नामक चित्रविचित्र वानर है, जिसके चेहरे और बदन पर की प्राकृतिक रंगीन चित्रकारी देखते ही बनती है। ऐसा जान पड़ता है, मानों बंदर का रंग-बिरंगा कृत्रिम चेहरा लगाकर रामलीला में भाग लेनेवाले किसी स्वाँगी अभिनेता का हुबहू प्राकृतिक प्रतिरूप ही वह हो! इस अनोखे कुदरती बहुरूपिये की नाक सिरे और मध्य भाग पर चटकीले लाल रंग की होती है और उसके आसपास दोनों ओर चमकीले नीले रंग की दो बड़ी-सी ऊँची उठी हुई रचनाएँ चेहरे पर बनी पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त इसके खुले हुए नितंबीय पृष्ठभाग पर भी लाल, सेंदुरिया, बैंजनी एवं नीले-पीले सभी वर्णों के घालमेल की अनोखी चित्रकारी का एक नमूना-सा बना दिखाई देता है! पर तारीफ़ की बात तो यह है कि उसकी यह सारी रंग-बिरंगी छटा उसकी खाल या चमड़ी ही में निखरी रहती है! इसकी बालदार पोशाक का रंग भी कोई कम भड़कीला नहीं होता। वह हरित जैतूनी से लेकर कत्थई, रुपहले सलेटी और काले तक अनेक वर्णों की छाया छितराये रहती है, जिनमें सबसे आकर्षक छटा उसकी दाढ़ी की होती है, जो ठुड्ढी से नीचे पीले रंग के एक गुच्छे के रूप में दो सुघड़ भागों में बँटी हुई-सी निखरी रहती है! इसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतिरिक्त इसके कानों के पीछे के बाल भी, जो दुग्धधवल वर्ण के होते हैं, कोई कम अनोखे नहीं लगते। कहाँ तक इसके बदन और चेहरे पर की विचित्र चित्रकारी का वर्णन किया जाय ! उसके इस रंग-बिरंगे स्वाँग को देखकर किसी ने ठीक ही कहा था कि इसका मुखमंडल तो मानों सूर्योदय की और पृष्ठभाग सूर्यास्त की झाँकी निखराए हुए है ! परन्तु इसका यह विचित्र रूप केवल नर की ही विशेष संपत्ति है, मादा मैण्ड्रिल में उसका लवलेश भी नहीं पाया जाता। वैज्ञानिकों का कथन है कि प्रकृति ने इसकी यह शृंगार-योजना किसी मतलब ही से की है। संभवतः, उसका एकमात्र अभिप्राय यही हो कि इस शृंगार की बदौलत मादाएँ नर के प्रति आकर्षित हो सकें !

बबून-समुदाय के सबसे बड़े डीलडौल का प्राणी होने के नाते, क़द के लिहाज़ से, मैण्ड्रिल इस वर्ग का सरदार माना जा सकता है। वह खड़ा होने की दशा में कम से कम पाँच फ़ीट ऊँचा दिखाई देता है। अन्य बबूनों की भाँति वह भी महान् शक्तिशाली, क्रोधी और निर्भीक होता है। वह अफ्रीका के पश्चिमी तटवर्ती गिनी प्रदेश में बहुतायत से पाया जाता है। मैण्ड्रिल ही का एक छोटा भाई 'ड्रिल' नामक बबून होता है। उसका चेहरा घोर काला और नितंब पर के मांसल अंश चटक सेंदुरिया होते हैं। इन्हीं से मिलता-जुलता एक कृष्णकाय वानर सेलीबीज़ द्वीपों में मिलता है, जिसकी दुम केवल इंच भर लंबी होती है ! इस काले एप के भी नितंब-भागों पर बबूनों की-सी रक्तवर्णीय मांसल गद्दी प्रदर्शित होती है !

मैकेक-वर्ग के वानर बबूनों से इस अर्थ में पृथक् होते हैं कि एक तो उनके चेहरे छोटे होते हैं, दूसरे उनमें दुम का कोई ठिकाना नहीं होता, अर्थात् किसी में वह बेहद लंबी तो किसी में एकदम छोटी, किसी में मझोले आकार की, या सिंह की-सी, तो किसी में एकदम अदृश्य-सी होती है। इस वर्ग के बंदर मोरक्को, अल्जीरिया, स्पेन तथा जिब्राल्टर से लेकर तिब्बत और जापान तक विस्तृत हैं। विशेषकर पूर्वी द्वीप-समूह और सेलीबीज़ द्वीप तो इनसे भरे पड़े हैं। इस समूह का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण अल्जीरिया, मोरक्को, स्पेन तथा जिब्राल्टर का वासी 'बारबेरी एप' है, जो अपने भारी-भरकम शरीर और बाहरी दिखावे में दुम के एकदम अभाव के लिए प्रख्यात है। अन्य मैकेक-वर्ग के वानरों में सेलीबीज़ टापू के काले बंदर; कोचीन-चीन, बर्मा और आसाम के भूरे बंदर ; छोटी दुमवाला जापानी बंदर, और मलय अंतरीप, बर्मा तथा टेनासरीम प्रदेश का सुअर की-सी दुमवाला भारी-भरकम साँवला बंदर उल्लेखनीय हैं। परन्तु हमारे लिए तो इस वर्ग का महत्त्व सबसे अधिक केवल इसलिए है कि हमारे देश के वानरों की दो मशहूर जातियाँ—उत्तरी भारत का साधारण सुनहला-भूरा बंदर एवं दक्षिणी भारत का बालों की टोपीवाला सलेटी रंग का बंदर—इसी वर्ग के अंतर्गत सम्मिलित हैं। जीव-वैज्ञानिकों ने इनका वर्गीकरण 'हीसस' एवं 'सिनिका' इन दो उपवर्गों में किया है। परन्तु लौकिक शब्दावली में वे 'बंगाल' और 'मद्रास' के बंदरों के नाम से अधिक प्रख्यात हैं। प्रथम जाति के बंदर हिमालय से लेकर मध्यप्रदेश के अंतिम छोर तक फैले पाये जाते हैं। इसके बाद दक्षिण भारतीय वानरों का इलाक़ा आरंभ होता है, जो ठेठ लंका तक व्याप्त है।

इन बंदरों में, उत्तरी भारत के वानरों के आकार-प्रकार तथा उनके रूप का परिचय देने की भला हमारे यहाँ किसे आवश्यकता हो सकती है ! ये तो हमारे इतने जाने-पहचाने हुए हैं कि बच्चा-बच्चा तक इनकी शक्ल से वाकिफ़ है। हाँ, दक्षिण भारत की वानर जाति के बारे में कुछ कहना ज़रूरी है। ये बंदर स्वभाव में तो अपने उत्तर भारतीय चचेरे भाइयों के ही समान होते हैं। परन्तु एक तो वे क़द में तनिक छोटे होते हैं, दूसरे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनका रंग भी अपने उत्तर भारतीय बन्धुओं से कुछ निराला, अर्थात् हरित्वर्ण भूरा-सा, या रुपहला साँवला सा होता है। इनकी दुम भी अपेक्षाकृत ज़्यादा लंबी होती है और सिर पर के बाल इतने घने तथा इस प्रकार से व्यवस्थित होते हैं कि उनकी एक टोपी की-सी शक्ल बन जाती है। भला, अपने देश के इन दोनों ही प्रकार के बंदरों की रोज़मर्रे की शैतानियों और तरह-तरह के नटखटपन की उनकी अनेकों करतूतों से कौन हमारे यहाँ परिचित नहीं हैं! जहाँ वे मदारी की कमाई के साझेदार बनकर मनुष्य की तरह-तरह की नक़लें उतारने और ठुमक-ठुमककर नाच दिखाने की योग्यता रखते हैं, वहाँ हमारे घरों में चोर की तरह चुपके से घुसकर किसी भी चीज़ को उठा ले जाने और हर तरह से लोगों को दिक करते रहने से भी वे नहीं चूकते। इनका सबसे बड़ा जमघट अयोध्या, मथुरा आदि तीर्थस्थानों में रहता है, जहाँ असावधान यात्रियों के साथ प्रतिदिन अपनी बेजा हरकतें करते रहने पर भी कोई इनसे चूँ नहीं करता, कारण हिन्दुओं द्वारा ये पवित्र माने जाते हैं!

बनमानुसों में सबसे अधिक बुद्धिमान और मनुष्य की तरह बर्ताव करनेवाला प्राणी—चिम्पैंज़ी

अक्सर ये शौच के लिये बैठे हुए मुसाफ़िरों के लोटे तक उठा ले जाते हैं! रेल के डिब्बे में बैठकर खाना खाते हुए मुसाफ़िरों के हाथ से पूड़ी-कचौड़ी छीन ले जाते हैं! यहाँ तक कि कभी-कभी दुधमुँहे मानवीय शिशुओं तक को उठाकर पेड़ों पर जा बैठते हैं और बड़ी कठिनाई से कुछ खाने-पीने की चीज़ें दिखाकर उनके चंगुल से ऐसे बच्चों को छुड़ाया जाता है! किसानों के तो ये सबसे बड़े दुश्मन होते हैं, क्योंकि प्रति वर्ष हज़ारों मन अनाज और फल आदि इनके उपद्रवों के मारे नष्ट होते रहते हैं!

जहाँ मैकेक-वर्ग के वानर एशिया, अफ्रीका और योरप के भी कुछ भागों में फैले हुए हैं, वहाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
मंगेबी-जाति के सभी बंदर केवल अफ्रीका ही की परिधि में सीमित हैं। ये गिनी तट से केनया तक विस्तृत पाये जाते हैं। आकार-प्रकार में मैकेक-वानरों से ये अधिक दुबले-पतले और नाजुक होते हैं। इनके हाथ-पैर अधिक लंबे और दुमें भी अपेक्षाकृत लंबी होती हैं। इनमें सबसे सुंदर सफ़ेद गलेवाला मंगेबी होता है, जिसके सिर के बाल कुम्मैत रंग के होते हैं। एक मंगेबी एकदम काजल-जैसा काला भी होता है।

मंगेबियों की तरह 'गुइनान' नामक वानरों की जाति भी अफ्रीका महाद्वीप की सीमाओं में ही पायी जाती है। ये वानर लंबी दुमवाले, चित्र-विचित्र रंगों के और मुख्यतः वृक्षवासी जीव होते हैं। इनकी एक जाति हरे रंग की होती है और दूसरे कई लाल, सफ़ेद, सलेटी रंगों के भी पाये जाते हैं।

पुरानी दुनिया के वानरों की दूसरी महान् बिरादरी —जो कि बबून, मैकेक, मंगेबी, काले एप तथा गुइनान आदि वानरों की प्रथम बिरादरी से एकदम भिन्न है—'गुरेज़ा' और 'लंगूर' नामक दो उपवर्गों के कपियों की है, जो बहुत लंबी पूँछवाले एवं काफ़ी बड़े आकार-प्रकार के जीव होते हैं! लंगूर केवल एशिया में पाये जाते हैं और गुरेज़ा अफ्रीका तथा उसके समीपवर्त्ती टापुओं में ही। लंगूरों में गालों की थैलियाँ बिल्कुल ही नहीं होतीं। इनकी कई उपजातियाँ हैं। इन्हीं में की एक उपजाति हमारे देश के प्रसिद्ध हनुमान-लंगूरों की है। ये काले मुँह के रुपहले सलेटी या साँवले-भूरे रंग के वानर अपनी लंबी दुम की बदौलत एक से दूसरे पेड़ तक या एक मकान से दूसरे मकान तक चालीस फ़ीट तक की छलाँग मारते देखे जा सकते हैं! ये साधारण बंदरों से ज़्यादा ताक़तवर होते हैं, परन्तु उतने चालाक और उपद्रवी नहीं होते। ये गिरोह या समूह ही में रहते हैं और फल-फूल, अनाज तथा पत्तियों के अलावा कीड़े और अंडे तक खा लिया करते हैं। भारतवर्ष में इनका गढ़ देश का मध्यवर्त्ती भाग है। इसी वर्ग का 'हिमालयी लंगूर' आकार में सबसे बड़ा और भूरे-सलेटी बदन तथा श्वेत मस्तकवाला होता है। अन्य कई उपजातियाँ बोर्नियो, सुमात्रा, कोचीन-चीन, अनाम, पूर्वी तिब्बत तथा मध्य चीन तक फैली पाई जाती हैं, जिनके वर्ण चटकीले बादामी-कुम्मैत से लेकर घोर काले तक होते हैं। कई के हाथ-पैर, छाती आदि अंग विभिन्न रंगों के होते हैं। सबसे मार्के का लंगूर बोर्नियो का लंबी नाकवाला वानर है, जिसकी नासिका, विशेषकर नर लंगूर में, असाधारणतया लंबी होती है। गुरेज़ा काले, लाल और सफ़ेद-काले इन तीन उपवर्गों में बँटे हुए हैं। इन वानरों के बदन की केशराशि बहुत अधिक लंबी होती है। वह दोनों बाजू में इस प्रकार नीचे लटकती देख पड़ती है जैसे चँवरी गाय या याक में लटकते पायी जाती है! ये वानर मुख्यतः पत्तियाँ ही खाकर रहते हैं।

बनमानुस —गिब्बन, सायमाङ्ग, ओरेङ्ग-उटाङ्ग, गोरिल्ला और चिम्पेञ्जी

प्रधानभागीय जीवधारियों अर्थात् प्राइमेट्स-समूह की (मनुष्य को छोड़कर) सबसे समुन्नत और अंतिम शाखा 'बनमानुसों' अर्थात् वानर-वर्ग के मानवसम प्राणियों की है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इस वर्ग के अंतर्गत 'गिब्बन' और 'सायमाङ्ग' नामक दो निम्न कोटि के तथा 'ओरेङ्ग-उटाङ्ग', 'गोरिल्ला' और 'चिम्पेञ्जी' नामक तीन उच्च कोटि के मानवसम प्राणी सम्मिलित हैं। ये सब वृक्षवासी जीव हैं, परन्तु इनकी एक खूबी यह है कि जब ये धरती पर रहते हैं तो अपने पैरों पर मनुष्य की तरह कुछ झुके हुए-से खड़े रह सकते हैं। इनके हाथ इतने लंबे होते हैं कि इस खड़े रहने की अवस्था में भी उनकी उँगलियाँ ज़मीन को छू सकती हैं। इन प्राणियों के गालों में वानरों की-सी थैलियाँ नहीं होतीं। न बाहरी दिखावे में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनके दुम या पूँछ ही पायी जाती है । गिब्बन को छोड़कर, नितंब-भागों में बबूनों की-सी खुली मांसल रचनाएँ भी इनमें किसी के नहीं होतीं और इनके पेट, लंगूरों जैसे पेचीदा रचना के न होकर, नितान्त सरल ढंग के होते हैं । परन्तु इस वर्ग के प्राणियों की जो सबसे बड़ी विशेषता है, वह है दरअसल उनके मस्तिष्क का वृहत् आकार-प्रकार, जो मनुष्य की उन्नतावस्था का न होने पर भी सारे प्राणि-जगत में अन्य सभी जीवधारियों से अधिक समुन्नत और बड़ा होता है । इनके कुक्कुरदंत, विशेषतया नरों में, क़ाफ़ी बड़े होते हैं ।

गिब्बन और सायमाङ्ग बनमानुस-वर्ग के सबसे निचले सोपान के प्राणी कहे जा सकते हैं । इनके सिर छोटे और गोल तथा पैरों से हाथ बहुत ज़्यादा लंबे होते हैं । ये शत-प्रति-शत वृक्षवासी जीव हैं । गिब्बन छोटे आकार के और दुबले-पतले होते हैं—कुल दो-ढाई फ़ीट लंबे ; जबकि सायमाङ्ग तीन फ़ीट से भी ज़्यादा क़द के पाये जाते हैं । गिब्बनों की कोई बारह उपजातियाँ हैं, जिनमें कुछ बिल्कुल काली, कुछ पिलौंही-भूरी, कुछ सफ़ेद हाथ और भौं वाली और अन्य सलेटी रंग की मिलती हैं । ये सब जातियाँ भारतवर्ष के आसाम और भूटान प्रदेशों से लेकर सुदूर पूर्व में मलय-प्रदेश, कोचीन-चीन, युनान एवं पूर्वीय द्वीप-समूह तक फैली हुई हैं । सायमाङ्ग, जोकि नितान्त काले वर्ण ही के होते हैं, मलय-प्रदेश, सुमात्रा, पागी-द्वीपसमूह और टेनासरीम प्रदेश में पाये जाते हैं । गिब्बन ही एक ऐसा बनमानुष है, जो मनुष्य की तरह बिना झुके हुए एकदम सीधा टटार खड़ा रह सकता है और चल-फिर सकता है । अन्य बनमानुस कुछ झुके-से खड़े होते हैं । इसकी तुलना प्रायः नई दुनिया के वृक्षवासी मकड़ी-वानरों से की जाती है । यह अपने लंबे-लंबे हाथों से डालियों पर झूलता हुआ-सा कभी-कभी बारह से अठारह फ़ीट तक के फ़ासले एक ही हाथ में पार कर लेता है ! सरकस के खिलाड़ियों की-सी इसकी यह हवाई यात्रा देखने योग्य होती है । इन बनमानुसों में हमारे देश के आसाम प्रान्त का हुक्कू या उलूक वानर प्रायः जंतुशालाओं में अपनी 'हु-उक्' 'हु-उक्' आवाज़ से दर्शकों का मनोरंजन करते देखा जा सकता है । गिब्बनों की यह बोली—जिसे ये जंगलों में प्रायः सुबह-शाम सौ-पचास एक साथ मिलकर निनादित करते रहते हैं—बड़ी ही कर्कश और डरा देनेवाली होती है ! इनके आहार में कंद-मूल, फल-पत्ती आदि से लेकर छोटी-छोटी चिड़ियों, कीड़ों, मकड़ियों और अंडों तक का समावेश पाया जाता है ।

ओरेङ्ग-उटाङ्ग नामक बनमानुस क़द में लगभग ४॥ फ़ीट होता है और उसके हाथ असाधारण लंबाई के होते हैं । पर मादा ओरेङ्ग-उटाङ्ग नाटे क़द की होती है । यह मानवसम प्राणी बोर्नियो और सुमात्रा के वनों ही में पाया जाता है । देखने में यह बड़ा भौंडा होता है । इसकी पीठ चलते समय एकदम कुबड़े-जैसी धन्वाकार हो जाती है । बदन पर की केशराशि ललौंह रंग की और कहीं-कहीं फुट भर तक लंबी होती है ! पेट पर एक भद्दी-सी गोल तोंद निकली रहती है । चेहरा निर्लोम और सदैव विषादयुक्त-सा देख पड़ता है । कान मनुष्य जैसे छोटे, नासिका बैठी-सी, और ऊपरी ओठ बेहद चौड़ा होता है । बूढ़े नरों में चेहरे की आजू-बाजू त्वचा की दो बृहत् शिकनें-सी लटक आती हैं । कभी-कभी उनके लंबी मूँछें भी निकल आती हैं । गले के हिस्से में एक थैलीनुमा रचना पाई जाती है, जिसे आवेश की स्थिति में यह वायु द्वारा फुला लेता है । इस प्राणी की खोपड़ी और मस्तिष्क-भाग मनुष्य के साथ अन्य सभी बनमानुसों से कहीं अधिक मिलता-जुलता हुआ पाया जाता है । यह एक बड़ा सीधा-सादा और विनम्र प्रकृति का भावुक प्राणी है । जंतुशालाओं में प्रायः यह अपने पालकों के प्रति ममत्व रखने लगता है और उन्हें गले से लगा लेता है । परन्तु यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक शिथिल स्वभाव का सुस्त प्राणी है। यह पेड़ों पर ही एक घोंसला-सा बनाकर रहता है और गिब्बन की तरह डालियों के ऊपर ही ऊपर विचरता रहता है।

इसके विपरीत 'गोरिल्ला'—जिसे बनमानुस-वर्ग का सरदार कहा जा सकता है—एक अति भयावना और प्रचंड शक्तिशाली जीव है। उसका आकार सभी बनमानुसों से अधिक होता है। प्रौढ़ नर गोरिल्ला का क़द ५॥ फीट से भी अधिक और वज़न ४००° पौंड (लगभग ५ मन) तक का पाया जाता है! इसका शरीर बेहद हृष्ट-पुष्ट, छाती पहलवानों की-सी चौड़ी, भुजाएँ सशक्त और उभरी हुई, सिर बड़ा, मुँह काफ़ी चौड़ा तथा ऊपरी ओठ छोटा-सा होता है। इसके बदन पर के बाल घने और लंबे होते हैं और कुक्कुरदंत बेहद बढ़े हुए और सुविकसित होते हैं। वे प्रायः कराल दंष्ट्रों का-सा रूप ग्रहण कर लेते हैं। यह विशालकाय बनमानुस केवल बेल्जियन कांगो के एक सीमित क्षेत्र ही में पाया जाता है। यह सघन वनों का वासी है और प्रायः अपने परिवार को लेकर यहाँ से वहाँ विचरता रहता है। यह दिन भर तो कंद-मूल-फल द्वारा आहार-पूर्त्ति करने में व्यतीत कर देता है और जब रात का अँधेरा छा जाता है तो अपने बच्चों को मादा-सहित, डालियों आदि से एक मचान-सा बनाकर, किसी वृक्ष पर सुला देता है और स्वयं सारी रात उस वृक्ष के तने के पास बैठकर नीचे पहरा देता रहता है! परिवार-रक्षा की इसकी यह प्रवृत्ति, निस्संदेह, इसकी मानवसम प्रवृत्तियों की एक ज्वलन्त साक्षी है। सामान्यतया, गोरिल्ला मनुष्यों पर आक्रमण नहीं किया करते, परन्तु यदि घिर जायँ या छेड़ दिये जायँ तो वे विकराल हो उठते हैं और तब उग्रतापूर्वक लड़ते देखे जाते हैं। आवेश में होने पर वे ज़ोरों से चिंघाड़ने लगते हैं और ज़ोर-ज़ोर से अपने दोनों हाथों द्वारा छाती ठोंकने लगते हैं! ये ज़मीन पर चारों हाथ-पैरों के बल अजीब तरह से लँगड़ाते हुए-से चलते हैं। इनका शरीर भालू की तरह काले या साँवले-भूरे रंग के घने बालों से ढका रहता है। पीठ पर के बाल सलेटी रंग के होते हैं और सिर पर कुछ ललौंह-सी छाया वे दरशाये रहते हैं। परन्तु इतने भारी-भरकम डीलडौल के होकर भी इनका मस्तिष्क वज़न में सामान्य मानवीय मस्तिष्क से दस औंस कम वज़न का ही होता है।

बनमानुस-वर्ग का अंतिम प्राणी 'चिम्पैंज़ी' है, जो मनुष्य के अनुकरण में अनेक काम करने की योग्यता रखने एवं भाँति-भाँति से अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय देने के कारण विशेष रूप से लोकप्रिय बन गया है। इसका आकार गोरिल्ला से बहुत छोटा होता है और पैर अपेक्षाकृत लंबे होते हैं। जंगली दशा में यह भी विषुवत्-प्रदेशीय अफ्रीका के वनप्रान्तों ही में पाया जाता है, परन्तु यह आसानी से पालतू बना लिया जाता है और प्रायः प्रत्येक बड़े जंतु-संग्रहालय में देखा जा सकता है। इसका मस्तिष्क अत्यधिक विकसित होता है, जिसके आधार पर जीव-वैज्ञानिकों ने यह मत प्रस्तुत किया है कि समस्त मानवसम प्राणियों में यही मनुष्य के सबसे नज़दीक पहुँचा हुआ जीव है। इसके ओठ लंबे व आगे उभरे हुए, कान बड़े, माथा अधिक सुडौल और चेहरा काला या मांस के-से रंग का होता है। अन्य बनमानुसों की तरह इसका भी शरीर काले-भूरे बालों से ढका रहता है। ये जीव भी अपना अधिकांश समय वृक्षों पर ही बिताते हैं। कभी-कभी ये पैर पटक-पटककर नाचते भी देखे जाते हैं! पालने पर ये तरह-तरह के खेल-कूद और मनुष्य-जैसे काम करना (जैसे बाइसिकल चलाना, मेज पर बैठकर छुरी-काँटे से खाना, कपड़े पहनना आदि) सीख जाते हैं! सारांश यह है कि भाँति-भाँति से ये अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और कुशाग्र स्मृति का परिचय अपने करतबों द्वारा देते हैं। कई वैज्ञानिकों का तो खयाल है कि उचित शिक्षा देने पर ये हमारे घरेलू नौकरों तक का स्थान ग्रहण कर सकते हैं!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिंसक पशु

पिछले एक प्रकरण में, जंतु-जगत् की श्रेणिबद्ध वर्ण-व्यवस्था का विवरण प्रस्तुत करते हुए, हम स्तनपोषी समुदाय की एक आमिषभोजी (अर्थात् मांसभक्षी) शाखा का उल्लेख कर चुके हैं ! जैसा कि पृ० ७ पर दिये गये जीवधारियों के वंश-विकास-वृक्ष के मानचित्र से सुस्पष्ट है, स्तनपोषियों की यह हिंसाजीवी शाखा विकास और उन्नति की दृष्टि से जंतु-संसार की सबसे ऊपर की शाखाओं में से है। वह वानर आदि प्रधानभागीय जीवों के समकक्ष की एक समुन्नत जंतु-शाखा है, और जहाँ तक कि आतंक, प्रभुत्व एवं दबदबे का सवाल है, उसके अधिकांश सदस्यों का सारे जंतु-संसार पर एक ज़बर्दस्त रोब और खौफ़-सा छाया हुआ है—यहाँ तक कि इस धरती के एकछत्र स्वामी मनुष्य के लिए भी वे खतरनाक शत्रुओं जैसे हैं, अर्थात् उसके लिए वे नितान्त भय की वस्तु बने हुए हैं !

इन मांसाहारी एवं हिंसक स्तनपोषियों की जीव-विज्ञान में अनेक पृथक्-पृथक् बिरादरियाँ-सी मान ली गई हैं—जैसे कि बिड़ाल-वर्ग (सिंह, बाघ, चीता, तेंदुआ, स्याहगोश, बिल्ली आदि); खीखर-वर्ग या कटास-वर्ग (खीखर या कटास, मुश्क बिल्ली, मुसंग आदि); लकड़बग्घा-वर्ग; कुक्कुर-वर्ग (भेड़िया, सियार, लोमड़ी, कुत्ता आदि); बिज्जू-वर्ग (बिज्जू, ऊदबिलाव आदि); भालू या ऋक्ष-वर्ग; सील-वर्ग (सील, वालरस) आदि। इन स्तनपोषी हिंसक जंतुओं के कुछ सामान्य लक्षण हैं, जिनके आधार पर सहज ही वे जीवधारियों के अन्य वर्गों से पृथक् किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, इन सबके कुक्कुरदंत अर्थात् मांस-भक्षण के लिए विशेष रूप से उपयोगी, तीक्ष्ण धारवाले और नुकीले दाँत होते हैं। इसी प्रकार इनके पंजे शिकार करने के लिए खास तौर से विकसित तथा तेज़ नाखूनवाले होते हैं, जिनके कि नीचे का तलवा गद्देदार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता है, जिससे कि ये जीव शिकार को अपनी मौजूदगी की सूचना या आहट दिये बिना ही उस पर टूट पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त इन सबकी एक विशेषता यह भी होती है कि इनकी हँसुली या गले पर की हड्डी संपूर्ण नहीं होती एवं निचला जबड़ा अर्द्धगोलाकार शक्ल का होता है। अपनी हिंस्र शिकार-वृत्ति के कारण इनमें दौड़ने, उछलने, अँधेरे में देखने, तथा दूर ही से सूँघकर या आहट पाकर शिकार का पता लगाने आदि संबंधी असाधारणतया विकसित शक्तियाँ होती हैं। मांसभक्षी जीवों का यह विशाल परिवार देखने में भयावना तो होता ही है, साथ ही प्रकृति ने उन्हें अपनी शिकार-वृत्ति में सुविधा प्रदान करने के लिए प्रायः ऐसी चितकबरी वेशभूषा दे रक्खी है, जिससे कि वे जंगलों के पेड़-पत्तों और घास-पात आदि में सहज ही अपने बदन को छिपाये रखकर शिकार के जानवरों की दृष्टि से ओझल बैठे रह सकते हैं! इनकी इस चित्र-विचित्र वेशभूषा ने प्रकृति के अजायबघर को सजाने-सँवारने में विशेष रूप से योग दिया है और फलतः भयानक रूप से खतरनाक होते हुए भी ये जीव आदिकाल ही से मनुष्य के लिए काफ़ी दिलचस्पी की चीज़ रहे हैं! आओ, अब हम इनमें से अलग-अलग परिवारों के कतिपय प्रमुख नमूनों का परिचय पाने का प्रयास करें।

जंगल का राजा—सिंह

सिंह का परिचय भारतवासियों को देना मानों सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है! कारण, अपने इतिहास के आदिकाल ही से जंतु-जगत् का यह सर्वमान्य सम्राट् हमारा इतना जाना-पहचाना और आदरणीय रहा है कि उसका नाम हमारी संस्कृति का एक गौरवान्वित अंग बनकर, हमारे यहाँ पराक्रम, प्रभुत्व, शक्ति और सर्वोच्च सम्मान का एक प्रतीक-सा बन गया है। वही भगवती दुर्गा के वाहन के रूप में हमारे यहाँ प्रतिष्ठित है! उसी के नाम और रूप के आधार पर सम्राटों का अडिग उच्च आसन हमारे यहाँ 'सिंहासन' कहलाता रहा है! उसी की प्रतिमा अशोक जैसे राजन्य की शक्ति-प्रतीक बनी और आज भी इस राष्ट्र द्वारा जो राजचिह्न अपनाया गया है वह उसी की आकृतियों से सुशोभित है! और तो और, इस देश के क्षत्रिय-वर्ग द्वारा अपने नाम के आगे इसके नाम को जोड़ने का मानों एक रिवाज-सा बन गया है—इतना अधिक महिमामय स्थान पा चुका है यह जीवधारी हमारे दिन-प्रति-दिन के जीवनक्रम में!

निश्चय ही सिंह जंगल का एकछत्र बादशाह है और जीव-वैज्ञानिकों द्वारा निर्धारित बिड़ाल-परिवार का तो वह माना हुआ कुलपति है। प्रायः लोग भ्रमवश असली बब्बर सिंह और उसके चचेरे भाई शेर या बाघ ('टाइगर') को एक ही नाम से पुकारने लगते हैं, जिससे कि इन दोनों के बारे में काफ़ी ग़लतफ़हमी हो जाती है। यह सच है कि ये दोनों ही जीव एक ही विशाल समुदाय के सदस्य हैं, जिसे ऊपर उल्लिखित 'बिड़ाल-परिवार' का नाम दिया गया है। परन्तु जहाँ तक उपवर्गों या जातियों का संबंध है, सिंह ('लायन') और बाघ ('टाइगर') दो बिल्कुल अलग-अलग बिरादरियों के पशु हैं। इनके पारस्परिक अंतर की एक मुख्य पहचान है इनकी वेषभूषा! जब कि बाघ चटकीली काली और पीली धारियों या पट्टियोंवाला प्राणी है, सिंह केवल ऊँट के-से सादे हल्के भूरे रंग का एक पशु है। उसकी एक शानदार विशिष्टता उसके कंधे से सिर तक विस्तृत 'केसर' या 'अयाल' नामक बालों का वह भव्य समूह है, जिसके कि कारण संस्कृत में वह 'केसरी' नाम से पुकारा गया है। अयाल की यह विशेषता केवल नर ही में होती है, मादा में नहीं। इसके अतिरिक्त और भी कुछ खूबियाँ असली बब्बर सिंह में होती हैं, जोकि बाघ या शेर से उसे बिल्कुल ही जुदा कर देती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उदाहरणार्थ, सिंह की लंबाई यद्यपि बाघ से कम होती है, पर ऊँचाई में वह उससे बढ़ा-चढ़ा होता है ! प्रायः तनकर खड़ा होने पर उसका क़द ३ फ़ीट ८ इंच और दुम के सिरे से लेकर नाक तक उसकी लंबाई लगभग १०॥ फ़ीट होती है। इसके प्रतिकूल बाघ क़द में अधिक से अधिक ३॥ फ़ीट और लंबाई में लगभग पौने ग्यारह फ़ीट तक पहुँचते पाया गया है। फिर, दोनों की पूँछ भी अपने-अपने ढंग की निराली होती है। जहाँ बाघ की दुम—जो कि उसकी कुल लंबाई की तृतीयांश से भी अधिक होती है—बिल्ली की दुम की तरह उत्तरोत्तर पतली पड़ती हुई एक रस्सी के सिरे की तरह योंही समाप्त हो जाती है, वहाँ सिंह की पूँछ के सिरे पर, ढोरों की पूँछ के सिरे पर के गुच्छे का-सा, काले बालों का एक चँवर होता है, जिसके अंतिम छोर पर सींग के-से पदार्थ की बनी एक छोटी-सी कड़ी कील जैसी रचना होती है। इसका अभिप्राय क्या है, कुछ समझ में नहीं आता ! इसके अतिरिक्त, सिंह और बाघ के स्वभावों में भी गहरा अंतर पाया जाता है। सिंह अपने नाम के अनुरूप ही अधिक गहन-गंभीर, उदार एवं उदात्त वृत्ति का होता है। वह बाघ की भाँति सघन वनों में लुके-छिपे रहने के बजाय खुले घास के मैदानों में रहने का अधिक शौक़ीन होता है। जब मौक़ा पड़ता है तो वह बाघ से कहीं अधिक दिलेर और साहसी भी साबित होता है। उसकी दहाड़ तो, बाघ ही क्या, समस्त जंतु-जगत् के प्राणियों में सर्वोच्च स्थान रखती है ! उसकी वह गरज मीलों तक सुनाई दे सकती है और उसे सुनकर छोटे-बड़े समस्त जानवरों का कलेजा डर और दहशत के मारे थरथरा उठता है !

यद्यपि एक शिकारी के रूप में सिंह से बाघ की ख्याति अधिक है, तथापि शिकार करते समय सिंह उससे कोई कम शक्तिशाली और प्रतापी नहीं साबित होता। कहते हैं, उछलने में तो निश्चित रूप से वह बाघ से भी बाज़ी मार ले जा सकता है। उसके लिए बीस फ़ीट तक की छलाँग मारना एक मामूली बात है ! शिकार के वक़्त बाघ जहाँ लुक-छिपकर टेढ़े-तिरछे ढंग से झपटता है, सिंह वहाँ एकदम सीधा हमला बोल देता है और शिकार पर टूट पड़ता है।

वनराज सिंह—अपनी सम्राज्ञी सिंहनी के साथ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
इस भयावने प्राणी का कमर का हिस्सा तो दुबला-पतला और लचकीला-सा होता है, परन्तु आगे का भाग बड़ा ही शानदार, बलिष्ठ और भव्य होता है ! इसका मस्तक शेष धड़ की तुलना में बहुत बड़ा और भारी जान पड़ता है । इस पर उसके चेहरे के आसपास अयाल-रूपी केशराशि की जो छटा छायी रहती है, उससे उसका मुखमंडल और भी अधिक दीप्तिमान् तथा तेजस्वी प्रतीत होता है ! सबसे अधिक आकर्षक तो होती है उसकी चाल, जिसके एक-एक क़दम से राजसी शान और निर्द्वन्द्वता का भाव टपकता है ! सिंह की आँखें अपने सुनहले-भूरे रंग, गोल आकार और तेज़ चमक के कारण दर्शक को पराभूत-सी कर देती हैं ! जब वह क्रोध के आवेश में होता है तब तो उनमें से मानों बिजली की लपट-सी दौड़ने लगती है। उस समय उसके ओठ खिंचकर और भी दब-से जाते हैं, नाक पर शिकन पड़ जाती है, कान उठकर सिर से चिपक-से जाते हैं और पूँछ ऊपर उठकर ऐंठी-सी दिखाई देने लगती है ! इस दशा में उसे देखकर भय के मारे किसी के भी प्राण कलेजे से लग सकते हैं !

यद्यपि यह विलक्षण तेजस्वी प्राणी आदिकाल ही से हमारी संस्कृति, कला एवं साहित्य की पृष्ठ-भूमि में सुनहली रेखाओं द्वारा चित्रांकित होता रहा है, तथापि आज के दिन केवल गिनी-चुनी संख्या ही में देश के एक नगण्य-से कोने में वह शेष रह गया है ! वह भारत में केवल सौराष्ट्र के गिरनार पर्वत के इर्द-गिर्द के सौ-एक मील लंबे-चौड़े वन-क्षेत्र ही में पाया जाता है, अन्यत्र नहीं । हाँ, इस पृथ्वीतल पर अब भी अफ्रीका के उत्तरी, उत्तरी-पूर्वी और दक्षिणी भूभाग में काफ़ी संख्या में वह विद्यमान है । वह वहाँ पर उत्तर में अबीसीनिया और सूदान से लेकर पश्चिम में अल्जीरिया तक और दक्षिण में महाद्वीप के अंतिम सिरे तक छितरा हुआ है । वह घास के मैदानों में ही पाया जाता है, घने जंगलों से आच्छादित दलदली इलाक़े उसे अनुकूल नहीं पड़ते ! कहते हैं, एशिया के इराक़ और ईरान जैसे प्रदेशों में भी वह कहीं-कहीं छुटपुट मिल जाता है । भारत में भी यदा-कदा आबू के पहाड़ तथा राजस्थान की अरावली-पर्वतमाला के प्रदेश में वह दिखाई दे जाता है । परन्तु वस्तुतः अब वह एशिया के भूखंड पर से एक प्रकार से मिटता चला जा रहा है । भारत में तो, गिरनार के क्षेत्र में, कुल ढ़ाई सौ सिंह इस समय मौजूद हैं !

क़ैद की दशा में सिंह बहुत बेचैन और आवेशयुक्त रहता है । वह बार-बार दहाड़ता रहता है । इस कार्य में सिंहनी भी उसका साथ देती है । वह अधिक बेचैन दिखाई देती है । जंगलों में सिंह प्रायः अकेले भी पाये जाते हैं, परन्तु जोड़ा बँध जाने पर वे फ़िर सिंहनी एवं शावकों-सहित एक छोटा-सा परिवार बनाकर ही रहते हैं । प्रायः उन्हें कंदराओं में रहना ज़्यादा पसंद आता है । सिंहनी एक बार में तीन-चार तक बच्चे देते पाई गई है । वह अपने नन्हें बच्चों की बड़ी देखभाल रखती है । बिल्ली की तरह वह उन्हें चाटती-चुमकारती, अपने मुँह में उठाकर उन्हें यहाँ से वहाँ ले जाती और उनके साथ खेलती रहती है ! उनकी रक्षा का सवाल सामने आने पर तो वह एकदम विकराल बन जाती है ! उस वक़्त के उसके साहस, तेज और आवेश की दरअसल कोई सीमा ही नहीं रहती !

सिंह केवल रात्रि ही को शिकार के लिए निकला करता है और प्रायः गाय-भैंस, ज़ेबरा, मृग आदि पर हाथ साफ़ कर अपना भरण-पोषण किया करता है । परन्तु विशेष परिस्थितियों में वह 'आदमख़ोर' भी बन जाता है, अर्थात् ढूँढ-ढूँढकर केवल आदमियों को ही मारने की बुरी लत उसे पड़ जाती है ! ऐसे बहुतेरे आदमख़ोर सिंहों के काले कारनामों के उदाहरण अफ्रीका के केनया और यूगांडा प्रदेशों में सामने आये हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिंह के बाद 'बिड़ाल-परिवार' का सबसे मशहूर सदस्य निस्संदेह 'शेर' या 'बाघ' ही है, और भयंकरता के लिहाज़ से तो, संभवतः, वह वनराज सिंह को भी मात करनेवाला प्राणी कहा जा सकता है। उसका रूप चित्र-विचित्र होता है। ऐसा प्रतीत होता है, मानों गहरे बादामी अथवा हलके केसरिया रंग की मखमली पृष्ठभूमि पर कलाकार कुदरत ने अपनी तूलिका से समानान्तर आढ़ी और टेढी-तिरछी बहुतेरी वैसी ही काली-काली मोटी रेखाएँ या पट्टियाँ-सी उसके बदन पर खींच दी हों, जिस प्रकार कि ज़ेबरा के बदन पर उसने चित्रित कर दी हैं! ये रेखाएँ ठीक वैसी ही जान पड़ती हैं जैसी कि बिल्ली के बदन पर प्रायः हल्की-हल्की-सी बनी रहती हैं। दरअसल इसके भयंकर कुक्कुरदंत और सनसनाते हुए मूँछों के बालों का क्षण-भर के लिए यदि हम खयाल छोड़ दें तो इसे एक प्रकार की बृहताकार चितकबरी पीली बिल्ली ही हम कह सकते हैं! जो भी हो, यदि पशुओं की सुंदरता की कोई प्रतियोगिता की जाय तो अपनी इस आकर्षक वेश-भूषा की बदौलत यह प्राणी सहज ही प्रथम पुरस्कार प्राप्त कर सकता है!

परन्तु इतनी मनमोहक पोशाक धारण करनेवाला यह हिंसक पशु अन्य अनेक जीवधारियों के लिए तो मानों साक्षात् काल जैसा है! यहाँ तक कि मनुष्य भी उसके आतंक से बचा हुआ नहीं है! यह हिसाब लगाया गया है कि इस जानवर द्वारा लगभग एक हज़ार नर-नारी प्रति वर्ष मौत के घाट उतर जाते हैं और ज़ितनी संख्या में उसके द्वारा ढोर-पशु मारे जाते हैं, इसका तो कोई हिसाब ही नहीं है, क्योंकि वे तो उसके आहार ही हैं! यह भयावना जीव—जो कि क़द में लगभग ३॥ फ़ीट और लंबाई में (दुम के सिरे से नासिका तक) पौने ग्यारह फ़ीट तक के आकार का होता है—अधिकतर हमारे अपने देश भारतवर्ष ही में पाया जाता है, जहाँ के अधिकांश जंगलों पर इसका एकछत्र बोलबाला छाया हुआ है। यह विशेषकर हिमालय की तराई के घने जंगलों, बंगाल के सुन्दरबन नामक डेल्टा के इलाक़ों, तथा विंध्य-सतपुड़ा-अरावली आदि मध्यवर्त्ती जंगली क्षेत्रों में कसरत से पाया जाता है। हिमालय में प्रायः छः-सात हज़ार फुट की ऊँचाई तक भी इसका पहुँच जाना कोई अनोखी बात नहीं है। भारत के बाहर भी एशिया के अंचल में इसके अनेक छुटपुट क्षेत्र विस्तृत हैं—यथा पश्चिम में ईरान और कॉकेशश-प्रदेश; पूर्व में मलय-अंतरीप एवं उसके समीपवर्त्ती द्वीप तथा उत्तर में मंचूरिया,

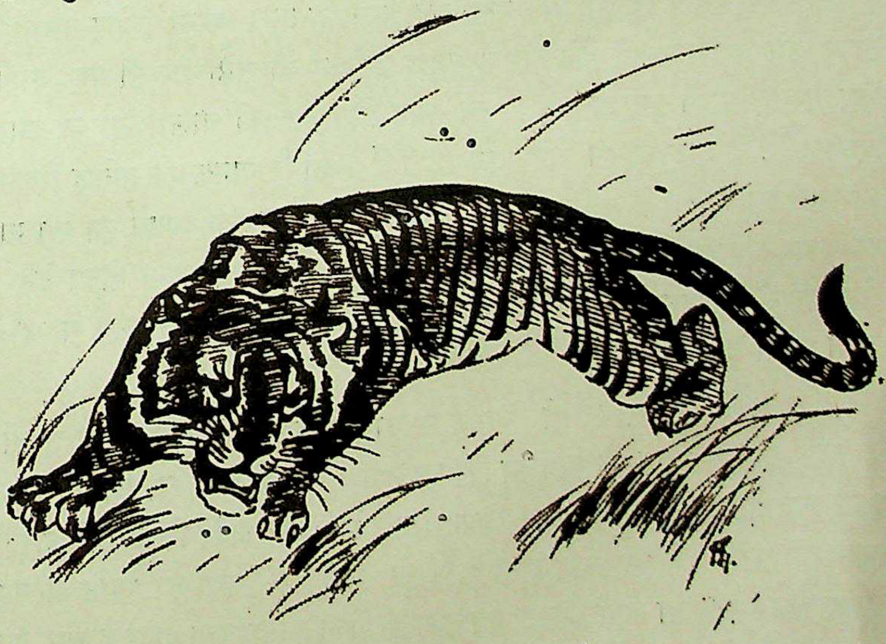

बिड़ाल-परिवार का सबसे भयावना शिकारी—बाघ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चीन तथा कोरिया के कतिपय वन्य क्षेत्र ! मंचूरियन बाघ की खाल पर के बाल अधिक घने और लंबे होते हैं तथा उसका शरीर भी अधिक भारी-भरकम होता है ! कॉकेशश के व्याघ्र आकार में छोटे होते हैं। परन्तु वैज्ञानिकों की निगाह में ये सब एक ही विशाल बिरादरी के सदस्य हैं—उनकी अलग-अलग जातियाँ नहीं हैं। संभवतः, ये उसी पुरातन व्याघ्र-वंश के वर्त्तमान कुलदीपक हों, जिसके एक पुरखे—'कटारदन्ती व्याघ्र'—का उल्लेख पिछले एक प्रकरण में हम कर चुके हैं। यह विकराल जीव इस पृथ्वीतल पर विद्यमान तो था आज से कई लाख या संभवतः करोड़ वर्ष पूर्व, परन्तु बाहरी दिखावे में वह हमारे वर्त्तमान बाघ-वंश के सदस्यों से आश्चर्यजनक समानता रखता था। अंतर केवल यही था कि इसकी दुम बहुत छोटी थी और पैर ज़बर्दस्त आकार-प्रकार के थे। साथ ही, उसके ऊपरी कुक्कुरदंत बढ़कर छः से आठ इंच लंबी कटारों की शक्ल में विकसित हो गये थे। इसका कारण, संभवतः, यह था कि इसे ऊनी गैंडे या मैमथ जैसे मोटी खालवाले जीवधारियों को मारकर उन पर ही गुज़र-बसर करना पड़ता था। फलतः इस काम के लिए तीक्ष्ण धारवाले कराल दाँतों की आवश्यकता उसे पड़ा करती थी। ये दाँत साँप के विषदंत जैसे मुड़े हुए थे और किस प्रकार काम में आते थे, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि इनसे सुसज्जित बाघ-वंश का यह पुरखा अपने युग का एक अति भयावना जीव रहा होगा। इस प्राणी के अनेक प्रस्तरीभूत अवशेष अमेरिका और योरप में मिले हैं, जिनमें सबसे अनोखे कैलिफ़ोर्निया के लास एंजेल्स नगर के समीपवर्त्ती ला ब्रा नामक कोलतार के स्तरों में पाये जानेवाले अवशेष हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि उक्त स्थान कभी कोलतार की एक झील-सा रहा होगा। उसमें किसी दुर्घटनावश उस युग के अनेक प्राणी—जिनमें ये कटारदन्ती व्याघ्र भी थे—एकाएक जा फँसे थे और हमेशा के लिए उसमें समाधिस्थ हो गये थे !

सिंह की भाँति बाघ भी प्रायः रात्रि ही के समय शिकार की टोह में बाहर निकलता है और हिरन, गाय-भैंस, बकरी, बंदर आदि प्राणियों पर हाथ साफ़ करके अपनी उदर-पूर्त्ति किया करता है। सिंह की तरह वह भी सामान्यतया आदमी पर हमला नहीं किया करता। परन्तु विशेष परिस्थितियों में, जबकि अन्य कोई साधन उसे उपलब्ध नहीं होते अथवा मनुष्य के खून की उसे चाट-सी पड़ जाती है तब वह एक बिगड़ैल 'आदमखोर' प्राणी बन जाता है। उस समय जिस तरह की चालाकियाँ वह आदमियों को झपट ले जाने में दिखाता है, वे जादू की-सी बातें जान पड़ती हैं। कॉर्बेट नामक एक प्रसिद्ध शिकारी लेखक ने—जिसे कुमायूँ और गढ़वाल के क्षेत्र के कतिपय सबसे अधिक खूँख्वार नरभक्षी व्याघ्रों का खात्मा करने का श्रेय प्राप्त है—इन भयावने जानवरों की बुद्धि, चतुराई और मनुष्य को तरह-तरह से धोखा देने की योग्यता-संबंधी अनेकों चमत्कारपूर्ण उदाहरण अपनी पुस्तकों में दिये हैं। उन्हें पढ़कर आश्चर्य से दाँतों-तले उँगली दबाकर रह जाना पड़ता है !

सिंहनी की तरह बाघिन भी बिगड़ने पर साक्षात् कालिका-सी कराल हो उठती है। वह भी अपने शावकों की रक्षा करने में किसी भी बात का लिहाज़ नहीं किया करती। शेर का शिकार करने का ढंग सिंह से भिन्न प्रकार का होता है। वह एक पक्का शिकारी प्राणी है और अपने शिकार को काबू में लाने के लिए जिस-जिस प्रकार की तरकीबों से वह काम लेता है, उससे उसकी बुद्धिमत्ता का पर्याप्त परिचय हमें मिलता है। वह लुक-छिपकर पैंतरे बदलता हुआ शिकार का लगातार पीछा करता चला जाता है और जब शिकार उसे काबू में आया देख पड़ता है तो बिजली की तरह वह उस पर टूट पड़ता है और उसकी गरदन जा दबोचता है ! उसी क्षण

मानों विद्युत्-गति से वह अपने जबड़ों को ढीला CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh किये बिना ही ताक़त के साथ शिकार की पीठ लाँघकर दूसरी बाजू में उछल जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि शिकार के जानवर की गरदन टूट जाती है ! वैसे बाघ के पंजे की मार भी कोई कम घातक नहीं होती। प्रायः एक ही थप्पड़ में वह मामूली जानवरों का काम तमाम कर देता है।

लेकिन हर बार ही इस मँजे हुए शिकारी की पौ बारह नहीं हुआ करती ! कभी-कभी उसे लेने के देने भी पड़ जाते हैं ! प्रायः जंगली भैंसे या सुअर से पाला पड़ जाने पर जहाँ बाघ अपने शिकार को खत्म कर देता है, वहाँ कभी-कभी स्वयं भी उसका शिकार हो जाता है ; कारण ये पशु मृत्यु को सामने आयी देख असामान्य रूप से विकराल हो उठते हैं और अपने कराल सींग या दाँत द्वारा शिकारी को चीर देते हैं अथवा उछालकर उसे पटक देते हैं ! कॉर्बेट साहब ने हाल ही की अपनी एक पुस्तक में हिमालय के अंचल में बाघ के साथ एक भालू के द्वन्द्व-युद्ध का क़िस्सा सुनाया है, जिसमें आख़िर दोनों ही जीवों को खेत रहना पड़ा था !

बिड़ाल-परिवार के कुछ फुर्तीले और चालाक शिकारी जानवर (ऊपर) तेंदुआ या गुलहा ; (बीच में) अमेरिका में पाया जाने वाला 'प्यूमा' नामक चीता ; (नीचे) स्याहगोश।

दिन में जंगल में बाघ की उपस्थिति का पता बहुत शीघ्र चल जाता है, यदि वहीं आसपास लंगूरों की कोई टोली मौजूद हो ; क्योंकि उसे देखते ही वे काफ़ी शोरगुल मचाने लगते हैं और, जिस ओर वह जाता है, उधर ही पेड़ों पर उछलते-कूदते हुए ऊपर ही ऊपर उसके साथ-साथ चलते रहते हैं। लंगूरों के अलावा मोर आदि पक्षी भी शेर को देखते ही हल्ला मचाने लगते हैं। प्रायः शिकार मार लेने पर बाघ, यदि दिन का समय हुआ तो, लाश को पत्तों आदि से ढककर पास ही कहीं पड़ा रहता है और रात का अँधेरा छा जाने पर तब उसे खाना शुरू करता है। वह पहले जानवर की आँतों पर हाथ साफ़ करता है। यदि कोई शिकार हाथ न लग पाए तो बाघ को दूसरे जंानवरों द्वारा मारे गये शिकार

को हथियाने का प्रयत्न करते भी देखा गया है। यही नहीं, आपदकाल में वह मछली और मेंढक तक को खाकर अपना गुजारा करते पाया गया है। वह पानी में तैरने का भी अभ्यस्त होता है और प्रायः बड़ी-बड़ी नदियों को मिनटों में पार कर लिया करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तेंदुआ—सबसे फुर्तीला और चालाक हिंसक प्राणी

सिंह और बाघ के बाद, बिड़ाल-परिवार के मांसभक्षी हिंसक प्राणियों में सबसे खतरनाक 'तेंदुआ' और उसी की बिरादरी के 'चीता', 'जागुआर' (अमेरिकन तेंदुआ), 'प्यूमा' (अमेरिकन चीता), 'स्याहगोश', हिमप्रदेशों का गुलहा और 'बनबिलाव', आदि बहुतेरे छोटे-छोटे जीव हैं, जो आकार में बाघ या सिंह से लघु होने पर भी उनसे कहीं अधिक चालाक और पहुँचे हुए शिकारी होते हैं। 'तेंदुआ' (लेपर्ड) को तो उसकी चितकबरी रंगीन वेशभूषा, लचकीले और फुर्तीले बदन, एवं कमनीय चाल-ढाल के कारण, जंतु-वैज्ञानिकों ने शिकारी जानवरों के चरम विकास का नमूना बताया है। यह जानवर फुर्ती और चालाकी में तो बिड़ाल-वर्ग के सभी सदस्यों को मात करता ही है, साथ ही हिम्मत या साहस में भी वह किसी से कम नहीं ठहरता! इस बात में वह बाघ से तो अवश्य ही बाज़ी मार ले जा सकता है! वह या तो वृक्षों पर चढ़कर, पत्तों की आड़ में अपना बदन छिपाये, किसी मोटी डाली पर चिपका हुआ-सा शिकार की ताक में बैठा रहता है, अथवा किसी कंदरा में छिपा रहता है। फलतः किस समय किस ओर से एकदम बिजली की लपट की तरह लपककर वह किसी पर आ टूटेगा, इसका किसी को पता भी नहीं रहता और वह अपना काम बना लेता है! आकार में वह दुम से नाक तक कुल मिलाकर आठ सवा आठ फ़ीट से ज़्यादा नहीं होता और उसका क़द तो ज़्यादा से ज़्यादा दो सवा दो फ़ीट तक ही पहुँच पाता है! इस जीव की छोटी-बड़ी अनेक जातियाँ हैं, जो भारतवर्ष के अतिरिक्त एशिया माइनर, काकेशश, सीरिया, अरब, मध्य-एशिया, ईरान, अफ़गानिस्तान, चीन, मंचूरिया, स्याम, बर्मा, मलय-प्रदेश, सुमात्रा, जावा और लंका आदि में भी मिलती हैं। अफ्रीका महाद्वीप में तो वह पूर्व में अबीसीनिया से लेकर पश्चिम में ठेठ अल्जीरिया तक एवं उत्तर में मिस्र और सूदान से लेकर दक्षिण में ठेठ आशा-अंतरीप तक फैला हुआ है।

तेंदुए को एक प्रकार से हम बाघ का 'लघु संस्करण' और बिल्ली का 'बृहत् संस्करण' कह सकते हैं। उसका रंग ललाई लिये हुए हलके बादामी या भूरे से लेकर हलके पीले या केसरिया तक विभिन्न गहराई का पाया जाता है। पर उसकी खास विशेषता है ठेठ दुम से लेकर सिर तक कहीं दूर-दूर और कहीं घनी सुशोभित काजल-से काले रंग की वे चटकीली गोल-गोल-सी चित्तियाँ, जिनके कारण उसका वेश चितकबरा दिखाई पड़ता है। उसका वेश ठीक वैसा ही होता है जैसा कि सूर्य की रोशनी में किसी घने वृक्ष के पत्तों की ज़मीन पर पड़ती हुई छाया की आकृति में हमें देखने को मिलता है। बाघ की तरह इस प्राणी को भी प्रकृति ने यह अनूठा भेस केवल इसीलिए दिया है, ताकि उसे शिकार करने में सुविधा हो। प्रायः वृक्षों की सघन डालियों के बीच या सूखे पत्तों आदि के ढेर में, अन्य जीवों की निगाह से बचा हुआ, शिकार की टोह में यह जानवर पड़ा रहता है और उसके इस वेश के धोखे में आकर आसानी से बहुतेरे प्राणी अनायास ही उसकी लपेट में आ जाते हैं। बाघ की तरह तेंदुए का भी पेट का भाग एकदम सफ़ेद रंग का होता है। इसके बदन की गठन दर्शनीय होती है। इसका सिर चपटा और लँबोतरा-सा, चेहरा अपेक्षाकृत छोटा, पैर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी काफ़ी छोटे, आँखें पीली और क्रूरता का भाव टपकानेवाली, बाल महीन और मुलायम तथा दुम बहुत अधिक लंबी एवं लचकीली-सी होती है। ठंढे प्रदेशों की कतिपय जातियों में खाल के बाल काफ़ी बढ़े हुए एवं रूखे-से पाये जाते हैं। इसी प्रकार बदन पर की चित्तियाँ भी अलग-अलग जातियों में कम अथवा अधिक गहरी पायी जाती हैं। एक तेंदुआ घोर काले रंग का भी मिलता है। यह दक्षिण भारत एवं भारतीय महासागर के द्वीपों का निवासी है। पहले जीव-वैज्ञानिकों की यह धारणा रही कि यह शायद तेंदुओं का कोई पृथक् स्वतंत्र वर्ग होगा। परन्तु अब यह निश्चित हो चुका है कि यह इस प्राणि-वर्ग की कोई जुदा शाखा नहीं है। प्रायः एक ही मादा से एक साथ ही काले रंग के और साधारण पीले-कबचितरे बच्चे पैदा होते देखे गये हैं! यही नहीं, तेज़ धूप में ग़ौर से देखने पर इन कृष्णकाय तेंदुओं के बदन पर भी हल्की-हल्की गोल चित्तियों के निशान स्पष्ट देखे जा सकते हैं! ये काले तेंदुए ऐसे जान पड़ते हैं, जैसे कोई सामान्य तेंदुआ ही काजल की कोठरी में से होकर निकल आया हो! निश्चय ही अपनी इस काली वेशभूषा के कारण रात्रि के निबिड़ अंधकार में ये जीव औरों की निगाह से एकदम अदृश्य हो जाते होंगे।

तेंदुए ज़्यादातर हिरन, बंदर, कुत्ते, पक्षी एवं उरंगमों का शिकार करके ही अपना गुज़र चलाया करते हैं। वे मनुष्य पर साधारणतया हमला नहीं किया करते। परन्तु विशेष परिस्थितियों में वे भी बाघ या सिंह की तरह 'आदमख़ोर' बन जाते हैं। उस समय वे अपनी चालाक आदतों के कारण बड़े ही ख़तरनाक और धोखेबाज़ साबित होते हैं। ये अपने शिकार पर बिजली की तरह टूटकर प्रायः उसकी पीठ पर जा चिपकते हैं और बात की बात में उसकी गरदन तोड़कर बेचारे का काम तमाम कर देते हैं।

हिमप्रदेश के गुलहे—साह और लमचित्ता

मैदानों में पाये जानेवाले तेंदुओं की सामान्य जाति से बहुत-कुछ नज़दीक का रिश्ता रखनेवाला एक गुलहा हिमालय जैसे हिमाच्छादित पर्वतों के क्षेत्रों में सात-आठ हज़ार फ़ीट की ऊँचाई पर मिलता है, जो हमारे देश में 'साह' के नाम से पुकारा जाता है। इसकी खाल बड़ी ही सुन्दर होती है, इसीलिए वह बहुत मूल्यवान् समझी जाती है। इसका आकार-प्रकार तो बहुत-कुछ साधारण तेंदुओं जैसा ही होता है, परन्तु एक तो इसकी खाल पीतवर्ण न होकर हल्के सलेटी रंग की एवं कुछ हरित-श्वेत झाईं-सी लिये हुए रहती है, जिस पर बड़ी ही मनोहर काली छल्लेदार चित्तियाँ निखरी रहती हैं! दूसरे, शीतप्रदेशों का वासी होने के कारण इसके बाल एकदम समूर जैसे लंबे और मुलायम होते हैं। अन्य एक विशेषता इसमें यह भी होती है कि इसकी आँखें पीली न होकर हरितवर्ण माँजरी-सी होती एवं कान ऐसे छोटे होते हैं, मानों कतरकर लघु बना दिये गये हों! यह गुलहा एक दुर्लभ प्राणी है, क्योंकि वह अति दुर्गम प्रदेशों का निवासी है। वह केवल पहाड़ी भेड़-बकरियों या कुत्तों का शिकार करके ही अपना भरण-पोषण किया करता है, मनुष्य पर प्रायः वह आक्रमण नहीं करता। पालने पर वह बड़ी ही विनम्र प्रकृति का हो जाता है। सबसे विचित्र बात तो यह है कि यह अन्य तेंदुओं की तरह डरावनी आवाज़ नहीं करता। कभी कदाचित् वह गुर्रा भर देता है!

इसी का एक छोटा भाई 'लमचित्ता' (मेघवर्णीय तेंदुआ) है, जो संभवतः तेंदुआ-वर्ग का सबसे सुंदर प्राणी कहा जा सकता है। यह दुर्लभ जीव आकार में अपने पूर्वोल्लिखित बन्धु 'साह' से तनिक छोटा होता है और उसके पैर तो इतने छोटे होते हैं कि उसकी कुल ऊँचाई हाथ भर से ज़्यादा नहीं पाई जाती। इसका सिर बेहद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चपटा और लंबा, कुक्कुरदंत अपेक्षाकृत बहुत बड़े, तथा दुम भी बेहद लंबी एवं साधारण तेंदुओं की दुम से अधिक भारी होती है। परन्तु इसकी सच्ची शोभा तो दरअसल इसके बदन पर की उस चित्रकारी में पायी जाती है, जो सुनहले पीतवर्ण की पृष्ठभूमि पर यहाँ-वहाँ बादलों की-सी शक्ल की बड़ी-बड़ी काली चित्तियाँ एवं पट्टियाँ-सी निखराये रहती है। उसके इस चितकबरे सुंदर वेश की बहुत-कुछ तुलना कतिपय बड़ी जाति के अजगरों के बदन पर की चित्रकारी से की जा सकती है। यह जीव प्रायः वृक्षों ही पर रहता है और पक्षियों का शिकार करके अपना गुजारा किया करता है। 'साह' की तरह यह भी अधिकतर मौन ही रहता है।

नई दुनिया के बिड़ालवंशी—जागुआर, प्यूमा और ओसीलॉट

बिड़ाल-परिवार के जिन भयावने प्राणियों का परिचय हमने तुम्हें अब तक दिया है, वे सब के सब पुरानी दुनिया अर्थात् एशिया और अफ्रीका के ही निवासी हैं। अब अमेरिका की नई दुनिया पर भी इस संबंध में एक नज़र डाल ली जाय। यहाँ हमें इस कुटुंब के तीन उल्लेखनीय सदस्य मिलते हैं—एक, 'जागुआर' (अमेरिकन बाघ); दूसरा, 'प्यूमा' (नई दुनिया का तेंदुआ) और तीसरा, 'ओसीलॉट' (अमेरिकन बाघ-बिल्ली)। इनमें डीलडौल के लिहाज़ से जागुआर सबसे बड़ा होता है। यह पुरानी दुनिया के बाघ से तो छोटा, परन्तु तेंदुए से काफ़ी बड़ा और ज़बर्दस्त ताक़तवर जानवर होता है। इसकी खाल पर की चित्रकारी तो तेंदुए से मिलती-जुलती होती है, अर्थात् हलके सुनहले पीले बदन पर छल्लेदार काली चित्तियाँ छायी रहती हैं, परन्तु शेष बातों में वह तेंदुओं से कोई समानता नहीं रखता। उसका सीना चौड़ा, माथा भारी, दुम छोटी (केवल २० इंच लंबी) और कुत्ते की तरह ऊँची उठी रहनेवाली, अगले पैर काफ़ी मज़बूत, और आवाज़ बहुत-कुछ सिंह की गरज से मिलती-जुलती-सी होती है। दरअसल, सारे बिड़ाल-परिवार में यह जीव सबसे अधिक जकड़े हुए बदन का है, इसीलिए वह कम फुर्तीला भी होता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि यह किसी क़दर कम खतरनाक हो। वस्तुतः यह बड़ा ही भयावना, खूँख्वार और क्रूर प्राणी है। अपने छः फ़ीट लंबे भारी-भरकम बदन के बावजूद यह पेड़ों पर भी चढ़ जाता है और चौड़ी नदियों में उतरकर उन्हें तैरकर पार करने से भी नहीं हिचकता! यह उत्तरी अमेरिका के टेक्साज़ प्रदेश से लेकर दक्षिणी अमेरिका के अमेज़न नदी के इलाक़े, पेटेगोनिया प्रदेश और एंडीज़ के पर्वतीय प्रान्त में आम तौर पर पाया जाता है। यह बंदर, कछुए, मछली, चिड़िया, हिरन, तापीर, आदि को मारकर अपना भरण-पोषण करता है!

'प्यूमा' डीलडौल में जागुआर से छोटा होता है। इसका रंग सिंह का-सा भूरा-ललछौंह होता है तथा पेट का हिस्सा बाघ की तरह का सफ़ेदी मायल होता है। दूर से यह जानवर बहुत-कुछ सिंहनी जैसा दिखाई पड़ता है, सिर्फ़ उसका सिर अपेक्षाकृत बहुत छोटा होता है। यह चाहे जागुआर की तुलना में साहसी कम हो, परन्तु होता है उससे कहीं अधिक फुर्तीला और क्रियाशील। इस बात में वह तेंदुए से स्पर्द्धा कर सकता है। अपने लचकीले बदन की बदौलत वह काफ़ी ऊँचाई से कुदान भर सकता है। वह ठेठ कनाडा से दक्षिणी अमेरिका के पेटेगोनिया प्रदेश तक विस्तृत है और प्रायः जंगली भेड़, हिरन तथा घरेलू पशुओं का शिकार करता है। इसकी आवाज मानवीय स्त्री या बच्चे की क्रंदन-वाणी सी होती है।

नई दुनिया का तीसरा बिड़ाल-कुटुंबी 'ओसीलॉट' या अमेरिकन बाघ-बिलार वस्तुतः जागुआर का ही एक नज़दीकी रिश्तेदार प्रतीत होता है। परन्तु डीलडौल में वह बहुत छोटा है और उतना भयावना भी नहीं होता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एशियाई लमचित्ते की तरह यह जानवर भी अपनी खाल की असाधारण सुन्दरता के लिए विख्यात है। इसकी वेशभूषा रुपहले-सलेटी वर्ण की पृष्ठभूमि पर बड़े सुचारु रूप से व्यवस्थित काली-काली सुंदर चित्तियों और पट्टियों की एक मनोहारी छटा छहराये रहती है। यह प्राणी भी वृक्षों ही पर रहता है और प्रायः रात्रि के समय चिड़िया, सर्प, छोटे-छोटे वानर, आदि का शिकार कर अपना पेट पालता है।

तेंदुए का 'लघु संस्करण' चीता

नई दुनिया के इन बिड़ाल-वंशजों से विदा लेकर, जब हम पुनः पुरानी दुनिया के हिंसक पशुओं के विशाल समुदाय पर नज़र दौड़ाते हैं तो सिंह, बाघ, तेंदुआ, साह, आदि के उपरान्त हमें यहाँ बिल्ली के आकार के एवं उससे बड़े और भी कई एक खतरनाक जीव इसी वर्ग में देखने को मिलते हैं, जिनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय तेंदुए का लघु संस्करण 'चीता' तथा 'स्याहगोश', 'लिंक्स', जैसे कतिपय असाधारण फुर्तीवाले शिकारी जानवर हैं। 'चीता' का महत्त्व इसलिए अधिक है कि हमारे देश में राजाओं द्वारा वह प्रायः शिकार करने के लिए पाला जाता रहा है। यह जानवर तेंदुए जैसा जान पड़ने पर भी उससे बिल्कुल पृथक् वर्ग का एक जीव है। यह उससे कहीं अधिक हल्का और छरहरे बदनवाला होता है। इसका सिर बेहद छोटा और गोल, टाँगें बड़ी मज़बूत और लंबी, तथा बदन पर की काली चित्तियाँ बताशानुमा, एकदम छोटी एवं पास-पास सटी हुई-सी रहती हैं। इसकी एक खास विशेषता—जो सिंह, बाघ, तेंदुए आदि की अंग-रचना के विपरीत होती है—अपने पंजे के नाखूनों को (काम में न लाने की दशा में) भीतर समेट लेने की अयोग्यता-विषयक होती है। शिकार के लिए पाले जाने पर इसे प्रायः आँखों को ढकनेवाली टोपी पहनाकर बंद गाड़ी में शिकारगाह तक ले जाते हैं, जहाँ पहले ही से शिकार का पता मालूम होता है। शिकार प्रायः हिरन का होता है। जब शिकार दिखाई पड़ता है तो आँखों पर की टोपी उतारकर चीते को छोड़ दिया जाता है। छोड़ते ही वह बिजली की तरह लपकता है और कुछ ही फर्लाङ्ग दौड़कर वह शिकार को धर दबोचता है।

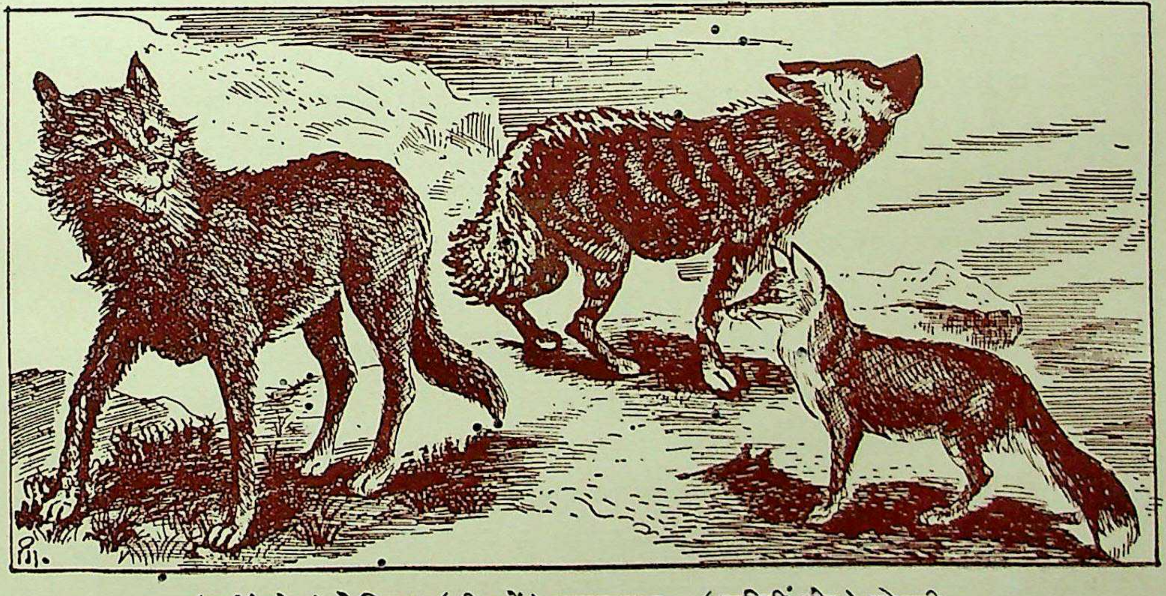

(बाईं ओर) भेड़िया; (बीच में) लकड़बग्घा; (दाहिनी ओर) लोमड़ी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह सचमुच एक ताज्जुब की बात है कि बड़ी अवस्था में पाले जाने पर भी कुछ ही महीनों के दर्मियान यह मनुष्य से इतना हिल-मिल जाता है और उसका सहयोगी बन जाता है !

बनबिलार, लिंक्स और स्याहगोश

मौके से कभी शायद तुमने अपने गाँव या नगर के सीमावर्ती क्षेत्र में, घरेलू बिल्ली के आकार के एक जंगली प्राणी को देखा हो, जो 'बनबिलाव' या 'बनबिलार' के नाम से पुकारा जाता है। ये शिकारी जीव बिल्लियों के ही वन्य सगे-संबंधी हैं, जिनमें कई बड़े तेज़ और खूँख्वार भी होते हैं। एक जाति 'तेंदुआ-बिल्ली' (लेपर्ड कैट) के नाम से मशहूर है, जो वृक्षवासी होती है। यह आकार में हमारी घरेलू बिल्लियों की जाति से छोटी होती है। दूसरी एक 'माछ बिड़ाल' (फिशिंग कैट) के नाम से पुकारी जाती है, जो भारत और लंका के अतिरिक्त बर्मा तक फैली पाई जाती है। इसका मुख्य आहार मछलियाँ, घोंघे आदि हैं। यह दलदली क्षेत्रों की निवासिनी है। अन्य एक जाति 'सिकमार' (मार्बल्ड कैट) के नाम से विख्यात है, जिसकी विशेषता उसकी लंबी झबरी दुम है। इनके अतिरिक्त तिब्बत से मंगोलिया तक पाए जानेवाले मध्य एशिया के लघुकाय 'मेनुल बिलार', अफ्रीका की 'सरवाल' एवं 'सुनहली जंगली बिल्ली', योरप के साधारण बन-बिलार आदि अनेकों जातियाँ इस वर्ग में गिनाई जा सकती हैं, जो रूप-रंग, आकार-प्रकार, गुण-धर्म, आदि में अपनी-अपनी विशेषताएँ रखती हैं। परन्तु दिलचस्पी के लिहाज़ से बिड़ाल-कुटुंब के इस निचले स्तर के प्राणियों में सबसे अनूठे और उल्लेखनीय हैं 'लिंक्स'-वर्ग के वे बेहद फुर्तीले और खतरनाक जीव, जो एक प्रकार से बाघ, तेंदुआ, जागुआर, साह, आदि बड़े एवं बनबिलार, बिल्ली आदि छोटे बिड़ाल-कुटुंबियों को जोड़नेवाली बीच की कड़ी जैसे प्रतीत होते हैं। इस वर्ग के जीवों की मुख्य विशेषताएँ उनकी लंबी टाँगें, ऐंठे हुए-से एवं ऊपर उठे हुए काले बालों के गुच्छों से युक्त लंबे कान, छोटी दुम, घने मुलायम बाल, और गले तथा गालों के आसपास बाघ का-सा बालों का फुलाव आदि हैं। ये एशिया, अफ्रीका, योरप और उत्तरी अमेरिका के भी कुछ हिस्सों में फैले हुए हैं। एक योरपीय लिंक्स तो साढ़े तीन फ़ीट तक लंबा होता है। यही इस वर्ग का सबसे बड़ा जीव है। इसकी आँखें बहुत बड़ी और चालाकी से भरी प्रतीत होती हैं। रंग में लिंक्स पिलौंहे ललछौंह से लेकर रुपहले-साँवले तक विभिन्न कोटि के पाये जाते हैं। नाक इनका छोटा होता है और मुँह के आसपास मूँछ के कुछ बाल निकले रहते हैं। खाल पर प्रायः कुछ काले धब्बे छाये रहते हैं। ये सब बड़े ही फुर्तीले जीव होते हैं और आसानी से वृक्षों पर चढ़ जाया करते हैं।

इन्हीं का एक नज़दीकी रिश्तेदार हमारे देश का सुप्रसिद्ध 'स्याहगोश' नामक फुर्तीला शिकारी जानवर है, जो भारत के अलावा फिलिस्तीन, अरब, इराक और अफ्रीका में भी पाया जाता है। इसकी खाल कुछ ललछौंह बादामी या सलेटी रंग की-सी एवं समानवर्णीय होती है। केवल पेट का ही कुछ भाग पीलापन लिये हुए या सफ़ेद होता है। इस जानवर का स्याहगोश नाम शायद इसके कानों के ऊपरी सिरे पर लिंक्स-वर्ग के प्राणियों के-से काले बालों के अनूठे गुच्छों के कारण पड़ा है। कुछ काले निशान, धारियों और चित्तियों के रूप में, इसके चेहरे पर भी बने रहते हैं। इस अनूठे प्राणी की सबसे अधिक ख्याति इस बात के लिए है कि वह बिजली की-सी फुर्तीवाला जीव है। कहते हैं, वह थोड़ी ऊँचाई पर उड़ते हुए पक्षियों तक को महज़ उछलकर और अपने पंजे का एक हाथ मारकर नीचे गिरा देता है! अपनी लंबी टाँगों की बदौलत यह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दौड़कर शिकार को अपनी लपेट में ले लेता है। कहते हैं, इससे शेर तक घबड़ाता है ! इसके बारे में यह मशहूर है कि जब शेर शिकार करता है तो यह भी उसके पीछे-पीछे साथ-साथ चलता रहता है, ताकि उसे भी अपना हिस्सा मिल जाय। अपनी शिकार करने की योग्यता के कारण ही चीते की तरह यह भी हमारे देश में अमीर वर्गों द्वारा शिकार में मदद देने के लिए पाला जाता रहा है। परंतु चीते की तरह यह भी अब तेज़ी से मिटता जा रहा है। यह केवल देश के मध्यभागों के घने जंगलों में ही अब मिलता है।

खीखर (कटास), ताड़-बिलार, मुश्क-बिल्ली, नेवला आदि

पिछले पृष्ठों में वर्णित विशाल बिड़ाल-परिवार के बाद हिंसक पशुओं की एक उल्लेखनीय बिरादरी कुक्कुरवंशी उन खतरनाक जानवरों की है, जिनके प्रतिनिधि-स्वरूप भेड़िया, सियार, लोमड़ी और भाँति-भाँति के जंगली कुत्तों के नाम गिनाये जा सकते हैं। इन दो विशाल हिंसक प्राणि-वर्गों के बीच के संधि-प्रान्त पर हमें कतिपय अन्य छोटी-छोटी बिरादरियाँ भी ऐसे कुछ जानवरों की मिलती हैं, जो अपने आसपास के दोनों वृहत् समुदायों के कुछ-एक लक्षण लिये हुए हैं। इनमें से एक के प्रतिनिधि तो हैं 'खीखर' या 'कटास' और उसी के वर्ग के 'ताड़-बिलार', 'मुश्क-बिल्ली', आदि लघुकाय रात्रिचर जीव, जो कुक्कुरवंशीय लोमड़ी एवं बिड़ालवंशीय साधारण बिल्ली की बीच की कड़ी के-से प्राणी जान पडते हैं। दूसरी बिरादरी के सदस्य हैं 'लकड़बग्घा' या बघेरा और 'आर्डवुल्फ़' जैसे वे हिंसक जीव, जो एक ओर कुक्कुरवंशीयों और दूसरी ओर बिड़ालकुटुंबियों के बहुतेरे गुण-धर्म अपनाये रहने के कारण अपनी एक स्वतंत्र बिरादरी-सी बनाये हुए हैं। इसी संधि-प्रान्त के इलाक़े में ही हम अवस्थित पाते हैं अपनी बस्तियों में विचरनेवाले उस छोटे-से जानवर 'नेवले' को भी, जोकि साँप का जानी दुश्मन होने के नाते काफ़ी प्रख्यात है। आओ, संक्षेप में इन सभी हिंसाजीवियों का थोड़ा-थोड़ा परिचय यहाँ तुम्हें दे दें !

सबसे पहले 'खीखर' या 'कटास' वर्ग के प्राणियों ही को हम लें। लगभग दो से ढाई

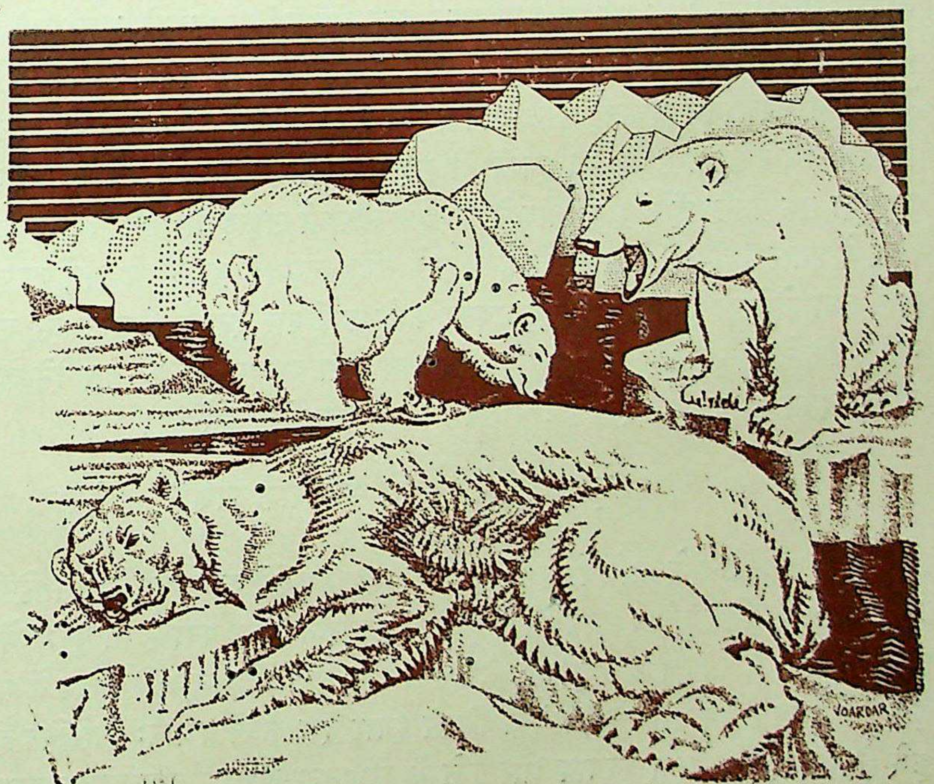

उत्तरी ध्रुव-क्षेत्र के सफ़ेद भालू

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फ़ीट तक लंबे और लीमूर की-सी दुमवाले ये रात्रिचर जीव भूरे-सलेटी रंग के होते हैं और उनकी बालदार खाल पर बिल्लियों के-से काले-काले छल्ले या पट्टियाँ और चित्तियाँ आदि पड़ी रहती हैं। मुँह इनका लोमड़ियों का-सा होता है और ये प्रायः बिलों और झाड़ियों में अथवा पेड़ों पर छिपे रहते हैं। ये छोटी-छोटी चिड़ियों और कीट-पतिंगों से लेकर सर्प, मेंढक एवं चूहों जैसे जानवरों को खाकर प्रायः अपना काम चलाते हैं। असली 'खीखर' या 'कटास' भारतवर्ष के अतिरिक्त अफ़्रीका में भी पाये जाते हैं। अफ़्रीकी जाति की लंबाई दुमसहित लगभग ४। फ़ीट होती है और वह अपने भारतीय रिश्तेदार से अधिक श्यामवर्णीय होती है। इन प्राणियों की एक विशेषता उनके मुँह में काफ़ी अधिक संख्या में चर्वणक दाँतों का पाया जाना है। दूसरी एक विशेषता इनमें यह होती है कि इनकी दुम के नीचे एक ऐसी थैली या रसग्रंथि-सी पायी जाती है, जिसके अंदर से एक तीव्र गंधयुक्त पदार्थ निकला करता है। यह पदार्थ एक जाति के कटास में बहुत सुगंधित होता है, इसीलिए उक्त प्राणी को 'मुश्क-बिल्ली' या 'कस्तूरी' के नाम से पुकारा जाता है। इसी वर्ग का अन्य एक जीव 'मुसंग' या 'ताड़-बिल्ली' के नाम से मशहूर है, कारण वह खजूर, ताड़, नारियल जैसे ऊँचे स्तंभाकार वृक्षों पर चढ़कर रहने का आदी है। ये ताड़-बिल्लियाँ एशिया और अफ़्रीका में अलग-अलग वर्णों की पायी जाती हैं। कटास-वर्ग के इन छोटे-छोटे जीवों के अनेकों नज़दीकी रिश्तेदार पुरानी दुनिया के अफ़्रीकी, एशियाई और दक्षिणी-पश्चिमी योरपीय भूभागों में विस्तृत हैं, जिनमें 'जेनेट', 'लिनसांग', 'हेमिगैल', 'बिंटुरॉंग' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्हीं के गोत्र की दूर की एक बिरादरी हमारे सुपरिचित 'नेवले' एवं उससे मिलते-जुलते 'मीरकेट' नामक प्राणियों की है, जो इस बात में कटास-वर्गीय जानवरों से निराले हैं कि एक तो इनमें बदन बहुत लंबे एवं पैर अत्यधिक छोटे होते हैं; दूसरे इनके गंध-थैली नहीं होती। साथ ही इनके बाल भी कहीं अधिक रूखे, लंबे और मिश्रित वर्ण के या चितकबरे-से होते हैं। ये अत्यन्त चपल और चंचलवृत्ति के जानवर हैं। प्रायः ये बिलों में रहते हैं और हमारे घरों में घुसकर इधर-उधर भटकते देखे जा सकते हैं। इनकी भी कई उपजातियाँ मिलती हैं, जो चीन और भारत से लेकर दक्षिणी अफ़्रीका तक फैली हुई हैं। भारतीय नेवले और साँप की लड़ाई तो शायद किसी भी मदारी के खेल के सिलसिले में हमारे यहाँ देखी जा सकती है। इसमें संदेह नहीं कि यह प्राणी साँपों का जानी दुश्मन है और बड़ी फुर्ती तथा होशियारी के साथ यह मुक़ाबला करके उन्हें मार देता है। परन्तु इस बात में कुछ भी सचाई नहीं है कि नेवले पर साँप के ज़हर का असर नहीं होता अथवा साँप को मार देने के बाद यह उसे पुनः जोड़-जोड़कर ज़िन्दा कर देता है! ये सब निरी कपोलकल्पित बातें हैं।

कुक्कुरवंश का सबसे खतरनाक प्राणी—भेड़िया

उपर्युक्त छोटे-छोटे प्राणियों से विदा होकर जब हम हिंसक पशुओं के उस द्वितीय महावंश की सीमा में प्रवेश करते हैं, जिसे जीव-विज्ञान में 'कुक्कुरवंश' का नाम दिया गया है तो पुनः हमें खतरे की घंटी सुनाई पड़ती है, क्योंकि सिवाय पालतू कुत्तों के इस वर्ग के सभी जीव न्यूनाधिक रूप में मनुष्य के लिए खतरनाक हैं। इनमें सबसे भयानक 'भेड़िया' है, जिससे हमारे देश के लोग प्रायः सुपरिचित हैं। यह जीव देखने में तो कुत्ते जैसा होता है, परन्तु स्वभाव और वृत्ति में वह इतना खूँख्वार तथा आक्रमणकारी होता है कि वह जहाँ पाया जाता है, वहाँ बाघ या तेंदुओं से भी अधिक आतंक छाया रहता है। यह प्रायः गिरोह बाँधकर रहने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ग्रौर टोली बनाकर शिकार करने का आदी होता है तथा जिस समय यह भूखा होता है तब अपनी क्षुधा-शान्ति के हेतु किसी भी रुकावट को यह रुकावट नहीं मानता और बेहद ढीठ एवं खूँखार हो जाता है। ऐसी स्थिति में यह आदमी पर भी हमला करने से नहीं हिचकता और एक बार मनुष्य के खून की चाट पड़ जाने पर आदमखोर बाघ या तेंदुए से भी ज़्यादा खतरनाक यह हो जाता है। इसका कारण यह है कि उन बड़े हिंसक पशुओं से यह कहीं अधिक कपटी, चालाक और धोखेबाज़ होता है। प्रायः भेड़िया शिकार को कपट से घेर-घारकर फँसाने की कोशिश करते और युद्धप्रवीण सैनिकों की तरह अपनी टोली के अलग-अलग सदस्यों को अलग-अलग स्थानों में छिपाकर धोखे से उसे अपनी लपेट में ले आने की बाकायदा योजना बनाते हैं। अक्सर चोरों की तरह रात्रि या दिन में बस्तियों में घुसकर, हातों या घरों के भीतर से पालतू भेड़-बकरियों या मनुष्य-बालकों को उठा ले जाने के उनके क़िस्से भी प्रतिदिन सुने जाते हैं। यही नहीं, इस खूँखार प्राणी द्वारा कभी-कभी मनुष्य-बालकों को पाल-पोसकर बड़ा करने के भी क़िस्से पुराने ज़माने ही से सामने आते रहे हैं, जिनमें का एक ताज़ा क़िस्सा लखनऊ के बड़े अस्पताल में रक्खे गये 'रामू' नामक लड़के का है, जो भेड़ियों द्वारा पाला-पोसा गया बताया जा रहा है! यह जीव-वैज्ञानिकों की एक समाधान-रहित पहेली है कि मादा भेड़िया क्यों कभी-कभी मनुष्य-बालकों को भी अपने बच्चों की तरह अपना लेती है और उन्हें अपने स्तनों से दूध पिलाकर बड़ा किया करती है!

जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, देखने में भेड़िया बहुत-कुछ कुत्ते जैसा ही होता है। परंतु वह उससे कहीं अधिक सशक्त और लंबी टाँगोंवाला होता है। उसके कान सदैव ऊँचे उठे-से रहते हैं और माथा काफ़ी चौड़ा होता है। उसके दाँत और जबड़े विशेषतया शिकार के लिए ही निर्मित-से होते हैं तथा दुम कुत्ते की तरह की न होकर चलते समय एकदम सीधी और गुस्से की हालत में कुछ नीचे ऐंठी हुई-सी या ऊपर उठी हुई-सी रहती है। रंग में भेड़िया हल्का ललछौंह भूरा होता है, जिसमें कुछ स्याहीपना मिला रहता है। यह सघन वनों या पर्वतीय क्षेत्रों की अपेक्षा झाऊवाले मैदानों में रहने का ज़्यादा शौक़ीन होता है और अपने बच्चों को माँद या विवर में रखकर पालता है। इसकी मादा कुत्ते के पिल्लों जैसे तीन-चार से छः-सात तक बच्चे एक बार में देती है। भेड़ियों की सूँघने, देखने और सुनने की शक्ति अत्यंत विकसित होती है और दौड़ने में तो ये मीलों तक हारते नहीं। ये भारतवर्ष, साइबेरिया आदि एशिया के अधिकांश भागों के अलावा उत्तरी योरप के रूस, पोलैंड, ऑस्ट्रिया आदि देशों तथा उत्तरी अमेरिका में भी पाए जाते हैं। परंतु अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका और आस्ट्रेलिया आदि इनसे सर्वथा मुक्त हैं। योरप आदि ठंढे देशों में जाड़े में भूख के मारे ये बेहद उपद्रवी हो जाते हैं।

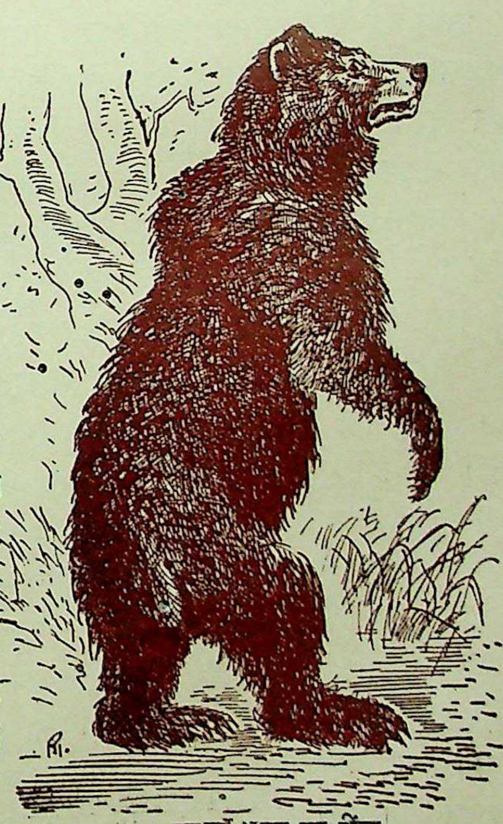

काला भालू या रीछ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सियार, लोमड़ी और जंगली कुत्ता

भेड़िये के बाद कुक्कुरवंश के अन्य दो प्रसिद्ध प्रतिनिधि 'सियार' (या गीदड़) और 'लोमड़ी' हैं, जो मनुष्य के लिए विशेष खतरनाक न होते हुए भी छोटे-छोटे जानवरों और खेती के ज़बर्दस्त शत्रुओं में से हैं। सियार दो-ढाई फ़ीट लंबा एक छोटा-सा प्राणी है, जिसका रंग ललछौंह भूरे-सलेटी से लेकर खिचड़ी श्यामल पिलौंहा तक पाया जाता है। इसकी दुम साँवली काली और झबरी-सी होती है और वह प्रायः नीचे की ओर लटकती रहती है। ये काफ़ी डरपोक प्रकृति के होते हैं और अक्सर अँधेरा होने पर ही बाहर निकलते हैं। प्रायः शाम होते ही गाँवों की सीमा पर इनकी आवाज़ सुनाई देने लगती है। इनका आहार खरगोश जैसे छोटे-छोटे जानवरों और गाँव के पालतू पक्षियों आदि से लेकर मरे हुए पशुओं के लोथड़ों तक सभी कुछ होता है, यहाँ तक कि मांसजीवी प्राणी होकर भी ये मकई के भुट्टों, ककड़ी-खरबूजों और गन्ने के खेतों पर भी हाथ साफ़ करने से नहीं हिचकते। इनकी चालाकी और मक्कारी तो इतनी मशहूर है कि पुराने ज़माने ही से हमारे यहाँ 'पंचतंत्र' की-सी कहानियों में उनकी करतूतों के वर्णन भरे पड़े हैं! इनकी कई जातियाँ हैं, जो भारतवर्ष और दक्षिण-पूर्ववर्ती एशियाई द्वीपों से लेकर ठेठ पश्चिमी एशिया एवं उत्तरी अफ्रीका तक व्याप्त हैं।

सियार की तरह लोमड़ी भी हमारी बस्तियों से सटकर रहनेवाला एक चालाक क़िस्म का जंगली जानवर है। बल्कि यदि यह कहा जाय कि चालाकी में वह अन्य सभी जानवरों को मात करता है तो भी कोई अत्युक्ति न होगी! इस छोटे-से कुक्कुरवंशी प्राणी के शरीर का आकार तो एक मामूली दुबले-पतले कुत्ते से ज़्यादा नहीं होता, परंतु उसकी दुम अपेक्षाकृत बहुत लंबी और झाड़ू की-सी झबरी होती है। साथ ही उसका मुँह नेवले का-सा आगे निकला हुआ और आँखें खड़ी पलकोंवाली चालाकी से भरी होती हैं। रंग इसका मिश्रित ललछौंह से लेकर भूरे-सलेटी तक विविध प्रकार का पाया जाता है और ईसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रदेशों में उसके बदन पर के बाल भी कम-ज़्यादा घने और रूखे या मुलायम मिलते हैं। ये जीव ज़मीन में बिल खोदकर रहते हैं, परंतु इनकी चतुराई का एक उदाहरण यह भी है कि अक्सर ये बिज्जू जैसे जानवरों के बिलों को हथियाकर ज़बरन उनमें रहने लगते हैं। ये जीव पुरानी और नई दुनिया के अधिकांश भागों में विस्तृत पाये जाते हैं और सियार की भाँति इन्हें भी मांस के अतिरिक्त कंद-मूल-फल खाने का गहरा शौक होता है। इनकी योरपीय और उत्तरी अमरीकी जातियों में लाल और सलेटी रंग की दो क़िस्में बहुत प्रसिद्ध हैं, जिनकी मुलायम बालदार खालों की बहुत क़ीमत वहाँ आँकी जाती है। इसीलिए वहाँ लोमड़ियों के शिकार का काफ़ी रिवाज भी है। उत्तरी अमेरिका में लोमड़ियों की अनेक सुंदर जातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें एक चाँदी के-से रुपहले वर्ण की, दूसरी एक एकदम काली और कबचितरी तथा अन्य एक क्रूस के-से चिह्नवाली मिलती है। परन्तु सबसे सुंदर वर्ण की लोमड़ी धुर उत्तरी हिम-प्रदेशों में पाई जाती है, जिसका रंग गरमी की ऋतु में तो नीला-सलेटी-सा रहता है और जाड़ा आते ही वह एकदम पूर्णतया सफ़ेद हो जाता है! भला, लोमड़ियों की चालाकियों के बारे में क्या कहा जाय—वह तो चालाकी और धूर्त्तता की प्रतीक ही होती है! शिकार के समय पीछा किये जाने पर जिस-जिस प्रकार से आक्रमणकारियों को ये छकाती और चकमा देती हैं, यहाँ तक कि जान पर आ पड़ने पर कभी-कभी झूठमूठ ही बेजान बनकर, अर्थात् मृतक का स्वाँग रचकर, ये जिस तरह ज़मीन पर लेट जाती हैं और शिकारी का ध्यान बँटते ही आँख बचाकर भाग खड़ी होती हैं, ये सब तो आम तौर पर जानी-बूझी हुई बातें हैं!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भेड़िया, सियार और लोमड़ी के उपरान्त कुक्कुरवंश का अन्य एक महत्त्वपूर्ण सदस्य मनुष्य का पुराना साथी कुत्ता है, जिसकी अनेकों जातियाँ मिलती हैं, जिनमें से कुछ ही अब जंगली अवस्था में भी पाई जाती हैं। यहाँ पालतू कुत्तों के बारे में तो कुछ कहने के लिए स्थान नहीं है, परन्तु इस प्राणी के कतिपय जंगली नमूनों का परिचय देना आवश्यक है। इन जंगली कुत्तों की एक प्रसिद्ध जाति तो स्वयं हमारे ही अपने देश में मिलती है, जो 'धोल' या 'सोनहा' के नाम से विख्यात है। यह जानवर एक प्रकार से भेड़िये और सियार के बीच की कड़ी-सा जान पड़ता है। वह टोली बाँधकर शिकार करने का आदी होता है, और कहते हैं कि उसका वह सामुद्रिक आक्रमण इतना ज़बर्दस्त होता है कि उसके आगे बाघ तक अपना शिकार छोड़कर भाग खड़ा होता है! यह कुत्ता बड़े-बड़े चौपायों तक को अपनी लपेट में ले लेता है, फिर हिरन या भेड़-बकरी की तो बात ही क्या है। इन्हीं जैसा अन्य एक ख़ूँख़्वार जंगली कुत्ता अफ़्रीका में पाया जाता है, जिसकी टोलियाँ बड़े से बड़े शिकार के जानवर को भी गिरा देती हैं! एक और प्रसिद्ध जंगली कुत्ता ऑस्ट्रेलिया का 'डिंगो' है, जो वहाँ पाली गई भेड़ों के झुंड के लिए इतना घातक सिद्ध हुआ है कि वहाँ की सरकार को इनाम बाँटकर उसकी संख्या कम करना पड़ी है!

सबसे भौंडा हिंसक पशु—लकड़बग्घा

अब हम एक ऐसे जानवर का परिचय तुम्हें देने जा रहे हैं, जिससे अधिक भौंडी शक्ल-सूरत का तथा वैसे ही घिनौने व्यवसायवाला प्राणी हिंसक पशुओं के वर्ग में दूसरा हमें नहीं मिलता! इस जानवर का नाम है 'लकड़बग्घा'! यदि तुमने किसी जंतुशाला आदि में इसकी भौंडी आकृति देखने का मौक़ा न पाया हो तो लो उसका वर्णन सुन लो! लगभग तीन साढ़े तीन फ़ीट लंबे एक जानवर की कल्पना करो, जिसके अगले पैर तो काफ़ी बड़े और मज़बूत तथा पिछले बहुत छोटे और मुड़े हुए-से हों। उस पर उसका मुँह तो बिड़ाल-वंशीय हिंसक प्राणियों की अपेक्षा कुक्कुरवंशीयों से अधिक मिलता-जुलता-सा हो और खाल पर के बालों का मटमैला भूरा-साँवला रंग तथा उनके ऊपर पड़ी हुई मैली काली धारियाँ, पट्टियाँ आदि ऐसी जान पड़ती हों जैसे कि यह जीव साक्षात् बाघ का ही कोई तुच्छ-सा दूर का रिश्तेदार रहा हो! यही नहीं, इस सारी बदसूरती पर मानों और रंग चढ़ाने के लिए साथ ही साथ उसके सियारों की-सी एक भद्दी झामरी दुम की भी कल्पना करो और तब सोचो कि अपनी इन असमान टाँगों तथा पीछे की ओर झुके हुए भारी-से बदन को लिये हुए यह किस तरह लँगड़ाता-सा ऊँचा मुँह किये चलता है! बस, यही है लकड़बग्घे की हूबहू तस्वीर! यह घिनौना-सा प्राणी जितना बदशकल है, वैसी ही बदनुमा उसकी आदतें भी हैं। वह दरअसल पशु-जगत् का अंत्यज है! कारण, उसका पेशा शिकार द्वारा भरण-पोषण करने के बजाय अन्य जानवरों द्वारा मारे गये जीवों या मरे हुए प्राणियों के सड़े-गले लोथड़ों को ही खाकर गुजारा करना है। परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि इस कारण यह किसी क़दर कम ख़तरनाक हो। वस्तुतः इसका जबड़ा इतना मज़बूत और भयावना होता है कि उसके एक ही दबाव में बड़े-बड़े पशुओं को हड्डियाँ चकनाचूर हो जाती हैं। ग़नीमत यही है कि स्वभाव से यह डरपोक होता है। परंतु उसकी यह कायरता कभी-कभी उसे चोरी करने पर भी उतारू कर देती है और वह बस्तियों में रात को चुपके से घुसकर छोटे पालतू जानवरों के अलावा हमारे बच्चों तक को उठा ले जाता है!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जंतु-जगत् का भयावना सर्वभक्षी—भालू या रीछ

सिंह, बाघ, चीता आदि की भाँति 'भालू' या 'रींछ' भी हमारे देश के लिए आम तौर पर जाना-पहचाना हुआ एक हिंसक प्राणी है। परन्तु कहीं मदारी की डुगडुगी पर नाचते हुए, नकेल पहने, किसी भालू को देखकर तुम यह न समझ बैठना कि यह कोई कम खतरनाक जानवर है ! वह पालतू बनने पर तरह-तरह की नक़लों के खेल, मल्ल-कुश्ती के करतब, और नाच आदि जो दिखाते पाया जाता है, सो केवल डंडे के ज़ोर के मारे ही करता है। अन्यथा जंगली हालत में उसके पास फटकना मौत को मोल लेना जैसा है ! यह ताक़तवर जीव सिंह और बाघ तक को युद्ध के लिए चुनौती देते पाया जाता है, फिर मनुष्य की बात कौन कहे !

परन्तु ख़तरनाक मांसभक्षी जानवरों के हिंसक वर्ग में सम्मिलित होकर भी यह प्राणी मुख्यतः एक कंद-मूल-फलभोजी जीव है—वह सर्वभक्षी होकर भी बिड़ालवंशियों का-सा निरा मांसजीवी शिकारी नहीं माना जा सकता। भालुओं की अनेक जातियाँ और उपजातियाँ पाई जाती हैं, जो पुरानी दुनिया में हिमालय तथा अटलस पर्वतमालाओं के क्षेत्र, दक्षिण भारत के पठार, लंका, मलाया, चीन, फ़ारमोसा, जापान और मध्य योरप के जंगलों में तथा नई दुनिया में ठेठ उत्तरी ध्रुव-प्रदेश एवं अलास्का से लेकर मैक्सिको तक छितरी हुई हैं। इनमें सबसे बड़े डीलडौल का भालू उत्तरी अमेरिका के अलास्का प्रदेश का कादिअक द्वीप का रजतवर्णीय भूरा भालू है, जिसकी ऊँचाई पैरों पर खड़े रहने की दशा में दस फ़ीट और वज़न लगभग डेढ़ हज़ार पौंड (क़रीब उन्नीस-बीस मन) होता है ! इसका सिर लगभग एक हाथ चौड़ा और उतना ही लंबा होता है और अगले पैरों में फ़ौलाद के अंकुशों जैसे तीन इंच लंबे खौफ़नाक नाख़ून होते हैं। अपने डीलडौल के लिहाज़ से यह प्राणी वर्त्तमान हिंसक पशुओं में सबसे बड़ा माना जा सकता है।

भूरे भालुओं की कई जातियाँ मध्य योरप के जंगलों और मध्य एशिया के पर्वतीय क्षेत्रों में ठेठ जापान तक विस्तृत हैं, जो पूर्वोल्लिखित रुपहली जाति से कम डीलडौल की होकर भी बड़ी भयावनी हैं। इनमें से कई बहुत ऊँचाई के इलाक़ों में भी मिलती हैं। इस जाति के भालुओं की एक विशेषता यह है कि ये जाड़े भर अपनी माँदों में झपकी मारे पड़े रहते हैं और बर्फ़ गलने पर पुनः बाहर विचरने लगते हैं !

काले भालू से तो हम सभी सुपरिचित हैं, क्योंकि वही हमारे देश की सबसे अधिक विस्तृत ऋक्ष-जाति है। यह हिमालय की निचली श्रेणियों एवं तराई के इलाक़ों से लेकर ठेठ दक्षिण तक पाया जाता है। डीलडौल के लिहाज़ से हिमालय का काला भालू बृहदाकार होता है। उसके बाल छोटे, मुलायम और समानतः जमे हुए-से होते हैं एवं थूथन अधिक आगे निकला हुआ होता है। मैदानी रींछ के बाल ज़्यादा लंबे और गरदन के आसपास अयाल का-सा रूप धारण किये हुए रहते हैं। इस कृष्णकाय जाति की छाती पर काले बालों के बीच अंग्रेज़ी के 'वी' अक्षर की नाईं एक बड़ा सफ़ेद चिह्न बना रहता है। ये भालू मांस के अलावा, तरह-तरह के फल-फूल, कंद-मूल और शहद तक शौक़ के साथ खाते हैं। शहद की खोज में ये पेड़ों पर भी चढ़ जाते हैं। वस्तुतः भालू एक सर्वभक्षी प्राणी है। वह कीड़े-मकोड़े, दीमक, मछली, सब-कुछ खा लेता है। यहाँ तक कि जंतुशालाओं में वह सिगरेट पीते भी देखा जा सकता है !

परंतु दर्शनीयता के लिहाज़ से इन प्राणियों की सबसे अनूठी जाति ध्रुव-प्रदेश के एकदम चाँदी के-से श्वेतवर्णीय सफ़ेद भालुओं की है। आकार में ये अपने भूरे या काले भाई-बन्धुओं से छोटे और हलके डील के होते हैं। इनकी गरदन बहुत लंबी, सिर छोटा और कुक्कुरवंशियों जैसा आगे को निकला हुआ, पैर बहुत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बड़े और सशक्त, तथा नाखून अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। यह ऋक्ष-जाति केवल उत्तरी ध्रुव-प्रदेश के हिमक्षेत्रों ही में पाई जाती है। वह बारहों मास बर्फ़ के वातावरण में रहने की अभ्यस्त है। उसका आहार मछली, सील, घोंघे आदि जलजीवों से लेकर बारहसिंघा, लोमड़ी, तरह-तरह के पक्षी, आदि जो कुछ भी मिल जाय वह होता है। अपनी उस रुपहली श्वेत वेशभूषा में ये अनोखे रींछ आसपास की धवल हिमराशि के बीच खूब ही फबते हैं! न केवल इनका सारा बदन ही, बल्कि पैरों के तलुवे का भाग भी सफ़ेद बालों की घनी राशि से ढका रहता है। यह व्यवस्था प्रकृति ने इनके बदन में इसलिए की है, ताकि दौड़ते समय ये बर्फ़ पर फिसलें नहीं! इनके बदन पर के बाल दूर से बड़े मुलायम समूर जैसे जान पड़ने पर भी दरअसल वैसे नरम नहीं होते। वे काफ़ी रूखे, कड़े और इस प्रकार के होते हैं कि उनके कारण एक ओर जहाँ बदन की गरमी नहीं निकलने पाती, वहाँ पानी से गीला होने से भी उसकी पर्याप्त रक्षा हो जाती है। इस केशराशि का रंग श्वेत-धवल जान पड़ने पर भी कुछ पिलौंही छाया लिये रहता है। साथ ही इसके नीचे छिपी हुई बदन की चमड़ी एकदम काले रंग की होती है। उसका यह कालापन इन प्राणियों के ओंठ और थूथन के सिरे पर स्पष्ट देख पड़ता है। अपने आसपास की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण ध्रुव-प्रदेश के ये सफ़ेद भालू ज़बर्दस्त तैराक होते हैं! वे प्रायः समुद्र में मीलों तक तैरते चले जाते हैं। डुबकी लगाकर मछलियाँ पकड़ते भी वे पाये जाते हैं। सील का शिकार करते समय वे उनके निकास के गड्ढों के मुहानों पर ताक लगाये बैठे रहते हैं और ज्योंही कोई सील साँस लेने के लिए बाहर निकली नहीं कि अपने पंजे की झपट से उसे बाहर खींच लेते हैं। ये जीव (विशेषकर इनकी मादाएँ) जाड़े के दिनों में कई हफ़्तों तक बिना कुछ खाए-पिए अपनी बर्फ़ की माँदों में कुंभकर्ण की-सी निद्रा में लीन पड़े रहते हैं। कभी-कभी कोई इक्का-दुक्का सफेद भालू अनायास किसी ध्रुवप्रदेशीय हिमशिला या हिमपर्वत (आइसबर्ग) पर अलग छिटककर तैरता हुआ सुदूर दक्षिण में काफ़ी दूरी तक आ पहुँचते भी पाया गया है!

भालुओं को जंतुशालाओं के पिंजड़ों में बंद करके यद्यपि पालतू बना लिया जा सकता है, फिर भी उनका खतरा कभी भी कम नहीं होता। प्रायः भारतवर्ष के देहातों में ऐसे व्यक्ति देखने को मिल जाते हैं, जो इन खतरनाक प्राणियों की लपेट में आकर चेहरे या बदन पर कभी बुरी तरह घायल हो गए थे। भालू की देखने या सुनने की शक्ति तो सीमित होती है, परन्तु उसकी घ्राण-शक्ति अत्यंत विकसित पायी जाती है। अपनी इसी शक्ति की बदौलत वह ज़मीन के भीतर के

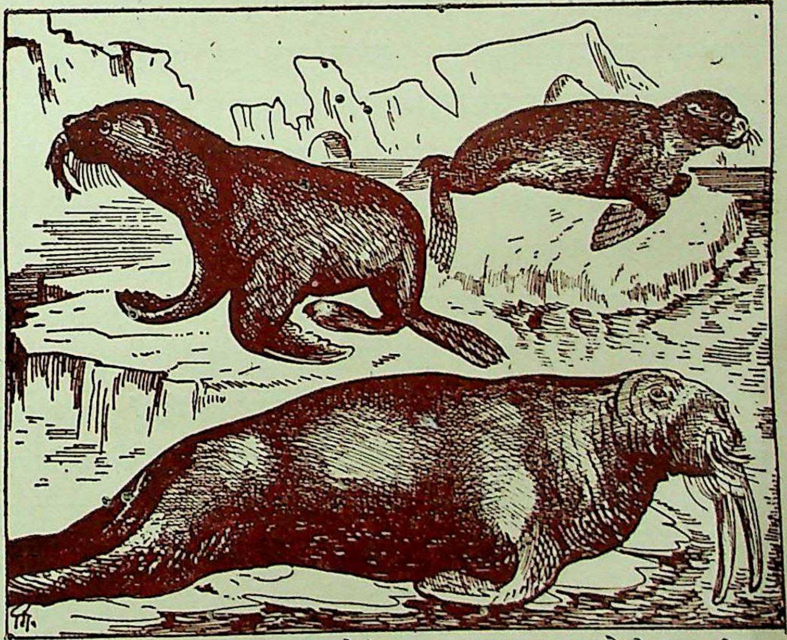

(पीछे की ओर) सील; (सामने) वालरस नामक स्तनपोषी जलजीव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
कंद-मूल और दीमक, कीड़ों आदि का पता पा लेता है। शहद के छत्तों का भी पता वह इसी तरह पाता है। भालू के एक बार में प्रायः दो बच्चे पैदा होते हैं। उन्हें मादा पीठ पर बिठाये लिये फिरती है।

सील, वालरस, समुद्री सिंह, गज-सील आदि हिंसक जलजीव

हिंसक स्तनपोषियों की 'बिड़ाल', 'कुक्कुर', 'कटास', 'ऋच्छ', आदि शाखाओं के अतिरिक्त एक और बिरादरी ध्रुव-प्रदेशों में पाये जानेवाले 'सील', 'वालरस' आदि उन जलजीवों की भी है, जो जलमंडल के निवासी बन जाने पर भी गुण-धर्म के लिहाज़ से इस बृहत् आमिषभोजी समूह के ही सदस्य कहे जा सकते हैं। इन स्तनपोषियों के हाथ-पैर बदलकर तैरने में मदद देनेवाले चपटे सुफनों जैसे अंगों में रूपान्तरित हो गये हैं। ये प्राणी जल के अतिरिक्त स्थल पर भी आ जाते हैं। ये तीन मुख्य समूहों में वर्गीकृत हैं, जिनमें से प्रथम समूह में 'समुद्री सिंह' या 'कानवाली सील', द्वितीय में 'वालरस', और तृतीय में 'असली सील', 'गज-सील', आदि की गणना होती है। 'कानवाली सील' या 'समुद्री सिंह' की विशेषता इस बात में है कि इनमें स्पष्टतः दिखाई पड़नेवाले कान होते हैं। कुछ समुद्री सिंहों में एक प्रकार की अयाल भी पाई जाती है। ये सात से बारह या पंद्रह फ़ीट तक लंबे बृहदाकार प्राणी होते हैं, जिनका रंग पिलौंहा-भूरा या साँवला सा होता है। ये समूहों में ही रहने के आदी हैं। प्रायः एक-एक नर पाँच-छः दर्जन से भी अधिक मादाओं को अपने कब्ज़े में किये रहता है। इनके लिए ये आपस में घोर संघर्ष करते हैं। ये अद्भुत बुद्धिसंपन्न प्राणी पालने पर निसेनियों पर चढ़ना, नाक के छोर पर गेंद या लंबी बल्ली साधना, बाजे पर खास ढंग से हाथ चलाना, और तरह-तरह के सर्कसी खेल दिखाना सीख जाते हैं! माना जाता है कि ये हैं थलचर हिंसक स्तनपोषियों और सील-वर्ग के शेष प्राणियों के बीच की संयोजक कड़ी जैसे। ये ज़बर्दस्त तैराक होते हैं और प्रायः काफ़ी ऊँचाई से पानी में कूद पड़ते हैं! इनका मुख्य आहार मछली है।

सील-वर्ग की दूसरी बिरादरी का एकमात्र सदस्य 'वालरस', दर्शनीयता के लिहाज़ से, संभवतः इन सबसे कहीं अधिक मशहूर है। कारण, दस-पंद्रह फ़ीट लंबे और चालीस मन तक वज़नी उसके भारी शरीर को मानों अधिक रुआबदार बनाने के लिए कुदरत ने उसके चेहरे पर घनी मूँछों और डेढ़ से दो-तीन फ़ीट तक लंबे सुअर के दाँतों जैसे दो कराल दंष्ट्र प्रदान कर रक्खे हैं! इसके ये दाँत दरअसल इसके ऊपरी जबड़े के बढ़े हुए कुक्कुरदंत मात्र हैं। यह मुस्टंदर मांस और चर्बी का एक हिलता-डुलता बोरा-जैसा जान पड़ता है, जिस पर वज़न के मारे गहरी शिकनें पड़ी रहती हैं। अपने क़ीमती दाँत, चर्बी के भंडार तथा मांस के लिए यह प्राणी उत्तरी ध्रुव-प्रदेशों के एस्किमों लोगों द्वारा कसरत से मारा जाता है।

तीसरी बिरादरी की 'असली सील' तो डीलडौल में बहुत बड़ी नहीं होती—वह केवल पाँच-सात फ़ीट तक ही की पाई जाती है—परन्तु इसी वर्ग की 'गज-सील' नामक एक जाति बीस से तीस फ़ीट तक की लंबाई पर पहुँचते देखी गई है! 'गज-सील' नाम इसे इसलिए मिला है कि इसकी थूथन या नासिका का अग्रभाग हाथी की सूँड की नाईं आगे निकला रहता है! यह बृहदाकार प्राणी उत्तर के अलावा दक्षिणी ध्रुव-प्रदेशों में भी मिलता है। असली सील पिलौंहा सलेटी वर्ण का एक प्राणी है। जब यह अपना सीना तानकर गरदन ऊँची उठाये खड़ा होता है तो उसकी भावभंगी से मनुष्य का भ्रम होने लगता है! शायद इन्हीं के भ्रमवश कहानी-किस्सों में पाई जानेवाली जलकन्याओं की कल्पना मनुष्य के मन में जगी हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसमें संदेह नहीं कि किसी भी जीवधारी का रुआब बढ़ाने में डीलडौल या आकार का महत्वपूर्ण हाथ रहता है। प्रायः बड़े आकार के किसी भी प्राणी को देखते ही छोटे जीव सहम-से जाते हैं, चाहे वह कितना ही निरापद जीवधारी क्यों न हो ! इस प्रकार दबदबा जमाने के साथ-साथ दर्शकों के मन में अचंभा पैदा करने और उनका कुतूहल बढ़ाने में भी बड़ा डीलडौल कोई कम योग नहीं देता। शायद बहुतेरे जीवधारी तो केवल इसीलिए हमारे लिए आकर्षण और कुतूहल की वस्तु बने हुए हैं कि वे हैं असाधारण बड़े डीलडौल के प्राणी। परन्तु ऐसे जानवर अब पृथ्वी पर बहुत थोड़े ही बचे रह गए हैं। आज के दिन बड़े आकार के प्राणियों की न केवल जातियाँ ही गिनी-चुनी रह गई हैं, प्रत्युत ऐसी हर जाति के जानवरों की कुल संख्या भी अब अधिक नहीं पायी जाती। इसका सारा दोष मनुष्य पर है, जिसने एक तो धरती के कोने-कोने तक अपना पैर पसारकर अन्य जीवों के लिए रहने की मानों जगह ही बाक़ी नहीं छोड़ी, दूसरे अपनी अदूरदर्शी स्वार्थ-नीति द्वारा शिकार कर-करके बहुतेरे बड़े जीवों का हज़ारों की संख्या में उसने बेतरह संहार कर दिया है ! यदि उसके इस संहार-यज्ञ का यही क्रम जारी रहा तो ताज्जुब नहीं कि एकाध सदी के बाद बृहत्काय प्राणियों के जो ये बचे-खुचे नमूने हैं वे भी अतीत की वस्तु बनकर या तो हमारे संग्रहालयों (अजायबघरों) में या केवल पुस्तकों की तस्वीरों ही में देखने भर को रह जाएँगे !

पिछले एक प्रकरण में, पृ० ११ पर हम एक मानचित्र दे चुके हैं, जिसमें वर्त्तमान और बीते हुए युगों के कतिपय सबसे बड़े आकार के प्राणियों के डीलडौल की पारस्परिक तुलना प्रस्तुत की गई है। उक्त चित्र से यद्यपि यह बात स्पष्ट है कि जैसे बृहत्काय जीव इस पृथ्वी पर पूर्वकाल में गुज़र चुके हैं (जिनके कि बारे में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक स्वतंत्र प्रकरण में विस्तृत हाल हम तुम्हें बता चुके हैं), वैसे तो अब इस दुनिया में फिर से हमें देखने को नहीं मिलने के, फिर भी आज कुछ नमूने ऐसे प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जो लंबाई में तो अवश्य ही उन विलुप्त महाकाय प्राणियों के समकक्ष रखे जाने का दावा कर सकते हैं ! ये हैं 'तिमि' या 'ह्वेल' वर्ग के कतिपय जलचर स्तनपोषी, जो कि डीलडौल के लिहाज़ से वर्त्तमान जीवधारियों के सरदार जैसे हैं। इनके अतिरिक्त थलचरों में भी हाथी, जिराफ़, गैंडा और दरियाई घोड़ा (हिप्पोपोटेमस) जैसे कुछ वर्त्तमान महाकाय जानवर ऐसे हैं, जो आकार की दृष्टि से करोड़ों वर्ष पूर्व के दैत्याकार थलचरों एवं उभयचरों से होड़ न ले पाने पर भी वर्त्तमान जंतु-जगत् में सबसे आगे की पंक्ति में प्रतिष्ठित हैं। प्रस्तुत प्रकरण में अपने इन्हीं समकालीन बृहत्काय जीवों का परिचय हम तुम्हें देने जा रहे हैं। इस संबंध में एक बात ध्यान देने योग्य है। वह यह है कि 'तिमि' (ह्वेल) से लेकर हाथी, गैंडा, जिराफ़ और हिप्पोपोटेमस तक ये सभी भीमकाय जीव जंतु-विकास-वृक्ष की स्तनपोषी शाखा के ही सदस्य हैं, जिस प्रकार कि करोड़ों वर्ष पूर्व के लगभग सभी उरंगम दैत्य अंडज वर्ग के प्राणी थे। साथ ही एक महत्त्वपूर्ण ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि सिवाय 'तिमि' के (जो कि छोटे-छोटे जलजीवों पर गुजर-बसर करनेवाला एक आमिषभोजी प्राणी है) ये सभी भीमकाय प्राणी विशुद्ध वनस्पतिभोजी या शाकाहारी ही हैं, जैसे कि पूर्वकाल के अधिकतर दानवाकार उरंगम भी थे ! इस दृष्टि से ये सब स्तनपोषियों की उस हिंसक मांसभक्षी शाखा के खतरनाक जीवधारियों से एकदम पृथक् कोटि के हैं, जिसका कि विवरण पिछले प्रकरण में दिया जा चुका है।

सबसे बड़ा वर्त्तमान जीव—'तिमि' या 'ह्वेल'

तुम्हें यह जानकर अचंभा होगा कि जंतु-जगत् का वर्त्तमान सबसे बड़ा प्राणी एक जलचर जीव है, थलचर नहीं ! वह है महासागरों का निवासी 'ह्वेल' नामक महामत्स्य ! इस जीवधारी के लिए संस्कृत में 'तिमि' शब्द का प्रयोग हुआ है। परन्तु 'मत्स्य' नाम सुनकर तुम कहीं यह न समझ बैठना कि यह मछलियों ही की बिरादरी का कोई अंडज जीव है ! वस्तुतः मत्स्य की-सी शक्ल का होकर भी यह जलचर मछली कदापि नहीं माना जा सकता। इसका कारण यह है कि न तो इसकी शरीर-रचना, न इसके गुण-धर्म ही, मछलियों जैसे हैं। यह है दरअसल हाथी, घोड़े, गाय, भैंस, बंदर आदि के बृहत् स्तनपोषी वर्ग का ही एक जीव, जो परिस्थितिवश जलचर बनकर महासागरों का वासी बन गया है। इसका तो अर्थ यह हुआ कि वह मछलियों की अपेक्षा हमारा कहीं अधिक निकट का संबंधी है ! इसका सबसे बड़ा सबूत यह है कि निरंतर जल में रहने के बावजूद, न तो मछलियों की तरह पानी में साँस लेने का ही कोई सुचारु प्रबंध इसके शरीर में है, न उनकी तरह यह कोई अंडज प्राणी ही है। यह है हमारा ही जैसा एक जरायुज (अर्थात् गर्भाशय में पोषण करके संतान पैदा करनेवाला) जीव। हाँ, संपूर्णतया जल को ही अपना आवासस्थान बना लेने के कारण इसकी शक्ल-सूरत क्रमशः बदलकर मत्स्य की-सी हो गई है। उसके मस्तक और धड़ के बीच बाहरी दिखावे में गरदन का कोई पृथक् अस्तित्व अब नहीं जान पड़ता। उसके हाथ-पैर भी परिस्थितिवश बदलकर आगे की ओर तो मछलियों के डैनों या सुफनों जैसे चपटे अंगों में परिवर्त्तित हो गये हैं, जिनमें उँगलियों या नाखूनों आदि का अब कोई चिह्न शेष नहीं रहा है; और पीछे की ओर तो किसी भी उपयोग के न रह जाने के कारण कालान्तर में वे एकदम गायब ही हो गए हैं !

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस बृहत्काय जीवधारी की अनेक जातियाँ पाई जाती हैं, जो मोटे तौर पर 'बिना दाँतवाली' और 'दाँतवाली' इन दो महासमूहों में बाँटी जा सकती हैं। पहले हम तिमियों की बिना दाँतवाली जाति का ही विवरण देंगे, कारण इसी वर्ग में 'रौरकवाल' या नील-तिमि नामक वह महाकाय प्राणी सम्मिलित है, जो कि संसार का वर्त्तमान सबसे बड़े डीलडौलवाला जीवधारी है। इस जाति के सदस्यों के प्रमुख लक्षण उनके मुँह में 'ह्वेलबोन' नामक अस्थि-रचना का पाया जाना, उनके नथुनों के अलग-अलग खुलने की व्यवस्था होना एवं उनके खोपड़े या शीर्ष-भाग का आकार-प्रकार विशद तथा उसकी रचना सुविकसित होना, आदि हैं। पहले हम तुम्हें इन तिमियों के मुख में पायी जानेवाली 'ह्वेलबोन' नामक अस्थि-रचना का कुछ परिचय दे दें। यह रचना क्या है, मानों एक प्रकार की कुदरती छलनी इसे समझो! इसका स्वरूप एक के बाद दूसरी लगातार तरतीबवार सजी हुई असंख्य त्रिकोणाकार अस्थि-फलकों या हड्डियों की प्लेटों की शृंखला का-सा होता है, जो तालु की सतह से आरंभ होकर मुख की छत के दोनों बाजू में नज़दीक-नज़दीक सटी हुई-सी व्यवस्थित रहती हैं। गिनती में ये पतली प्लेटें प्रत्येक ओर ढाई सौ से तीन सौ तक होती हैं और उनकी सतह इस प्रकार की रचित होती है कि उन सबके बीच एक तरह की झिरियों का जंजाल-सा बन जाता है, जिनमें से होकर पानी तो छनकर बाहर निकल सकता है, परन्तु उसमें तैरते हुए सूक्ष्म जीव आदि बिना छने वहीं बचे रह जाते हैं! यह अनूठी व्यवस्था महामाया प्रकृति ने इस महाकाय प्राणी के मुख में भला किस अभिप्राय से की है? इसका उत्तर हमें मिलता है इस जीवधारी के विशिष्ट आहार में! तुम्हें यह जानकर अचंभा होगा कि इतने बड़े डीलडौल का यह प्राणी, अमित शक्तिशाली एवं महासागरों का निवासी होकर

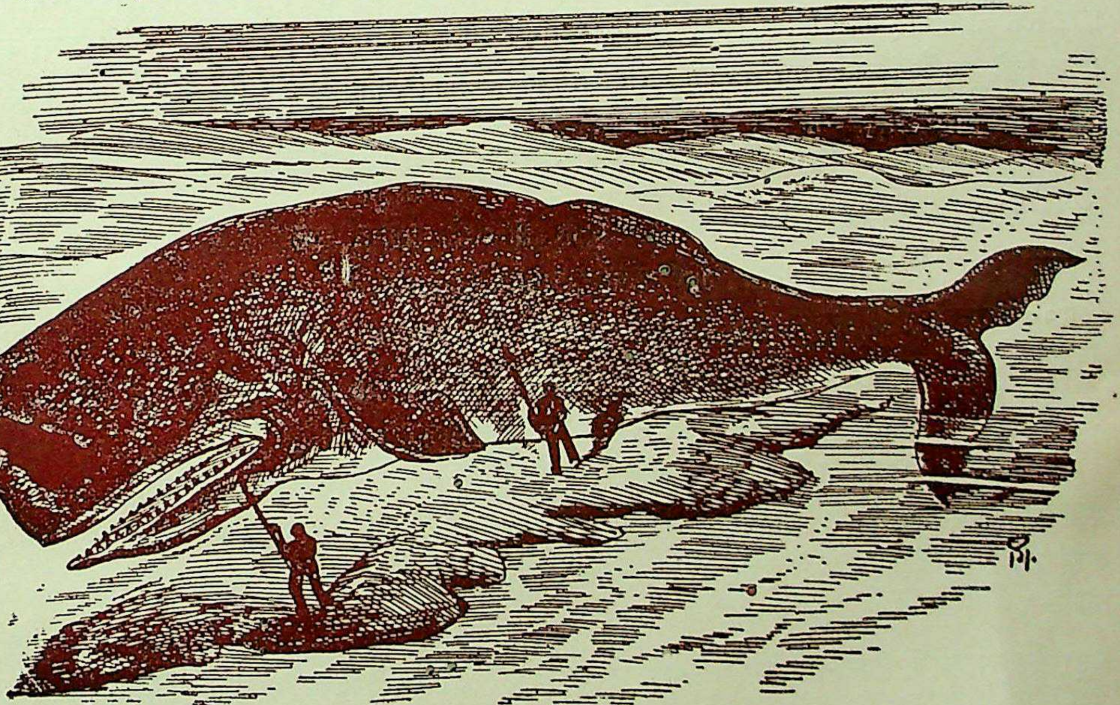

'स्पर्म-ह्वेल' नामक कृष्णकाय 'तिमि', जो बिना दाँतवाली नील-तिमि जितनी लंबी न होकर भी ८० फ़ीट की लंबाई तक पहुँचते पाई गई है। इसका प्रत्येक दाँत ६॥ इंच लंबा, ६ इंच घेरे का और ३ पौंड वज़नी तक पाया गया है। इस महाकाय प्राणी के मुँह में 'ह्वेलबोन' नहीं होतो। इस जाति की तिमि हमारे देश के आसपास के समुद्रों में भी काफ़ी मिलती रही है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
भी, केवल प्रोटोज़ोआ-वर्ग के अति छोटे-छोटे एककोशीय जलजीवों अथवा अत्यन्त छोटी-छोटी मछलियों आदि का ही आहार करके अपना गुजर-बसर करता है—वह बड़े जल-जंतुओं को नहीं खाया करता! इसी कार्य में सुविधा प्रदान करने के लिए कुदरत ने उसके मुख में 'ह्वेलबोन'-रूपी इस अनूठी छलनी की यह व्यवस्था की है। इसकी बदौलत यह जीवधारी जब जल की एक बड़ी-सी घूँट मुँह में लेता है तो उसकी जीभ की विशिष्ट प्रकार की हलचल द्वारा पानी की राशि तो उक्त अस्थि-रचना रूपी छलनी की अगणित झिरियों में से छनकर पुनः बाहर निकल आती है और उसमें मिश्रित असंख्य छोटे-छोटे समुद्री जीव-जंतुओं का ढेर वहीं बचा रहकर उसके आहार का साधन बन जाता है!

ह्वेलबोन-वाली इन अदंतक तिमियों की तीन मुख्य जातियाँ हैं—ग्रीनलैंड या ध्रुवप्रदेश की 'राइट-ह्वेल', प्रशान्तमहासागरीय 'साँवली ह्वेल' और 'रोरक्वाल' या 'नील-तिमि'। इनमें प्रथम जाति की तिमि का सिर बहुत बड़ा होता है तथा ह्वेलबोन भी काफ़ी लंबी, पतली एवं काले वर्ण की होती है। दूसरी की ह्वेल-बोन पीतवर्ण की एवं लघु आकार की होती हैं। यह जाति चालीस से पचास फ़ीट तक के डीलडौल ही की पाई जाती है। तीसरी जाति की तिमि का सिर तो अपेक्षाकृत छोटा होता है, और उसके गले से छाती तक का सारा भाग समानान्तर बनी हुई अनेक लंबाकार खाईनुमा रेखाकृतियों से युक्त होता है; परन्तु इस वर्ग की तिमि डीलडौल में सबसे बढ़ी-चढ़ी होती है। इसीकी एक उपजाति 'कुबड़ी-तिमि' (हंपबैक-ह्वेल) है, जो अनूठे ढंग से ऊँट की कूब की तरह धन्वाकार मुड़ी हुई-सी होती है। यह प्रायः पचास फ़ीट से ज़्यादा लंबी नहीं होती, परन्तु इस वर्ग की मुख्य जाति की ह्वेल—जिसे 'रोरक्वाल' या नील-तिमि कहते हैं—प्रायः ८५ से १०० फ़ीट तक की लंबाई की होती है! यह दीर्घाकार प्राणी आज के दिन संसार के सबसे बड़े जीवधारी का स्थान ग्रहण किये हुए है! इसके भारी-भरकम शरीर और बृहत् आकार का कुछ अनुमान तुम इस काल्पनिक तुलना द्वारा कर सकते हो कि यदि हम इसके बदन की लंबान के समानान्तर हाथियों की एक क़तार खड़ी करें तो उसके लिए शायद आठ-दस हाथी हमें जुटाना पड़ेंगे और यदि किसी एक बड़ी-सी तराजू में एक ओर इस प्राणी को तथा दूसरी ओर हाथियों को रखकर हम उसके बराबर वज़न करना चाहेंगे तो इसके लिए ज़रूरत होगी शायद तीस हाथियों की! कहते हैं, मनुष्य के लिहाज़ से इसका तौल सामान्य वज़न के लगभग २८०० आदमियों के बराबर होगा। इसका मुख-गर्त्त तो इतना बड़ा होता है कि एक पर एक सीधे खड़े होकर दो लंबे आदमी आसानी से उसमें घुस सकते हैं! अथवा यों कहिए कि १२ फ़ीट ऊँचे उसके इस मुख-द्वार में आसानी से एक हाथी महावत-सहित खड़ा किया जा सकता है!

'दंतक' या दाँतवाली तिमियों की अनेक उपजातियाँ हैं, जिनमें सबसे उल्लेखनीय दो हैं—एक तो 'स्पर्म-ह्वेल' या मोमी-तिमि; दूसरी 'शिकारी तिमि' (या किलर ह्वेल)। स्पर्म-ह्वेल के ऊपरी जबड़े में तो कोई काम के दाँत नहीं होते, परन्तु निचले जबड़े में छः-छः इंच लंबे अगणित दंत होते हैं। इस तिमि की मुख्य विशेषता यह है कि इसका सिर, बावजूद इसके कि उसमें 'ह्वेलबोन' या 'बालीन' नामक छलनी नहीं होती, बहुत बड़ा और सामने से चपटा-सा होता है! साथ ही इसके हवा निकालनेवाला एक ही नथुना या छिद्र होता है। आकार में इस जाति की ह्वेल साठ से अस्सी-पचासी फ़ीट तक पहुँचते पायी जाती है। इसका नाम स्पर्म-ह्वेल या मोमी-तिमि इसलिए पड़ा है कि उसमें 'स्पर्मासेटी' नामक एक गाढ़ा काला तैलीय द्रव बहुत अधिक परिमाण में पाया जाता है। ठंढक में वह लगभग मोम जैसा जमकर हल्का हो जाता है। दूसरा एक और मूल्यवान्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पदार्थ, जो इस तिमि में पाया जाता है, 'अंबरग्रिस' है। यह एक तीव्र गंधयुक्त पदार्थ होता है। यहाँ हम तुम्हें यह बता दें कि तिमि-वर्ग के सभी प्राणियों को साँस लेने के लिए समय-समय पर पानी की सतह पर ऊपर आना पड़ता है। प्रायः बड़ी जाति की ह्वेलें अपने नथुने से पानी का जो एक ज़बर्दस्त फ़व्वारा-सा छोड़ते देख पड़ती हैं, वह मात्र उनकी साँस के वेग से उमड़नेवाली फुहार ही होती है। यह धारणा ग़लत है कि तिमि बहुत-सा पानी पीकर पुनः उसे बाहर फेंकती है!

दंतक तिमियों के समूह के एक प्राणी को वैज्ञानिकों ने 'शिकारी तिमि' या 'किलर ह्वेल' का नाम दे रक्खा है। यह विकराल जीव, जिसे 'महासागर का भेड़िया' कहकर पुकारा जाता है, आकार में तो तीस फ़ीट से अधिक नहीं होता, परन्तु सौ फ़ीट लंबी बड़ी से बड़ी तिमियों तक के लिए भी वह मानों साक्षात् कालरूप है! इसका कारण यह है कि इसके प्रत्येक जबड़े में एक-एक दर्जन बड़े ही प्रचंड और चीर-फाड़ के लिए उपयुक्त कराल दाँत होते हैं। ये क्रूर प्राणी भेड़ियों की तरह टोली बाँधकर शिकार करने के आदी होते हैं और अनुशासनबद्ध सैनिकों की तरह पंक्तिबद्ध होकर जब इनका समूह तैरता हुआ आगे बढ़ता है तो जहाँ भी उनकी टोली जा पहुँचती है, वहीं हाहाकार मच जाता है! ये खूँख्वार जानवर छोटी सीलों और सूँस आदि जलजंतुओं को तो समूचे ही हड़पकर निगल जाते हैं और बड़े डीलडौल की तिमियों पर भी जंगली कुत्तों या भेड़ियों की भाँति टूटकर ये नोंच-नोंचकर उनके चिथड़े कर डालते हैं!

दाँतवाली तिमियों ही की बिरादरी के एक नज़दीक के रिश्तेदार गंगा जैसी नदियों और समुद्रों में पाये जानेवाले सूँस या डालफ़ीन नामक वे मशहूर जलजीव हैं, जो पाँच-छः फ़ीट से लेकर आठ-दस फ़ीट तक के डीलडौल के पाये जाते हैं। इसी वर्ग का एक अनोखा प्राणी 'नरवल' कहलाता है, जिसकी विशेषता है उसकी थूथन पर एक अनोखे भालेनुमा तीखे लंबे सींग या दाँत का पाया जाना। यह सींग वस्तुतः लहरदार ढंग से लिपटे हुए दो कराल दंष्ट्रों द्वारा रचित होता है। इसकी लंबाई कभी-कभी छः से आठ फ़ीट तक पहुँचते पाई गई है! किसलिए प्रकृति ने इसे यह शस्त्र प्रदान किया है, समझ में नहीं आता!

थलचरों का सरदार—हाथी

सिंह की तरह हाथी का भी परिचय देने की भारतवासियों के लिए कदापि आवश्यकता नहीं है, चूँकि अपने इतिहास के आरंभकाल ही से इस बृहदाकार पशु के साथ हमारी गहरी जान-पहचान रही है। अपनी गहन-गंभीर उदार वृत्ति और विवेकपूर्ण सहजबुद्धि के कारण यह प्राणी एक प्रकार से इस देश के मूलभूत उच्च आदर्श एवं राष्ट्रीय गुण-धर्म का प्रतीक-सा बन गया है और उसी की मुखाकृति के अनुसार अपने एक प्रधान देवता—'गणेश'—की कल्पना की जाने के कारण तो हमारी धार्मिक संस्कृति के आँगन में भी वह एक ऊँची प्रतिष्ठा का स्थान पा चुका है। परन्तु दुनिया के अन्य अनेक देशों के लिए तो—जहाँ कि वह नहीं पाया जाता—यह जीवधारी अपने मनों वज़न के भारी शरीर, सूँड़रूपी अद्भुत अनोखी लंबी नासिका, श्वेतवर्णीय विशालाकृति दंत, एवं सहज ही पालतू बन जाने की प्रवृत्ति के कारण निस्संदेह एक महान् कुतूहल और आश्चर्य की वस्तु है! संभवतः, इसीलिए पिछले दिनों हमारे लोकप्रिय जननायक पं० जवाहरलाल नेहरू द्वारा जिन-जिन देशों को भेंटस्वरूप यह पशु भारत की ओर से भेजा गया, वहाँ के लोग मानों आल्हाद और कृतज्ञता से गद्गद-से हो उठे, और कई जगह तो इसके स्वागत में राष्ट्रीय उत्सव तक मनाये गये!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

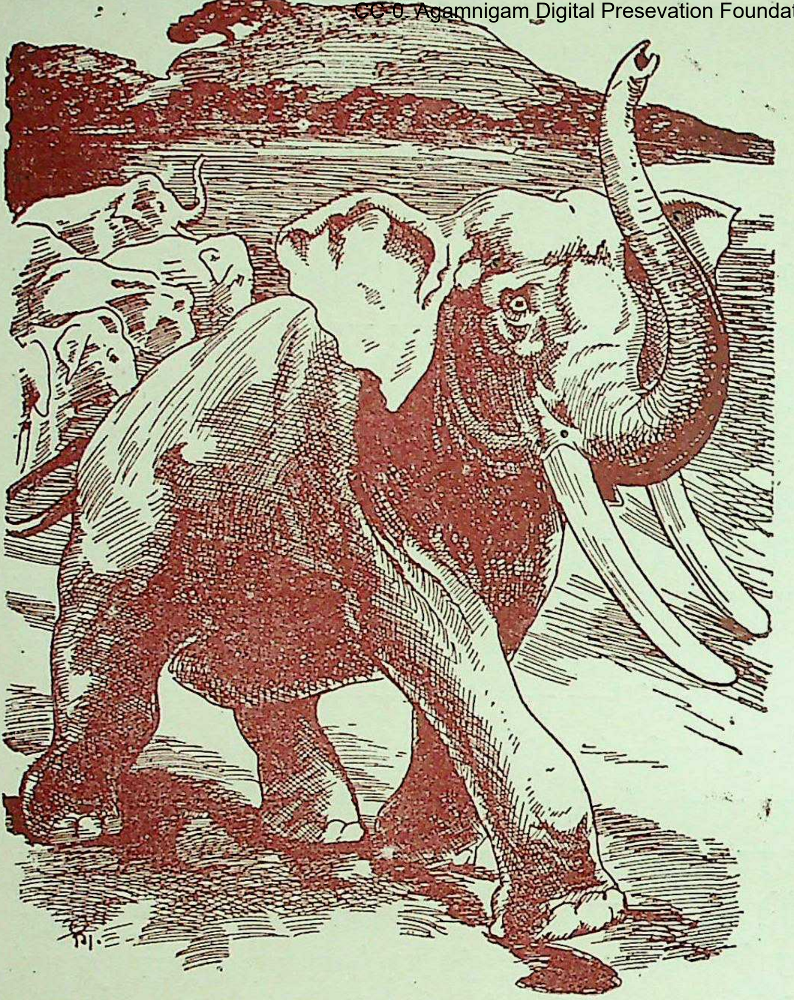

भारतीय गजराज

इसमें संदेह नहीं कि हाथी प्रकृति की एक अद्भुत अनोखी कृति है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता और महत्ता तो इस बात में है कि वही आज के दिन समस्त थलचर जीवों का सरदार कहा जा सकता है, क्योंकि डीलडौल और वज़न के लिहाज़ से धरती पर विचरनेवाले वर्त्तमान पशुओं में कोई उसका मुक़ाबला नहीं कर पाता। शायद तुम्हें मालूम हो कि हाथी की दो जातियाँ इस समय दुनिया में मिलती हैं—एक तो हमारे देश में पाई जाने-वाली और दूसरी अफ्रीका की। इन दोनों जातियों में परस्पर काफ़ी अंतर है। उनके कुछ मार्के के भेद ये हैं। जहाँ भारतीय गजराज कंधे की ओर ऊँचाई में अधिक से अधिक १० फ़ीट होता है, वहाँ उसके अफ्रीकी बंधु का क़द ११॥ फ़ीट तक पहुँचते पाया जाता है! इसी प्रकार भारतीय हाथी के कान जहाँ ज़्यादा से ज़्यादा ५ फ़ीट चौड़े होते हैं, वहाँ अफ्रीकी गजराज के उससे कहीं बड़े अर्थात् ६ फ़ीट तक की चौड़ाई के पाये जाते हैं! इसके अलावा अफ्रीकी हाथी की पीठ ढोरों की तरह बैठी हुई या सपाट और भारतीय हाथी की ऊपर उठी हुई या कूबदार होती है। साथ ही अफ्रीकी हाथी के बाहरी दाँत, नर-मादा दोनों ही में, ११॥ फ़ीट तक लंबे एवं लगभग २३० पौंड वज़न के, तथा भारतीय हाथी में इससे बहुत छोटे आकार के, कम वज़नी एवं मादा में बिल्कुल ग़ायब या नाममात्र के ही पाये जाते हैं। यही नहीं, इनकी सूँड़ भी एक-दूसरे से काफ़ी अंतर रखती है। वह भारतीय हाथी में समानरूप और चिकनी सतह की-सी होती है, एवं एक ही 'उँगली' (अथवा पकड़ने के उपकरण) से युक्त होती है, और अफ्रीकी गजराज में उसकी सतह पर छल्लेनुमा शिकनों की एक शृंखला-सी उभरी रहती है तथा एक के बजाय दो 'उँगलियाँ' सिरे पर बनी रहती हैं।

परन्तु अपने इन तुच्छ भेदों या असमानताओं के बावजूद, हाथी की ये दोनों वर्त्तमान जातियाँ एक ही मूल वंश की दो शाखाओं-सी हैं और उनके पुरखे, संभवतः, एक ही रहे होंगे, ऐसा अनुमान किया जाता है। इस संबंध में पिछले एक प्रकरण में बीते युगों के प्राणियों के विवरण के सिलसिले में हाथी के दो प्रसिद्ध सूँड़-धारी पूर्वज 'मैमथ' और 'मेस्टाडॉन' का ज़िक्र हम कर चुके हैं। ये विशाल दंतयुक्त गजराज आज से लाख-पचास हज़ार वर्ष पूर्व इस पृथ्वी पर विद्यमान थे, जबकि शायद मनुष्य भी अतीत के धूमिल कुहासे में से बाहर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निकलकर इस धरती पर पहलेपहल अपने पैर जमाने लगा था। इनमें मैमथ शायद तेरह-साढ़े तेरह फ़ीट ऊँचा एक महाकाय गजराज था, जिसके आठ-दस फ़ीट लंबे युगल दंत आगे की ओर सींग की तरह ऊपर मुड़े हुए थे। इस भीमकाय प्राणी के बदन पर चँवरी गाय या याक की तरह ललौंह वर्ण के लंबे बाल उगे हुए थे और उसकी पूँछ भी झबरी बालदार थी। शक्ल-सूरत में ये गजराज हमारे आज के भारतीय हाथी से बहुत-कुछ मिलते-जुलते थे, पर कई काफ़ी छोटे आकार के भी थे। हाथी के इन पूर्वजों की न केवल प्रस्तरीभूत ठठरियाँ ही बल्कि मांस-मज्जा एवं खाल सहित पूरे के पूरे शव साइबेरिया की चिरंतन हिमराशि में सुरक्षित दबे हुए मिले हैं, यहाँ तक कि पचास हज़ार वर्ष पहले के उनके मांस-मज्जा की कुत्तों, भेड़ियों तथा भालुओं ने दावतें तक उड़ाई हैं! इन गजराजों के दाँतों के कोई बीस हज़ार जोड़े गत दो शताब्दियों में बाज़ारों में बिकने के लिए आ चुके हैं! इससे यह अनुमान किया जाता है कि पूर्वकाल में शायद आदमी ही के हाथों इनका खात्मा हुआ था, जिस तरह कि आज भी बहुतेरे जानवरों को स्वार्थवश वह खत्म कर देने पर तुला बैठा है!

'मेस्टाडॉन' मैमथ की अपेक्षा आकार में छोटा होता था। बल्कि वह हमारे आज के गजराजों से भी लघुतर डीलडौल का एक प्राणी था। उसके पैर कम ऊँचे, बदन अधिक भारी और सिर लँबोतरा, उभरा हुआ एवं ढालू-सा, तथा दंत ऊपरी जबड़े के बजाय प्रायः ऊपर-नीचे दोनों ही जबड़ों में पाये जाते थे। इसकी सबसे अच्छी ठठरियाँ उत्तरी अमेरिका में मिली हैं।

यहाँ हम तुम्हें यह बता दें कि 'हाथी के दाँत दिखाने के और, खाने के और' इस कहावत के अनुसार इस महाकाय प्राणी के जो कराल तीखे दाँत बाहर निकले हुए दिखाई पड़ते हैं, वे उसे भोजन में कोई मदद नहीं देते, सिवाय इसके कि उनसे वह वृक्षों की डालियाँ आदि तोड़ने में मदद ले लेता है। वस्तुतः वे हैं उसके आक्रमण और रक्षा के शस्त्र मात्र। वे उसके ऊपरी जबड़े के कर्त्तनक दंतों के परिवर्द्धित रूप जैसे हैं। वैसे, हाथी के चबानेवाले दाँत भी होते हैं, जो मुँह के भीतर छिपे रहते हैं। वे काफ़ी मज़बूत और अन्य जीवों के दाँत-दाढ़ों से बड़े होते हैं। परन्तु इस प्राणी का जो सबसे अनोखा और उपयोगी अंग होता है, वह है दरअसल उसकी लंबी सूँड़, जोकि उसकी थूथन या नासिका तथा ऊपरी ओष्ठ का एक लंबीकृत सम्मिलित रूप मात्र है! अपने इस अद्‌भुत अंग ही की बदौलत हाथी अन्य सब जीवधारियों से एक पृथक् वर्ग में रक्खा गया है। इस लंबी नासिका के रंध्र या नथुने उसके ठेठ सिरे पर जाकर खुलते हैं। वहीं उसमें एक ऐसा क्रियाशील उपकरण होता है, जिसे लौकिक भाषा में उसकी 'उँगली' कहा जाता है। इस उपकरण की सहायता से हाथी छोटी से छोटी

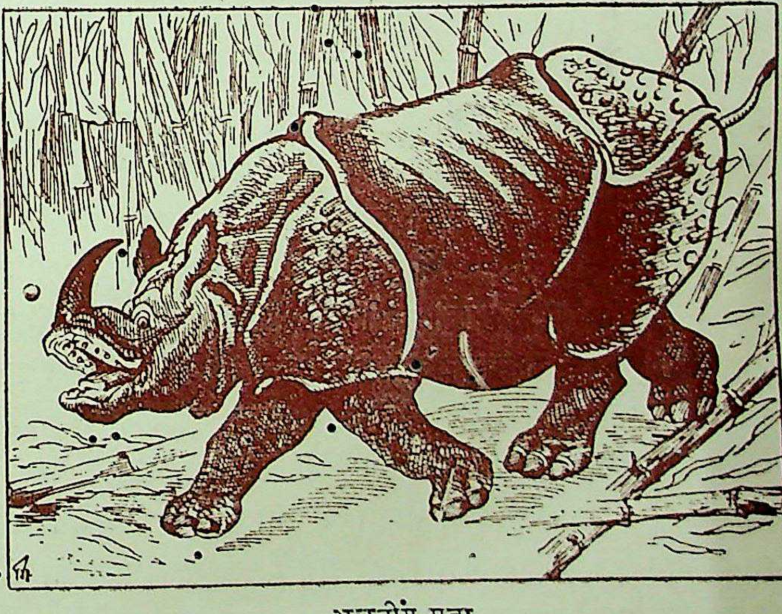

भारतीय गडा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वस्तुएँ, यहाँ तक कि एक पैसा तक, धरती पर से उठा लेता है ! दूसरे शब्दों में, इस 'उँगली' की बदौलत हाथी की सूँड़ उसके एक प्रकार के हाथ का काम देती है। यह सूँड़रूपी 'हाथ' इस प्राणी का निश्चय ही सबसे अधिक क्रियाशील, सशक्त और उपयोगी अंग है। वह उससे न केवल घास-पात का कौर उठाकर मुँह में रखने में ही मदद लिया करता, बल्कि उसी की सहायता से वह पानी भी पीता, बड़ी-बड़ी डालियों को अपनी अजगर की-सी लपेट में लेकर उखाड़ देता या तोड़ देता, और मनों वज़न के लट्ठों को क्रेन-यंत्र की तरह एक से दूसरी जगह पर फूल की भाँति उठाकर रख देता है ! पानी पीते समय हाथी सूँड़ से बड़ी दक्षता से काम लेता है। वह बहुत-सा जल सुड़ककर सूँड़ की पोली नली में भर लेता है और तब उसे नल की तरह मोड़कर तथा ऊपर उठाकर सारी जलराशि मुँह में उँडेल लेता है। प्रायः नदियों में नहाते समय ये प्राणी सूँड में पानी भर-भरकर अपने बदन पर छोड़ते देखे जाते हैं। ये धूल और पत्तियाँ आदि भी उससे उठाकर अपने डील पर छोड़ने या उड़ाने के बड़े शौक़ीन होते हैं और जब पालतू बन जाते हैं तो उसे ऊँची उठाकर लोगों को सलाम करते तथा उसी के द्वारा महावत को उठाकर अपने बदन पर बिठाते हुए भी देखे जा सकते हैं।

यद्यपि हाथी एक ज़माने से बहुत अधिक संख्या में पाला जाता रहा है, फिर भी अभी पर्याप्त संख्या में जंगली दशा में वह पृथ्वीतल पर विद्यमान है। भारतीय जाति का हाथी हमारे अपने देश के अतिरिक्त लंका, बर्मा, मलयप्रदेश, स्याम, कोचीन चीन, सुमात्रा और बोर्नियो में भी मिलता है। स्वयं भारत में यह उत्तर में हिमालय की तराईवाले इलाक़ों तथा दक्षिण में मैसूर के जंगलों में पाया जाता है। वहीं से पकड़कर यह पालतू बनाया जाता है। इसकी पकड़ने की क्रिया भी बड़ी ही कठिन और खतरनाक होती है। इसके लिए जंगल में एक बड़ा-सा विरौंदा या हाता, पेड़ों के तनों के साथ मोटी शहतीरों या बल्लियों को बाँधकर, तैयार किया जाता है। देशी बोली में इस विरौंदे को 'खेड़ा' कहा जाता है। तदनंतर पालतू हाथियों पर सवार होकर कई होशियार आदमी जंगली हाथियों के झुंड को एक ओर को घेरते और भगाते हैं तथा तरकीब से घेर-घारकर उनके उस झुंड को वे इस हाते में ले आते हैं। जब सब हाथी खेड़े के भीतर आ जाते हैं तो उसका द्वार बंद कर दिया जाता है। इसके बाद कई दिनों तक इन हाथियों को हाते के भीतर ही रस्सियों या ज़ंजीरों से बाँधने तथा एक-एक कर उन्हें सिखा-सिखाकर आज्ञाकारी एवं पालतू बनाने का दुष्कर कार्य जारी रहता है। इस कार्य में भी पालतू हाथियों से काफ़ी मदद ली जाती है। वस्तुतः जंगली हाथी को पालतू बनाना एक दुस्साहसपूर्ण कार्य है। इसमें हाथी को काफ़ी मारने-पीटने की भी ज़रूरत पड़ा करती है। यह एक मशहूर बात है कि हाथी की स्मृति बहुत तेज़ होती है। प्रायः ऐसा होता है कि वह जिससे सताया जाकर कभी चिढ़ गया होता है, उससे बरसों बाद भी बदला निकालने से नहीं चूकता। परंतु धैर्यपूर्वक मेहनत करके आखिर लोग जंगली से जंगली हाथी को भी अपना आज्ञानुवर्ती बना लेते हैं। पालतू बन जाने पर हाथी अपने रखवाले या पालक को, जिसे 'महावत' कहते हैं, अपने ऊपर बिठाकर उसकी बोली तथा अंकुश के इशारे मात्र से उठता-बैठता, बाएँ-दाहिने मुड़ता, एवं भाँति-भाँति के काम करने लगता है।

यद्यपि पालतू दशा में हाथी अकेले भी रहते देखा जाता है, तथापि वास्तव में वह झुंडों में रहनेवाला एक प्राणी है। उसके ये झुंड, जंगली अवस्था में, आसपास की बस्तियों के लिए एक भयावना खतरा पैदा कर देते हैं। वे जिन खेतों पर टूट पड़ते हैं, उसका सफाया कर देते हैं। बिगड़ खड़े होने पर हाथी बड़े-बड़े वृक्षों को जड़ से उखाड़ फेंकते हैं और दौड़कर शत्रु का पीछा करके अपने कराल दाँतों से उसे उछाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऊँचाई के लिहाज़ से वर्त्तमान जीवधारियों का मुखिया -- जिराफ़

पैर से सिर तक लगभग बीस फ़ुट की ऊँचाई पानेवाला यह लँबटंगू पशु अपनी असाधारणतया लंबी गरदन की बदौलत वृक्षों की ऊँची-ऊँची डालियों की भी पत्तियाँ आसानी से नोंच लेता है। परंतु ज़मीन पर की घास चरते समय या पानी पीते समय उसे काफ़ी टेढ़ा-तिरछा होना पड़ता है, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देते अथवा पैरों के नीचे रौंदकर उसकी चटनी बना देते हैं ! हाथी की निगाह और श्रवण-शक्ति तो अपेक्षाकृत उतनी तीव्र नहीं होती, परन्तु उसकी घ्राण-शक्ति निस्संदेह बेहद बढ़ी-चढ़ी और तेज़ होती है ! इसका एक सबूत यह है कि केवल हवा को सूँघकर वह मीलों दूर से मनुष्य की मौजूदगी का पता पा लेता है ! हाथी की बोली भी निराले ही ढंग की होती है। वह तुरही की आवाज़ की-सी तीखी और कर्कश होती है, जिसे उसकी 'चिंघाड़' कहते हैं। इस जानवर का रंग साधारण तौर पर तो साँवला या काली मिट्टी का-सा गहरा सलेटी ही होता है, परन्तु विशेष परिस्थितियों में सफ़ेद रंग के हाथी भी कभी-कभी पैदा हो जाते हैं, जिनकी स्याम और ब्रह्मदेश में बड़ी क़द्र है। ये वहाँ पूजे जाते रहे हैं। ये कोई अलग जाति के हाथी नहीं होते—केवल 'सूरजमुखी' मनुष्यों की-सी उनकी एक अनैसर्गिक उपज मात्र वे हैं। कभी-कभी ऐसे हाथी भी मिल जाते हैं, जिनके दो से अधिक बाहरी बड़े दाँत पाये जाते हैं। अभी हाल में अफ्रीका में एक गजराज मारा गया था, जिसके नौ बाहरी दाँत थे ! ये दाँत वस्तुतः उनके मुख की कोई अलग उपज न होकर कभी-कभी मुख्य कर्त्तनकों के विविध शाखाओं में फूट निकलने से ही इस तरह संख्या में बढ़ जाते हैं।

हाथी की आँखें तो उसके विशाल आकार को देखते हुए बहुत छोटी होती हैं, परन्तु उसके कान चौड़े पंखों जैसे बहुत बड़े होते हैं। उन्हें वह मक्खी आदि उड़ाने के लिए प्रायः हिलाया ही करता है। इस पशु की खाल, जोकि काफ़ी मोटी होती है, निर्लोम-सी होती है और पैर वृक्ष के तनों जैसे मोटे तथा एक तरह के दबे हुए नाखुनों या सुमों से युक्त होते हैं। एक बार में हाथी केवल एक ही बच्चा देता है। इस स्तनपोषी पशु की आयु सौ से डेढ़ सौ वर्ष तक की होती है, यह पिछले एक प्रकरण में हम बता चुके हैं। आहार भी इसका कोई कम नहीं होता ! कहते हैं, यह विशुद्ध शाकाहारी प्रतिदिन लगभग बीस मन घास-पात और एकाध मन अनाज खा लेता है। यह गन्ना बेहद पसंद करता है। प्रायः हिमालय की तराई के हाथियों के झुंड पास-पड़ोस के गन्ने के खेतों पर धावा बोलकर उन्हें चौपट करते रहते हैं।

इतने भारी-भरकम शरीरवाले होकर भी हाथी कुशल तैराक होते हैं। वे नहाने के बेहद शौक़ीन होते हैं। हाथी की चाल से तो हम सब सुपरिचित हैं ही। वह काफ़ी धीरे किन्तु जमकर पैर टिकाकर चलनेवाला प्राणी है। उसकी इस झूमती हुई-सी चाल से जहाँ एक प्रकार की बेफ़िक्री, मस्ती और मदमातेपन का भाव टपकता है, वहाँ वह है शान्ति, धैर्य, अडिग निश्चय और समझदारी की भी प्रतीक-सी। जब हाथी दौड़ता है तो अन्य पशुओं की तरह वह सरपट नहीं भागता, बल्कि लंबी-लंबी डगें या फलाँगें भरता है। अपनी अमित शक्ति के कारण ही पुराने ज़माने में हाथी बहुतायत से युद्ध में भी काम में लाया जाता था। सिर से धक्का मार-मारकर क़िलों के दरवाज़ों को तोड़ने में प्रायः उससे मदद ली जाती थी। आज भी बर्मा, आसाम और लंका आदि प्रदेशों में सवारी के काम के अलावा हाथी से जंगल साफ़ करने और बड़े-बड़े लट्ठे ढोने का काम लिया जाता है। पिछले दिनों बड़े-बड़े हलों में ट्रैक्टर के बजाय हाथियों को जोतकर खेती करने के प्रयोग भी शुरू हुए हैं। शेर आदि का शिकार करने में तो पुराने ज़माने ही से हाथी काम में लाया जाता रहा है। इसके लिए उसकी पीठ पर एक प्रकार की बैठक कस दी जाती है, जिसे 'हौदा' कहते हैं। उसी में बैठकर शिकारी शेर पर निशाना मारते हैं। भारतवर्ष में हाथियों को तरह-तरह के गहनों और झूल आदि से सजाकर तथा चित्रित करके विवाह आदि के समय जुलूसों में निकालने का भी पुराने ज़माने से बड़ा ही रिवाज रहा है। वस्तुतः हाथी हमारे यहाँ राजसी वैभव का सर्वोपरि प्रतीक-सा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अद्भुत कवचधारी पशु—गैंडा

हाथी के बाद, डीलडौल के लिहाज़ से, वर्त्तमान थलचर पशुओं में दूसरा स्थान गैंडे को प्राप्त है, जो अपनी कवचरूपी दुर्भेद्य शिकनदार खाल और नासिका के अग्रभाग पर की तीखी सींगनुमा रचना के कारण प्रकृति की महान् जंतुशाला का अपने ढंग का एकमात्र आकर्षक नमूना बना हुआ है। इस वृहत्काय पशु को देखते ही सबसे पहले जो प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है, वह यह है कि वह हमें आज के युग का-सा प्राणी नहीं प्रतीत होता, बल्कि किसी बीते हुए युग के अनोखे भौंडे जीवों का एक बचा हुआ नमूना-सा वह जान पड़ता है! हाथी की तरह यह प्राणी भी आज के दिन केवल अफ्रीका और एशिया में ही पाया जाता है। उसका एक पुरखा—जिसे 'ऊनी गैंडा' के नाम से पुकारा जाता है—कभी नई दुनिया के इलाक़ों में भी मिलता था। परन्तु वह कभी का विलुप्त हो चुका।

वर्त्तमान गैंडे की पाँच जातियाँ इस समय विद्यमान हैं। इनमें से दो अफ्रीकी हैं और तीन एशियाई। एशियाई जातियों में सबसे विशाल आकार का गैंडा भारतवर्ष का होता है। यह नेपाल और आसाम के वन्य क्षेत्रों ही में मिलता है और निरंतर मारा जाने के कारण अब बहुत कम संख्या में शेष रह गया है। इसकी ऊँचाई लगभग ५ फ़ीट ८ इंच तक की पाई गई है और लंबाई दुम से नाक तक बारह-तेरह फ़ीट तक की होती है। इसकी नासिका पर केवल एक ही शृंगनुमा रचना होती है, जो एक से दो फ़ीट तक लंबी पाई गई है। वज़न में यह तीन-साढ़े तीन टन का (अर्थात् लगभग सौ मन का) होता है। हाथी की तरह यह भी मिट्टी के-से रंग का सलेटी वर्ण का एक पशु होता है, जिसकी मुख्य विशेषता उसकी बेहद मोटी, कड़ी और शिकनों द्वारा अनेक विभागों में बँटी हुई कवचनुमा खाल होती है। उसका यह खाल का आवरण ऐसा जान पड़ता है, मानों अपने बदन पर उसने उसे ज़िरह-बख़्तर की तरह ऊपर से पहन रक्खा हो। यह खाल उसके बदन की चमड़ी होकर भी इतनी कड़ी, चीमड़ और दुर्भेद्य होती है कि न तो किसी जानवर के पंजे या दाँत का ही कोई बस वहाँ चल सकता है, न तलवार आदि शस्त्रों का ही। इसकी इसी ख़ूबी के कारण पुराने ज़माने में गैंडे की खाल से ढाल बनवाने का काफ़ी प्रचलन था। इसकी यह खाल गरदन, कंधे, पृष्ठभाग और पिछली टाँगों की जाँघों के इलाक़े में तीन-चार मोटी और गहरी शिकनों द्वारा पर्त्तदार-सी बनी होती है, जिससे कि उसके अलग-अलग हिस्से-से बन गये जान पड़ते हैं। उसके आसपास का पुट्ठों आदि का अंश एक प्रकार की गोल-गोल घुंडीनुमा गाँठों से भी खचित होता है। ये छोटी-छोटी गाँठें उसके घुटनों तक उतरी हुई पाई जाती हैं।

यहाँ हम तुम्हें यह बता दें कि अपनी थूथन पर हाथ भर लंबा वह तीखा सींग-सा उगाये रहने पर भी गैंडा सींगदार प्राणी नहीं है, कारण उसकी नासिका पर की यह सींगनुमा रचना अस्थि या सींग के-से पदार्थ द्वारा बनी हुई नहीं होती। वह तो उसकी थूथन की खाल में से विकसित केवल कतिपय कड़े बालों जैसे तंतुओं के आपस में चिपककर एक हो जाने के फलस्वरूप सींग का-सा यह रूप ग्रहण कर लेती है। किन्तु गैंडे का यह अनूठा शस्त्र चाहे असली सींग हो या न हो, इसमें ज़रा भी शक नहीं कि वह उसका एक भयावना और शक्तिशाली हथियार होता है। आक्रमण के समय यह उसी से चोट करता है। चीनवासी इस सींगनुमा रचना को औषध-निर्माण के काम में लाते हैं। इसी कारण, पिछले ज़माने में बहुत अधिक संख्या में इन प्राणियों का शिकार किया जाता रहा है। गैंडा वैसे तो मनुष्य या अन्य किसी भी जीवधारी पर हमला नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करता, परन्तु स्वयं उस पर यदि कोई आक्रमण करे तो वह विकराल हो उठता है । उस समय उसकी भयावनी टक्कर के सामने बड़ा से बड़ा जानवर भी नहीं टिक सकता। यह शुद्ध शाकाहारी प्राणी केवल घास-पात और जड़ों को खाकर ही अपना भरण-पोषण करता है। वह कीचड़ में लेटकर अपने सारे बदन को उससे लथपथ कर लेने तथा इधर-उधर लोटकर अपनी खाल को रगड़ते रहने का बड़ा शौक़ीन होता है। इसका कारण यह है कि इसकी खाल की शिकन के भीतर मुलायम हिस्सों में घुसकर कई कीड़े वहाँ अपनी बस्तियाँ बसा लेते हैं और वे इसे काट-काटकर बेचैन किये रहते हैं। गैंडे की दृष्टि तो कमज़ोर होती है, परन्तु सुनने और सूँघने की शक्ति तीव्र होती है। उसके कान सिर के ऊपर खड़े देख पड़ते हैं। दौड़ते या चलते समय गैंडा अपना सिर एकदम नीचा किये रहता है, मानों ज़मीन को छू रहा हो। ये पशु भड़क उठने पर बड़े वेगपूर्वक दौड़ते हैं और यदि घोड़े पर बैठकर उनका पीछा किया जाय तब तो एकबारगी ही ऐसी सरपट दौड़ लगाते हैं कि देखकर अचरज होता है कि इतने भारी शरीर के बावजूद वे ऐसे भाग सकते हैं !

भारतीय गैंडे के अतिरिक्त एशिया में इस प्राणी की दो और जातियाँ क्रमशः जावा और सुमात्रा में मिलती हैं। ये प्राणी कभी सारे दक्षिणी-पूर्वी एशियाई क्षेत्र में विस्तृत थे। ये डीलडौल में भारतीय गैंडे से बहुत छोटे होते हैं। इनमें जावावाले गैंडे में केवल नर ही के थूथन पर सींगनुमा रचना होती है एवं सुमात्रा-वाले में एक के बजाय दो 'सींग' पाये जाते हैं। इनकी खाल भी भारतीय गैंडे से अलग प्रकार की होती है। जावावाले गैंडे की खाल पर एक प्रकार की रेखाकृतियाँ सी होती हैं और सुमात्रावाले की खाल पर रोएँ होते हैं। इन एशियाई जातियों से बिल्कुल निराली अफ्रीकी गैंडे की वे दो प्रमुख बिरादरियाँ हैं, जिनमें से एक तो लौकिक बोली में 'श्वेत' या गौरवर्णीय और दूसरी 'कृष्णकाय' या काली कहलाती है। अफ्रीका का तथाकथित श्वेतवर्णीय गैंडा काफ़ी बड़े डीलडौल का पशु होता है। उसका क़द ५ फ़ीट ८ इंच और लंबाई १५ फ़ीट तक पहुँची हुई होती है। इन अफ्रीकी गैंडों में खाल भारतीय गैंडे की तरह अलग-अलग शिकनों में विभक्त-सी नहीं होती। दूसरे उनके थूथन पर एक के बजाय दो सींगनुमा रचनाएँ होती हैं। इनमें अगले 'सींग' का आकार ६२ इंच (अर्थात् सवा पाँच फ़ीट) तक का भी पाया गया है ! इनके अगले दाँत बिल्कुल नहीं होते। अपने भारतीय बंधु की तरह ये अफ्रीकी गैंडे भी अब बहुत कम संख्या में रह गये हैं, कारण उनका बेतरह शिकार हुआ है।

ऊँचाई में सभी वर्त्तमान पशुओं का नेता—'जिराफ़'

यदि भारी-भरकम डीलडौल के लिहाज़ से वर्त्तमान जंतु-संसार के नेता का स्थान क्रमशः 'तिमि', 'हाथी' और 'गैंडा' जैसे पशुओं को प्राप्त है तो क़द या ऊँचाई में सबका अग्रणी होने का गौरव 'जिराफ़' नामक जानवर को है, जोकि कुदरत की एक अजीब-सी करतूत है ! यही वह अनोखा प्राणी है, जिसे विलायत की किसी जंतुशाला में पहलेपहल देखकर एक महिला ऐसी चौंक उठी थी कि उसके मुँह से यह वाक्य निकल पड़ा था—'क्या यह असली जानवर है ? नहीं, मुझे यक़ीन नहीं होता !' उस बेचारी को यह भ्रम हो गया था कि यह शायद मनोविनोद के लिए प्रदर्शित किया गया कोई नक़ली खिलौना मात्र था ! और सचमुच ही यह पशु देखने में इतना बेतुका और नक़ली-सा जान पड़ता है कि उस पर विश्वास करना कठिन हो जाता है। भला, आठ-नौ फ़ीट ऊँची टाँगों और उतनी ही ऊँची गरदनवाले इस चितकबरे लँबटंगू की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यदि किसी जानवर से हम उपमा देना चाहें तो कौन-सा पशु वह हो सकता है ? वस्तुतः इस अनोखे जीवधारी की सृष्टि प्रकृति ने मानों ऊँट, मृग और गौ, तीनों ही का कुछ-कुछ सम्मिश्रण करके की है ! इसकी ऊँचाई अठारह से बीस फ़ीट तक पहुँचते पाई गई है, जो इतनी अधिक होती है कि यदि हमारे एक भारतीय हाथी को दूसरे वैसे ही हाथी पर खड़ा कर दिया जाय तब भी शायद उसकी बराबरी न हो पायगी ! जंतु-जगत् के अनेक विचित्र पशुओं की तरह जिराफ़ भी केवल अफ्रीका ही में पाया जाता है। वह झुंडों ही में रहने का अभ्यस्त है। उसका रंग पीतवर्णीय भूरा-सा होता है, जिस पर बादामी-नारंगी रंग की वैसी ही सुंदर चित्तियाँ पड़ी रहती हैं जैसी कि किसी-किसी जाति के अजगर के बदन पर पाई जाती हैं। इसकी अगली टाँगें पिछली से अधिक लंबी होती हैं, जिसके फलस्वरूप यह जब अपनी गरदन ऊँची करता है तो इसकी पीठ धरती के समानान्तर न रहकर गरदन की ऊपरी कोर के साथ-साथ मिलती हुई नीचे की ओर लगातार ढालू होती हुई-सी देख पड़ती है ! इस पशु की एक विशेषता यह है कि इसके मस्तक पर दो छोटे-छोटे सींग होते हैं, जो खाल से मढ़े होते हैं। उन पर बालों के छोटे गुच्छे सुशोभित रहते हैं। कई के और भी एक-दो छोटे सींग होते हैं ! इनके पैरों में ढोरों के-से खुर होते हैं और पीठ पर एक छोटी-सी अयाल पाई जाती है। इस प्राणी की जीभ विचित्र प्रकार की होती है। वह लगभग हाथ भर बाहर निकाली जा सकती है। यह सारी योजना कुदरत ने इस जंतु में इसलिए की है चूँकि यह ऐसे मरुस्थलीय प्रदेश का वासी है, जहाँ बबूल जसे पेड़ों की पत्तियों ही पर इसे अपना गुजारा करना पड़ता है। कहते हैं, ज़माने से ऊँची से ऊँची डालियों की पत्तियाँ खाने का प्रयत्न करते-करते ही वह अधिकाधिक लंबी गरदन और लंबी टाँगोंवाला होता चला गया ! यह शाकाहारी पशु एक निरापद जीव है ! उसकी सबसे बड़ी खूबी तो यह है कि वह कभी भी कोई आवाज़ नहीं करता ! उसकी बड़ी-बड़ी भूरी आँखें बड़ी कमनीय जान पड़ती हैं। वह बड़ी तेज़ी से दौड़ सकता है और जब उसे पानी पीना हुआ या धरती पर की कोई चीज़ खानी हुई तो विचित्र ढंग से अपनी टाँगें फैलाकर वह ऐसा करता है, तब कहीं ज़मीन तक अपना मुँह ले जा पाता है।

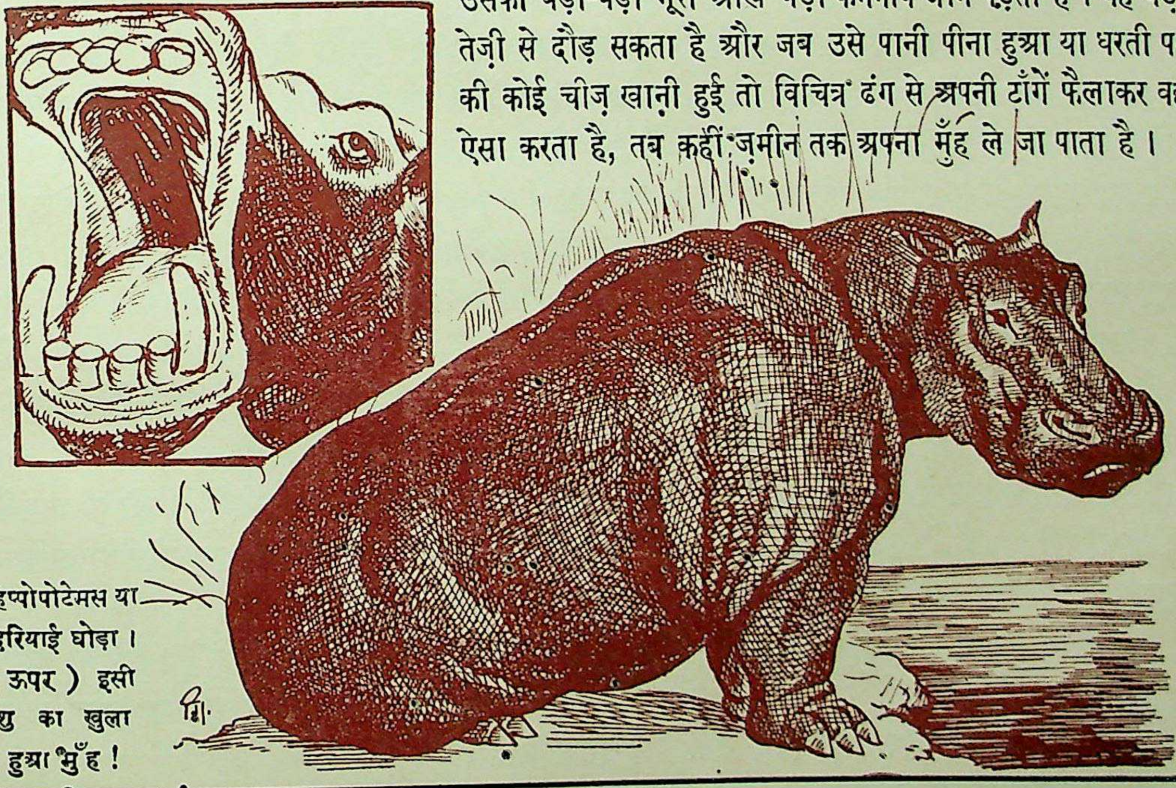

हिप्पोपोटेमस या 'दरियाई घोड़ा। (ऊपर) इसी पशु का खुला हुआ मुँह !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिप्पोपोटेमस या दरियाई घोड़ा

भीमकाय पशुओं का यह प्रकरण स्तनपोषी समुदाय के उस भारी-भरकम शरीरधारी 'हिप्पोपोटेमस' या दरियाई घोड़े के उल्लेख के बिना पूरा नहीं हो सकता, जो कि अपने घोड़े के-से मुँह के कारण यद्यपि पुराने ज़माने ही से उपर्युक्त अनोखे नाम से पुकारा जाता रहा है, परन्तु वास्तव में जिसका अश्व-जाति से कोई दूर का भी रिश्ता कभी नहीं रहा है। वह तो घोड़े के बदले दरअसल सुअरों की बृहत् बिरादरी का एक प्राणी है ! दरियाई यह इसलिए कहलाता है कि थलचर होकर भी इसने जलाशयों ही को अपना आवासस्थान बना रक्खा है। यह नदियों में ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करता है। लगभग बारह-तेरह फ़ीट लंबा, साढ़े चार फ़ीट ऊँचा और चार टन (लगभग ११० मन) वज़नी यह तगड़ा पशु केवल अफ्रीका ही में पाया जाता है। उसके पैर तो इतने छोटे होते हैं कि उसका शेष बदन मानों ज़मीन को छूता हुआ-सा जान पड़ता है, परन्तु सिर इतना बड़ा और बृहदाकार जबड़ोंवाला होता है कि वह लंबे ढोल जैसे उसके धड़ का ही मानों एक आगे निकला हुआ अंश-सा प्रतीत होता है। उसका यह मस्तक बाजू से देखने में चाहे दर्शक के मन में घोड़े के चेहरे का भ्रम पैदा कर दे, परन्तु सामने से तो वह ऐसा भौंडा, चपटा-सा एवं बेहद चौड़े और सपाट थूथनवाला होता है कि उसकी उपमा जंतु-जगत् के अन्य किसी भी जानवर से नहीं दी जा सकती। इस लंबे-चौड़े चेहरे में आँखों के ऊपर की अस्थि-फलक यद्यपि कुछ उभरी हुई-सी रहती है, तथापि स्वयं नेत्र इतने छोटे होते हैं कि वे बड़े ही बेतुके जान पड़ते हैं। इस पर इस महाकाय प्राणी के कान तो नाममात्र के-से ऐसे लघु होते हैं कि वे उस चेहरे में जान ही नहीं पड़ते !

परन्तु दर्शनीयता के लिहाज़ से इस जानवर की खूबी हमें तब जान पड़ती है, जबकि अपने विशाल जबड़े फैलाकर यह अपना गुफ़ा का-सा मुँह खोलता है ! इस कंदरावत् मुख-विवर में निचले जबड़े के एकदम द्वार पर ही लगभग दस-दस इंच लंबे बाहर निकले हुए दो कराल दंष्ट्र हमें दिखाई दे जाते हैं और सहसा हमारा जी भय के मारे थरथरा उठता है ! ये भयावने दाँत ऐसे जान पड़ते हैं, मानों दो मोटी कीलवत् खूँटियाँ जबड़े की हड्डी में गड़ी या जड़ी हुई हों ! ये हैं दरअसल इस जीवधारी के बृहदाकार कुक्कुरदंत, जिनका बहुतेरा अंश तो जबड़े के भीतर ही छिपा रहता है। इन दो कराल दाँतों से युक्त गुफ़ा जैसे उसके भयावने मुँह को उसकी बड़ी-सी खुरदरी लाल जिह्वा और भी अधिक डरावना बना देती है ! परन्तु तुम्हें यह जानकर आश्चर्य हुए बिना न रहेगा कि इन डरावने दाँतों से सज्जित होकर भी यह जीवधारी, जहाँ तक कि उसके आहार-विहार का संबंध है, एक निरापद शाकपातभोजी पशु है ! वह झुंडों में रहने का अभ्यस्त है और केवल रात्रि के समय अपने आहार की खोज में नदियों के किनारे पर के दलदली क्षेत्रों एवं उनके तलभाग में विचरते पाया जाता है। अपने भारी-भरकम शरीर के बावजूद यह प्राणी ज़बर्दस्त तैराक़ और गोताखोर होता है तथा अपने सिर पर पानी की गहरी चादर छायी रहने पर भी नदियों के तले पर जल के भीतर ही भीतर बड़ी तेज़ी से पैदल चलते हुए वह वनस्पतियों को चरता रहता है ! इसके पेट का आकार दस फ़ीट लंबा होता है, जिसमें कोई पाँच-छः बुशल घास-पात वह भर लेता है !

हाथी की तरह हिप्पोपोटेमस के भी एक बार में केवल एक ही बच्चा पैदा होता है। इसकी खाल लगभग इंच भर मोटी होती है और वह ढाल आदि बनाने के काम आती है। तैरते वक्त यह थूथन, आँख और कान के अलावा शेष सारा शरीर पानी में डुबाये रहता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पिछले कुछ प्रकरणों में, मनुष्य के नज़दीकी नातेदार वानरों और वनमानुसों से लेकर सिंह, बाघ, तेंदुआ, भालू, भेड़िया, आदि खतरनाक हिंसक प्राणियों एवं हाथी, गैंडा, जिराफ़, आदि भीमकाय पशुओं तक, थलचर जीवों के कतिपय सबसे अधिक समुन्नत और प्रख्यात नमूनों का परिचय हम तुम्हें दे चुके हैं। परन्तु जल या नभ के विस्तार में विचरनेवाले लाखों प्रकार के जीवरूपों की भाँति, धरती के स्थलभाग पर जीवनयापन करनेवाले बड़े जीव-जंतुओं की भी संख्या, अलग-अलग बिरादरियों के अनुसार, हज़ारों तक पहुँची हुई पाई जाती है ! तो फिर इन गिने-चुने पृष्ठों के सीमित दायरे में समस्त थलचरों का विगतवार परिचय देना भला किसके बूते का काम है ? इसके लिए तो दरअसल अलग से पूरे एक महाकोश की रचना की जानी चाहिये। यहाँ तो हम इन पशुओं के कतिपय चुने हुए प्रतिनिधि नमूनों ही की जानकारी तुम्हें करा सकते हैं और इन्हीं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत प्रकरण में पेश किया जा रहा है।

परन्तु यह है मात्र एक बेसिलसिलेवार छुटपुट बखान। ये छुटपुट नमूने केवल इसी निगाह से चुने गए हैं कि जानवरों की इस लंबी-चौड़ी कुदरती नुमाइश में अपनी-अपनी अनोखी वेशभूषा और निराली रहन-सहन के कारण ये अपनी ओर हमारा ध्यान खींचे बिना नहीं रहते ! इनमें से कुछ हैं यदि खुरवाले या शफवर्ग के तो दूसरे कुतरकर खानेवाले जीवों की बिरादरी के भी हैं। बहुतेरे यदि शुद्ध घासपातभोजी हैं तो कुछ एक हिंसक मांसजीवी अथवा कीटभक्षी भी हैं ! किसी के बदन में यदि बच्चों को एक थैली में रखने की विशेषता है तो कोई अपने बचाव के लिए शरीर पर अनोखे कवच पहने भी देख पड़ते हैं ! कुछ वृक्षों ही के अधिवासी हैं तो कुछ-एक स्थल के अलावा जल में भी समान रूप से विचरते पाये जाते हैं। निस्संदेह इन सबके अपने-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

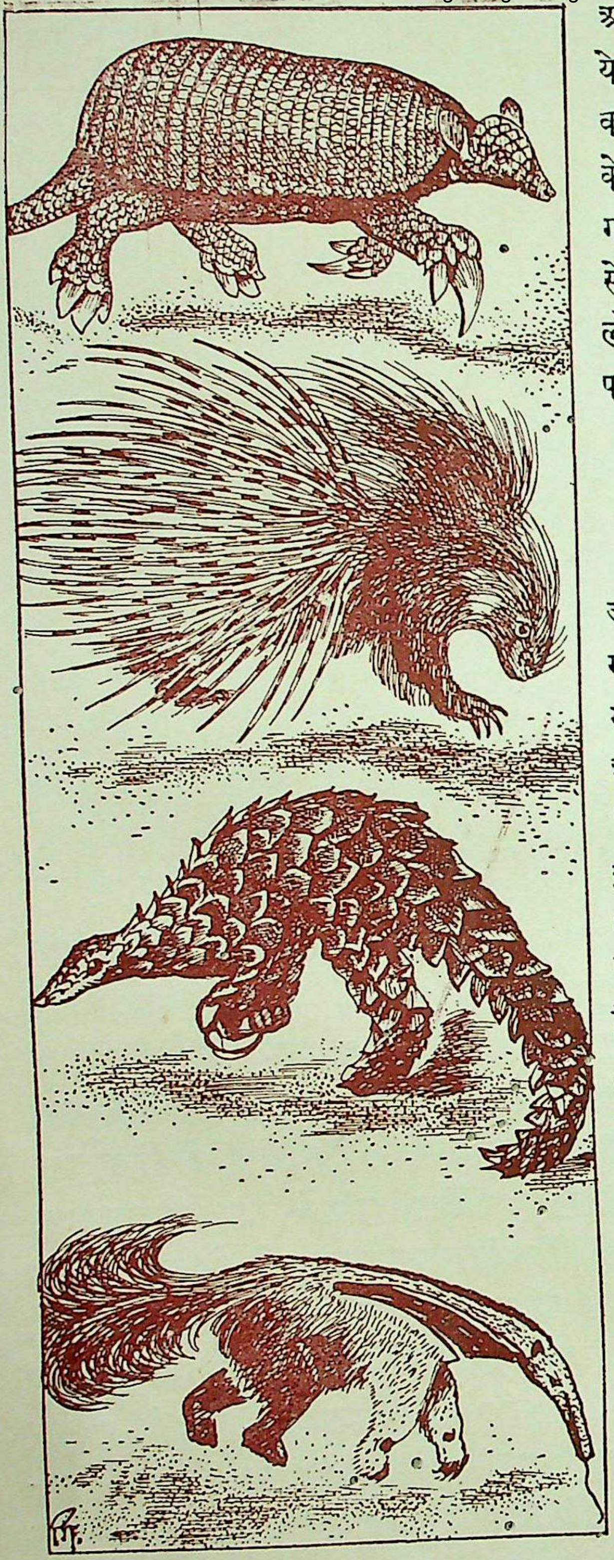

(क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर)
आर्माडिल्लो ; साही ; साल ; और चींटीख़ोर । 'साही' को छोड़कर इनमें के शेष तीनों प्राणी वैज्ञानिकों द्वारा एक ही 'अदंतक' समूह में शरीक माने गये हैं !

अपने अलग-अलग कुनबे और वर्ग हैं। फिर भी एक बात में ये सब आपस में मानों एक ही डोर में बँधे हुए-से हैं। वह नाता यह है कि एक तो ये सब थलवासी हैं, दूसरे सब के सब स्तनपोषी हैं—अर्थात् संतान को ये पेट के भीतर गर्भाशय में ही विकसित करके पैदा करते और तदनंतर स्तनों से दूध पिलाकर उसका पालन-पोषण किया करते हैं। तो लो, कलाकार कुदरत की इन अनोखी करतूतों की जानकारी पाकर अपना दिल बहलाओ !

आर्माडिल्लो, साल, चींटीख़ोर और स्लॉथ

बाईं ओर की तस्वीर में दी गई इन अजीब-सी शक्लों पर ज़रा ग़ौर करो ! क्या तुम इन्हें किसी सनकी चितेरे की मन-गढ़न्त करतूत मात्र न कहोगे ? भला, कौन एकाएक यह मान लेगा कि ये हैं दरअसल ऐसे कुछ जानवरों की आकृतियाँ, जो इस धरती पर जीते-जागते मौजूद हैं ! इनमें 'साही' को छोड़कर शेष तीन प्राणी एक ही विशाल कुनबे में शरीक किए जाते हैं, जिसे कि 'अदंतक वर्ग' का नाम दिया गया है। परन्तु शक्ल-सूरत और रहन-सहन के भेद के अनुसार इनकी अपनी-अपनी अलग-अलग बिरादरियाँ हैं। इनमें से कुछ तो केवल नई दुनिया ही में मिलती तथा कुछ पुरानी दुनिया के विशिष्ट भागों ही में पायी जाती हैं। 'अदंतक' नाम इनके कुनबे को इसलिए मिला है कि इनमें से कुछ के मुँह में तो दाँत एकदम होते ही नहीं और कुछ में यदि हैं भी तो अगले कर्तनक दंत बिलकुल ग़ायब हैं। ये अदंतक स्तनपोषी जंतु-विकास की निसेनी पर बहुत ही निम्न स्थिति पर अवस्थित हैं, क्योंकि इनका दिमाग़ काफ़ी छोटा और अविकसित है। हाँ, एक विशेषता इनमें अवश्य पाई जाती है। वह यह है कि कुदरत ने इनमें से कइयों के बदन की रक्षा के निमित्त तरह-तरह के कवच या बचाव के साधनों से लैस कर रक्खा है। इसी लिहाज़ से हमारे लिए ये एक असाधारण कुतूहल की चीज़ हैं !

चित्र में सबसे ऊपर दिग्दर्शित प्राणी 'आर्माडिल्लो' कहलाता है। यह अद्भुत कवचधारी केवल अमेरिका की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नई दुनिया (विशेषकर दक्षिणी अमेरिका) ही में मिलता है। इसकी छोटी-बड़ी कई उपजातियाँ हैं, जो तीन-चार फ़ीट से लेकर पाँच-छः इंच तक के विविध आकारों की पाई जाती हैं ! 'आर्माडिल्लो' नाम इस जीवधारी को इसी-लिए मिला है कि इसका सारा बदन, यहाँ तक कि सिर, पैर और दुम तक, आपस में जुड़ी हुई एक प्रकार की कड़ी अस्थिवत् शल्कों या प्लेटों के कवच से मढ़ा होता है ! इसका यह कवच कछुए की पीठ पर की ढाल की भाँति दुर्भेद्य होता है ! इस ज़िरह-बख्तरधारी के पैर बहुत बड़े आकार के अंकुशों जैसे मज़बूत नखों से सुसज्जित होते हैं, जो संख्या में प्रति पैर तीन से पाँच तक होते हैं। इसके बदन का निचला भाग बालों से ढका होता है। कई जातियों में मुँह चींटीख़ोर जैसा लंबा या आगे निकला हुआ भी होता है और जीभ भी काफ़ी लंबी होती है। ये सब कीटभक्षी जीव हैं और अपनी दुर्भेद्य रक्षा-योजना के बावजूद केवल रात्रि को ही ये बाहर निकलते हैं। अपने नाख़ूनों से ये गहराई तक ज़मीन खोद लेते हैं और केवल बिलों ही में ये रहते हैं। इन कवचधारियों को देखकर लाखों वर्ष पूर्व के 'ग्लिप्टोडान' नामक उस विलुप्त ज़िरहबख्तरधारी का स्मरण हो आता है, जो कि दक्षिणी अमेरिका के इन्हीं क्षेत्रों में कभी विद्यमान था। उसका आकार गैंडे के बराबर था ! संभवतः आज के ये 'आर्माडिल्लो' उसी के बौने वंशज या नातेदार हों !

इसके बाद जो विचित्रवेशी प्राणी पिछले पृष्ठ के चित्र में दिग्दर्शित हैं, उनमें से तृतीय का नाम है 'पैंगोलिन' या 'साल' और चतुर्थ को 'ऐंट-ईटर' अथवा 'चींटीख़ोर' के नाम से पुकारा जाता है। इन अदंतक प्राणियों में, 'पैंगोलिन' या 'साल' केवल एशिया और अफ्रीका ही में पाया जाता है तथा 'चींटीख़ोर' केवल अमेरिका ही में मिलते हैं। उपर्युक्त दोनों ही प्राणियों के मुँह में दाँत बिल्कुल ही नहीं होते और इनकी जीभ विशेष प्रकार की चिपचिपी एवं लंबी होती है, जो बाहर निकालकर दूर तक पहुँचाई जा सकती है। यह योजना इन प्राणियों के शरीर

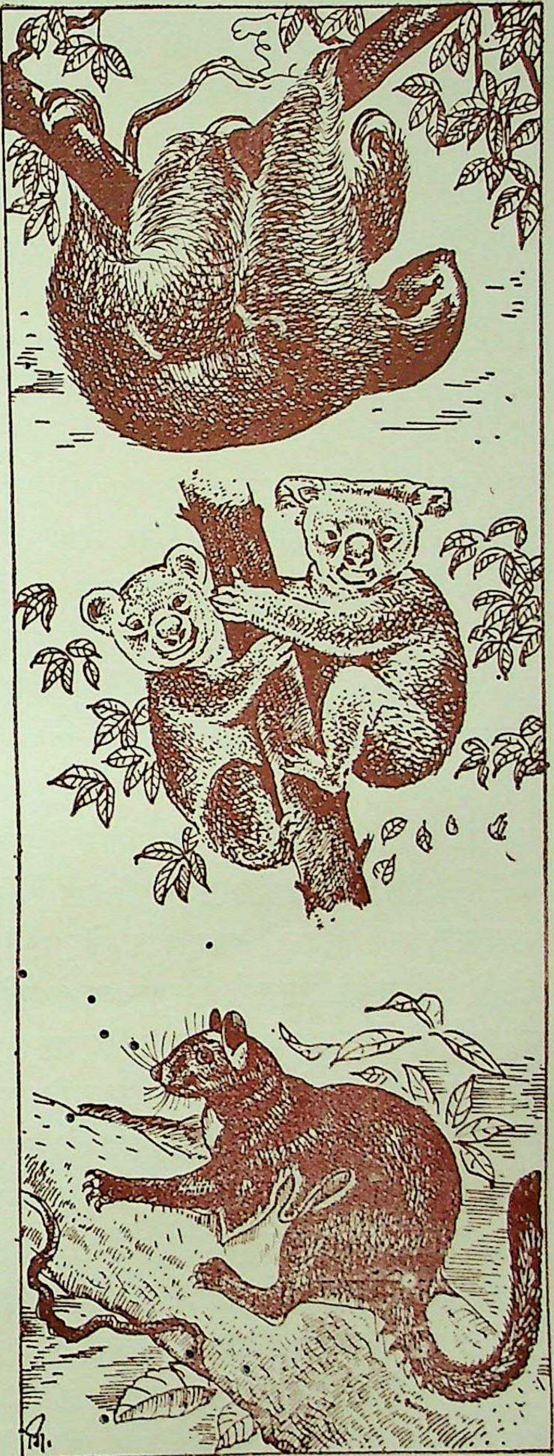

(क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर)
वृक्षों पर औंधा लटका रहनेवाला 'स्लॉथ'; बच्चों के लिए पेट की जेबनुमा थैली से युक्त 'कोआला' नामक विचित्र-वृक्षवासी; और उड़नेवाली गिलहरी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में प्रकृति ने इसलिए की है, ताकि ये चींटियों और दीमक आदि को (जो कि इनका एकमात्र आहार हैं) सरलता से चट कर सकें। आओ, अब इन अद्भुत जीवधारियों के बारे में कुछ और बातें तुम्हें बताएँ! पहले हम 'साल' ही को लें। लगभग ढाई-तीन फ़ीट से पाँच-साढ़े पाँच फ़ीट तक के आकार का यह अनोखा जीव गोह या मगर की-सी लंबी दुम, लँबोतरे मुँह और बड़े-बड़े नाखूनों से युक्त चार पैरोंवाला एक प्राणी है, जिसकी मुख्य विशेषता इस बात में है कि उसका सारा बदन खपरैल की भाँति एक तरह के कड़े सिन्नों या शल्कों से छाया रहता है। उसका यह शल्करचित कवच इतना दुर्भेद्य होता है कि उस पर बंदूक या पिस्तौल की गोली का भी कोई असर नहीं हो पाता! निस्संदेह, यह इस जीवधारी का अपनी आत्मरक्षा का एक साधन-मात्र है, जिसका प्रयोग वह खतरे के समय इस प्रकार अपने मुँह और दुम को टाँगों के बीच छिपाकर करता है कि उसका सारा बदन लिपटकर गेंद की-सी गोल शक्ल का बन जाता है! तब भला किसकी मजाल है कि उसे तनिक भी हानि पहुँचा सके! क्योंकि एक तो खपरैल जैसे उसके वे सिन्ने यों ही दुर्भेद्य होते हैं, दूसरे संकट में वह इस तरह उन्हें फुला लेता है कि उनकी नोकें, जो तेज़ धारवाली होती हैं, आक्रमणकारी के लिए खतरा पैदा कर देती हैं! यह जानवर एशिया में हमारे अपने देश के अलावा चीन, नेपाल, जावा, बोर्नियो और सेलीबीज़ द्वीपों में, तथा अफ्रीका में विशेषतया पश्चिमी इलाक़ों में पाया जाता है। अफ्रीकी जाति एशियाई जाति से बहुत बड़ी (लगभग ५॥ फ़ीट लंबी) होती है। यह एक डरपोक और निरापद रात्रिचर जीव है, जो अपने तेज़ नाखूनों से धरती में बिल खोदकर दिन भर उसी में पड़ा रहता है। इसका बिल ज़मीन से आठ-दस फ़ीट की गहराई पर पाँच-छः फ़ीट के घेरे का होता है, जिसके मुँह को यह मिट्टी से बंद कर लेता है। यह केवल दीमक या चींटी खाकर ही गुजारा करता है, जिन्हें अपनी चिपचिपी जीभ की मदद से आसानी से यह चाट लिया करता है। चलते समय यह अपने पैरों के नाखूनी पंजों को पीछे की ओर मोड़ लेता है। अभी हाल ही की बात है कि एक 'साल' कानपुर शहर की एक हलचलभरी सड़क पर पाया गया था। लोग इसे मगर, साँप, गोह सभी के सम्मिलित रूप का विचित्र घालमेल देखकर भयभीत हो उठे थे! फ़ौरन ही अखबारों में तरह-तरह के गपोड़े इसके बारे में छप गये! अंत में, लखनऊ लाया जाकर यह यहाँ की जंतुशाला में प्रदर्शन के लिए रख दिया गया है। इस जीवधारी को 'साल' के अलावा हमारे यहाँ 'काठपोह', 'बनरोहू', 'सल्लू साँप' आदि अन्य अनेकों नामों से पुकारा जाता है।

'चींटीख़ोर' या 'ऐंटईटर' का पेशा तो उसके नाम ही से सुस्पष्ट है और यह भी हम बता चुके हैं कि पैंगोलिन तथा आर्माडिल्लो का यह दूर का अदंतक रिश्तेदार केवल नई दुनिया (दक्षिणी और मध्य अमेरिका तथा ट्रिनिडाड) में ही मिलता है। परन्तु उसकी वेशभूषा इन सबसे निराली है। उसकी एक विशेषता तो यह है कि उसके पास आत्मरक्षा का वैसा कोई साधन मौजूद नहीं है, जैसाकि पूर्वोल्लिखित अन्य दो अदंतक कीटभक्षियों को प्राप्त है। उसका शरीर सिन्नों या शल्कों से ढका न होकर केवल सुअर के-से कुछ रूखे, कड़े बालों से आच्छादित रहता है। ये केश उसके आगे के पैरों, पुट्ठों और दुम पर जाकर बहुत घने हो गये हैं। इस जंतु की सबसे बड़ी जाति का डीलडौल आठ फ़ीट तक का पाया जाता है। इसका मुँह बेहद लंबी सँकड़ी चोंच-सा होता है और दुम होती है बड़ी-सी झामरी झाड़ू जैसी। काले-सलेटी रंग के इसके बदन पर कंधों और छाती से लगाकर ठेठ पिछले पुट्ठों तक काले रंग की एक दोहरी पट्टी-सी फैली रहती है, जिसकी कोर पर सफ़ेद बालों की किनारें सुशोभित होती हैं। इसके अलावा इसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
अगले पैर तथा छाती का बहुत-सा अंश एकदम सफ़ेद या बादामी-सा होता है। अपने इस रंग-बिरंगे चितकबरे वेश में यह प्राणी ऐसा जान पड़ता है मानों उसे दो अलग-अलग लिबासों को आपस में जोड़कर उसी का पहनावा कुदरत ने दे दिया हो। इसकी दुम पर के बाल तो कभी-कभी पंद्रह-सोलह इंच तक बढ़े हुए पाये जाते हैं। ये कीटभक्षी भी साल की भाँति रात्रिचर होते हैं। इनके अगले पैरों में आगे निकला हुआ एक बड़ा-सा नख होता है, जो ज़मीन खोदने में काफ़ी सहायक होता है। चींटीखोरों की इस बृहत् बिरादरी का एक दूर का रिश्तेदार 'आर्ड-वार्क' कहलाता है, जो केवल अफ्रीका ही में पाया जाता है। यह पाँच-छः फ़ीट लंबा जीव देखने में बड़ा ही भौंडा होता है। मुँह तो इसका भी बेहद लंबी थूथनवाला पाया जाता है, परन्तु उस पर खरगोश-जैसे बड़े लंबे कान ऊँचे उठे रहते हैं। इसकी पीठ भी खरगोश या चूहों की-सी उभरी हुई होती है और दुम छछूँदर की-सी पाई जाती है। इसकी एक विशेषता यह होती है कि इसके मुँह में कुछ दाँत भी होते हैं, जो बिना जड़ के होते हैं। यह भी अपने अन्य कीटभक्षी बंधुओं की भाँति निशाचर होता है और धरती में बिल खोदकर रहता है। इसका भी आहार दीमक और चींटियाँ हैं!

इसके पहले कि हम पृ० ७६ के चित्र में दिग्दर्शित चार प्राणियों में से शेष बचे हुए उस अनोखे जानवर 'साही' के बारे में कुछ कहें, हम तुम्हारा ध्यान उसी के सामने के पृ० ७७ के चित्र में सबसे ऊपर प्रदर्शित एक जंतु का परिचय दे देना आवश्यक समझते हैं, कारण वह भी ऊपर उल्लिखित 'अदंतक-वर्ग' का ही एक जीव है। वृक्षों की डालियों को अपने पंजों से पकड़कर सदैव औंधा लटका रहनेवाला यह अनोखा जानवर 'स्लॉथ' कहलाता है और अधिकतर दक्षिणी अमेरिका के ब्रेज़िल जैसे घने जंगली प्रदेशों ही में वह पाया जाता है। यह नितान्त वृक्षवासी जीव है और ज़मीन पर आकर वह बिलकुल बेबस और लाचार-सा हो जाता है! यदि कोई इसका वह औंधा आसन छुड़ाकर धरती पर इसे ला बिठाये तो वहाँ भी यह हाथ-पैर फैलाकर चित ही लेट जाता है और उठ पाना उसके लिए एकदम नामुमकिन हो जाता है। ज़रा सोचिए तो कि इन जंतुओं को, जिनके लिए सारी दुनिया ही मानों उल्टी है, वे वृक्ष जिन पर ये लटके रहते हैं तथा धरती और आसमान आदि, अन्य जानवरों की अपेक्षा कितने विपरीत ज्ञात होते होंगे! इस जानवर का नाम 'स्लॉथ' इसलिए पड़ गया है कि एक तो यह बड़ा ही सुस्त या काहिल जंतु है; दूसरा देखने में यह भालू जैसा जान पड़ता है। परंतु भालुओं से इसका दूर का भी कोई नाता नहीं है! एक तो वह शुद्ध शाकाहारी है; दूसरे, उसके दाँत भी केवल नाममात्र ही के हैं। हाँ, इसका शरीर रींछ की तरह बालों से अवश्य ढका रहता है। इसका रंग भूरे-बादामी-सा होता है, जिस पर एक हरितवर्ण छाया-सी रहती है। सिर इसका गोल और छोटा, कान नाम मात्र के, हाथ-पैर लंबे और दो या तीन उँगलियों से युक्त

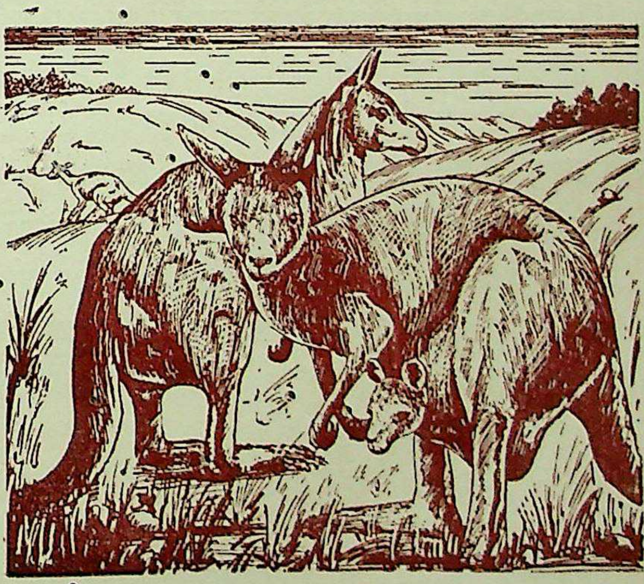
बच्चे को पेट की जेबनुमा थैली में बिठाये रहनेवाला जीव 'कँगारू'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
एवं मुड़े हुए नाखूनदार पंजोंवाले, तथा आकार छोटे कुत्तों का-सा होता है। इसके बाल इस प्रकार के होते हैं कि वर्षा का पानी इन पर से शीघ्र ही झर जाता है। यही नहीं, इन बालों में काई की जाति की एक तरह की नन्हीं-नन्हीं वनस्पतियाँ भी उग आती हैं, जिससे कि उन पर हरी-हरी झाई देख पड़ती है। इसी से इन जीवों के बारे में यह कहा गया है कि ये ऐसे प्राणी हैं, जो अपने बदन पर मानों हरा बगीचा उगाये हुए हैं! ये सुस्त ऊर्ध्वमुखी जीव इसी प्रकार औंधे ही लटके-लटके सारी ज़िन्दगी काट देते हैं और उसी प्रकार पेड़ों पर औंधे रहकर एक से दूसरी डाली पर धीरे-धीरे खिसकते रहते हैं।

विचित्र शूलधारी 'साही'

तदुपरान्त काँटों के-से तीखे शूलों का पहनावा पहने उस विचित्रवेशी जीवधारी का परिचय हम तुम्हें देना चाहते हैं, जो कि पृ० ७६ के चित्र में द्वितीय पंक्ति में दिग्दर्शित है। यह अनोखा शूलधारी 'साही' या 'पारक्यूपाइन' कहलाता है और न केवल हमारे ही अपने देश में, प्रत्युत कुछ फेरबदल के साथ अफ्रीका, दक्षिणी योरप और अमेरिका में भी पाया जाता है। इसकी मुख्य विशेषता उसके बदन पर उगे हुए मिश्रित काले-सफ़ेद रंग के उन असंख्य तीखे काँटों का वह परिधान है, जो कि इस प्राणी का एक साथ ही रक्षा और आक्रमण का एक कारगर अस्त्र है। इसके ये तीखे काँटे, जो देखने में बड़े ही सुहावने मालूम देते हैं, यों तो साधारणतया नीचे सिमटे हुए-से ही रहते हैं, परन्तु जब यह प्राणी अपने लिए खतरा देखता है तो फ़ौरन ही वे उसके बदन पर खड़े हो जाते हैं, जिससे कि वह अधिक फूला हुआ और खतरनाक-सा दिखाई पड़ने लगता है। शत्रु को डराने के लिए यह जानवर इन काँटों को हिलाकर उनसे एक प्रकार की खन-खन आवाज़ भी निकालने लगता है। यह सामने से दुश्मन पर हमला करने के बजाय अपनी दुम की ओर से या बाजू से वार करता है। प्रायः वह शत्रु के नज़दीक खिसककर इस तरह अपनी दुम को झकझोरता है कि उसके तीखे काँटों में से कुछ दुश्मन के बदन में चुभ जाते हैं और स्वयं अपने शरीर में से वे छूट पड़ते हैं! इन काँटों द्वारा किया गया घाव बड़ा ही कष्टप्रद होता है। साही के दाँत भी बड़े तीखे कुतरनेवाले होते हैं। यह प्राणी वस्तुतः चूहा, गिलहरी, खरगोश, आदि कृन्तकदन्ती वर्ग का सदस्य है, जिनके कि ऊपरी जबड़े में दो या चार बड़े ही तीखे और कारगर कर्त्तनक दाँत होते हैं। अपने इन तीखे दाँतों द्वारा इस वर्ग के प्राणी कड़ी लकड़ी के मोटे तख्तों तक को काट डालते हैं।

साही रात ही को विचरनेवाला जीव है। दिन में वह शायद ही कभी अपने बिल से बाहर निकलता हो। यह एक शाकपातभोजी प्राणी है, अतः ऐसे ही स्थानों में यह अपना बिल खोदता है, जहाँ कि शकरकंद, आलू, चुकंदर, गाजर, जैसे कंद-मूल की बहुतायत होती है। यह मूँगफली खाने का भी बड़ा शौक़ीन होता है और प्रायः रात के समय खेतों एवं बाग-बगीचों पर धावा बोलकर उन्हें चौपट करता रहता है। आकार में यह दो फ़ीट से कुछ लंबा और श्यामल-भूरे रंग का होता है। काँटों के अलावा इसके शरीर पर बाल भी होते हैं, जो बड़े कड़े होते हैं। इसका मुँह चूहे जैसा तथा पैर तीखे नाखूनी पंजोंवाले होते हैं। हमारे देश में यह मशहूर है कि इस प्राणी के काँटे जिन दो व्यक्तियों के घर में खोंस दिए जाएँ, वे लगातार लड़ते रहते हैं। परन्तु यह एक अंधविश्वास-मात्र है। वस्तुतः इन सुंदर काँटों की बड़ी उम्दा क़लम बनाई जा सकती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जंतु-जगत् का अनोखा इंजीनियर—'बीवर'

कुतरनेवाले दाँतों से युक्त (अर्थात् कृन्तकदन्ती) प्राणियों का ही एक उल्लेखनीय और अद्भुत कला-निपुण प्रतिनिधि 'बीवर' नामक वह अनूठा जानवर है, जिसकी निर्माण-कला को देखकर वैज्ञानिक गण आश्चर्य से दाँतों तले उँगली दबाने लगते हैं! गिलहरी या चूहे की-सी शक्ल का यह दो-ढाई फ़ीट आकार का बालदार प्राणी—जिसका सिर गोल, कान बहुत छोटे, पिछले पैर बत्तखों के-से जालदार और दुम बेहद चपटी, सिन्नेदार तथा आठ-दस इंच लंबी होती है—वज़न में पचास-साठ पौंड तक का पाया जाता है। वह केवल योरप-अमेरिका के उत्तरी इलाकों ही का निवासी है। विशिष्ट परिस्थितियों के कारण, वह स्थलचर होकर भी जलचर बन गया है, अर्थात् जलाशयों के तट पर बसकर, जीवन-निर्वाह के लिए वह पानी ही में अपना अधिकांश समय व्यतीत करता है। इस छोटे-से जानवर की खूबी क्या है? एक वाक्य में इसका परिचय यों कहकर दिया जा सकता है कि यह है जंतु-जगत् का सबसे चतुर इंजीनियर! इसकी इस निर्माण-कला-विषयक दक्षता का परिचय हमें मिलता है इस छोटे-से प्राणी द्वारा एक खास उद्देश्य से अपने निवासस्थान के पास के जलाशयों पर बाँधे जानेवाले अत्यन्त आश्चर्यजनक कृत्रिम बाँधों के रूप में! इन बाँधों को, जिनकी लंबाई कभी-कभी पचीसों फ़ीट तक और ऊँचाई भी पाँच-सात फ़ीट तक पहुँची हुई पाई जाती है, ये प्राणी किसी नाले का पानी रोकने के लिए बाँधा करते हैं। इस कार्य को करते समय ये आधुनिक इंजीनियरिंग-कला के मानों श्रेष्ठतम अनुभूत सिद्धान्तों और नियमों का पालन करते देखे जाते हैं! उदाहरणार्थ, यदि बाँध अधिक लंबा हुआ तो वे उसे धारा के प्रवाह के विरुद्ध एकदम आड़ा न रखते हुए, एक घुमाव-सा देकर, गोलाई में तिरछा-सा बनाते हैं, ताकि पानी का ज़ोर कम किया जा सके और बाँध अधिक मज़बूत बने! इस कार्य के लिए वे जलाशय के तटवर्ती वृक्षों की सामग्री से ही काम लेते हैं। वे इन वृक्षों के पाँच-सात इंच मोटे तनों को अपने तीक्ष्ण दाँतों से कुतरकर गिरा देते हैं और उनके चार-पाँच फ़ीट लंबे टुकड़े कर-करके खींचते हुए बाँध की जगह पर ले जाते व टेढ़े-तिरछे ढंग से उन्हें एक-दूसरे पर रचते जाते हैं।

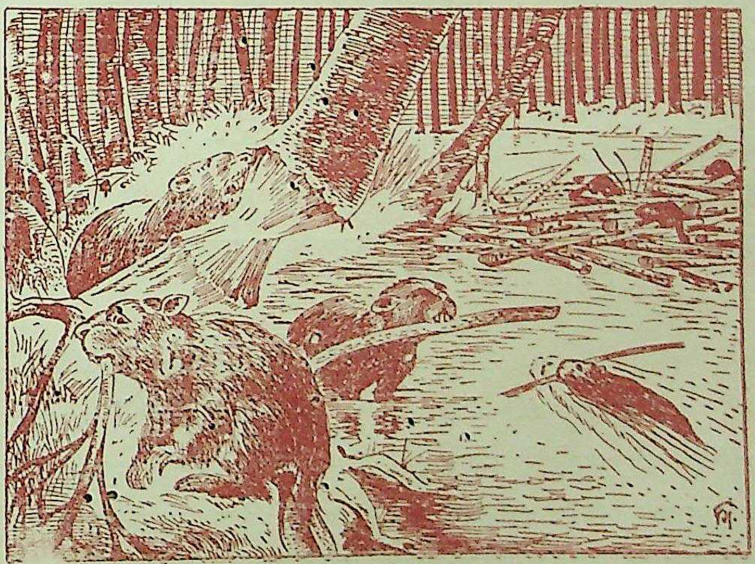

अपने निवासस्थान के आसपास वृक्षों को कुतर-कुतरकर काटने, उनकी डालियों के छोटे टुकड़ों को उठाकर या बहाकर ले जाने और उन्हें एक जगह रचकर इंजीनियरों को चकरा देनेवाला बाँध बाँधते हुए अद्भुत शिल्पी बीवर'।

इस काम में एक साथ कई बीवर मिलकर काम करते हैं, यह इनकी एक खास विशेषता है। इन लकड़ियों या लट्ठों के बीच-बीच की खाली जगह को भरने के लिए ये छोटी-छोटी टहनियों, पेड़ों के छिलकों, घास-पात, कीचड़, मिट्टी आदि मसाला काम में लेते हैं। सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि दूर के वृक्षों को गिराकर उनके भारी लट्ठों को बाँध की जगह तक लाने के लिए ये लघुकाय प्राणी वहाँ तक छोटी-छोटी नहरें-सी खोद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
डालते हैं और उन लकड़ियों को उनको जलधारा में बहाकर ठेलते हुए निश्चित स्थान तक वे ले आते हैं ! प्रायः इस तरह कुतरकर वे उन वृक्षों को काटते हैं कि जिस ओर वे उन्हें गिराना चाहें उधर ही वे गिरें ! वे इन पेड़ों को अपनी पिछली टाँगों पर खड़े होकर कुतरते हैं। कहते हैं, एक जोड़ा बीवर दो-तीन रात मेहनत करके एक छोटे-से पेड़ को गिरा लेता है ! इन छोटे-छोटे जीवों की पूरी बिरादरी को एक साथ मिलकर, किसी जलाशय के समीप एक ही संमिलित उद्देश्य, लगन और दक्षता के साथ कड़ा परिश्रम करते हुए अपने इस महान् निर्माण-कार्य में संलग्न देखकर, श्रद्धा से हमारा मस्तक झुक जाता है ! कौन उन्हें सहकारिता का यह पाठ पढ़ाता है और किस प्रकार इस कठिन योजना को बनाकर वे उसे पूरी करते हैं, यह प्रकृति का एक गूढ़ रहस्य है !

तुम पूछ सकते हो कि आखिर यह छोटा-सा प्राणी यह सारी मेहनत किसलिए किया करता है ? इसका उत्तर हमें मिलता है उसके विशेष प्रकार के उस जीवन-क्रम में, जिसकी विशेषता यह है कि स्थलचर होकर भी वह है दरअसल पानी पर निर्भर एक जीव ! उसके लिए जल एक परम आवश्यक वस्तु है। इसीलिए वह जलाशयों के किनारे ही अपना घर बाँधता है। न केवल इन बाँधों को ही बनाने में, प्रत्युत उन्हीं की छत्रछाया में निर्मित अपने बिलनुमा घरों की रचना करने में भी ये प्राणी अपनी इंजीनियरी की कला का पूर्ण परिचय देते हैं। इनके ये घर गुंबदनुमा छत से ढके हुए होते हैं और बाँध द्वारा पानी रोककर बनाये गये उस कृत्रिम जलाशय या तालाब से एकदम सटे हुए वे रहते हैं। ये घर स्वतः तो पानी की सतह से ऊपर ही रहते, परंतु उनमें से आने-जाने के रास्ते या द्वार इस ढंग के बने हुए होते हैं कि वे सदा पानी ही में डूबे रहते है। यह सारी व्यवस्था ऐसी चतुराई के साथ की गई होती है कि जाड़े में जब पानी पर बर्फ़ की तह जम जाती है तब भी द्वार के पास का पानी इतना गहरा बना रहे कि वह नीचे जमकर घर का रास्ता बंद न करने पाए, न गरमी में इतना सूख ही जाए कि द्वार खुला रह जाए ! इस योजना की तारीफ़ तो इस बात में रहती है कि भीतर से घर एकदम सूखा बना रहता है और उसकी गुंबदनुमा छत भी मिट्टी आदि से पक्की की जाकर इतनी मज़बूत बनी रहती है कि उसमें ऊपर से वर्षाजल की एक बूँद भी नहीं आ पाती ! अपने इसी सुरक्षित घर के भीतर जाड़े भर टिका रहकर बीवर अपने बच्चों को पालता-पोसता है। प्रायः एक ही घर में कई बीवर मिलकर रहते हैं और एक ही जलाशय के आसपास ऐसे अनेक घर बने रहते हैं। इस तीक्ष्णदंती जीव का आहार कतिपय वृक्षों की छालें और जल-पौधों की जड़ें आदि हैं। जलजंतु होने के नाते, बीवर स्वभावतः ही कुशल तैराक होता है। इसकी खाल अपने मुलायम समूर की बदौलत बड़ी ही क़ीमती मानी जाती है। इसीसे काफ़ी तादाद में इस बेचारे का शिकार किया जाता रहा है।

उड़नेवाली गिलहरियाँ, हिरनामूसा, आदि

कुतरकर खानेवाले तीक्ष्णदंती वर्ग के सभी जीवधारियों का परिचय देने के लिए तो यहाँ पर्याप्त स्थान नहीं है और उनमें से कई एक—जैसे चूहा, गिलहरी, ख़रगोश, आदि—से तो आम तौर पर सब कोई वाकिफ़ हैं। तथापि इस वर्ग के कुछ एक विचित्र नमूनों का उल्लेख परम आवश्यक है। उनमें से एक हैं तरह-तरह की उड़नेवाली गिलहरियों की वे जातियाँ, जो अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा एशिया के भारत, बर्मा आदि प्रदेशों में पाई जाती हैं। वैसे तो साधारण गिलहरी की भी अनेकों छोटी-बड़ी बिरादरियाँ पुरानी और नई दुनिया के सभी भागों में विस्तृत हैं, जिनमें से बहुतों के सुंदर वर्ण अलग-अलग मौसम में अलग-अलग रंग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दरसाते हुए बदलते-से देख पड़ते हैं। ये गिलहरियाँ भी कोई कम फुदकनेवाली नहीं होतीं ! परन्तु उड़नेवाली गिलहरियों की तो बात ही कुछ और होती है ! ये नन्हें रात्रिचर प्राणी देखने में बड़े ही कमनीय होते हैं। इनकी आँखें स्वप्निल-सी होती हैं। पर सबसे अद्भुत तो होता है इनके बदन के दोनों बाजू में हाथ की कलाई से पैर के टखने तक फैला हुआ उनकी त्वचा का वह विस्तार, जोकि हाथ-पैर फैलाने पर मर्ज़ी के अनुसार चमगादड़ के डैने या पंख की तरह तनकर इन्हें हवा में तैरने में सहायता देता है ! इसी व्यवस्था की सहायता से ये गिलहरियाँ एक पेड़ से उछलकर, हवा में उड़ती या पैरती हुई-सी, डेढ़ सौ फ़ीट की दूरी तक के दूसरे किसी वृक्ष पर जा उतरती हैं ! इनकी इस उड़ान में उनकी चपटी चौड़ी दुम मानों निर्देशक पतवार का-सा काम देती है। ये गिलहरियाँ दिन में प्रायः किसी वृक्ष के कोटर में अपने बदन को गोलाकार-सा बनाकर छिपी हुई सोई रहती हैं, केवल रात्रि को ही वे निकलती हैं। ऐसी ही एक बड़ी गिलहरी का चित्र पृ० ७७ की तस्वीर के निचले हिस्से में दिग्दर्शित है। हमारे देश में इसे 'सूरजभगत' कहते हैं।

कृन्तकदंतीय वर्ग के दूसरे कई और उल्लेखनीय विचित्र जीव भी, जोकि चूहे अथवा खरगोश से मिलती-जुलती बिरादरियों के हैं, यहाँ गिनाने योग्य हैं। इनमें से एक है 'हिरनामूसा', जो कि अपनी बेहद ऊँची पिछली टाँगों पर तीव्र वेग से उछल-उछलकर दौड़नेवाला एक अनोखा प्राणी है। इसके शरीर का सबसे विचित्र अंग इसकी आठ इंच लंबी दुम है, जिसके सिरे पर सिंह की पूँछ का-सा बालों का एक गुच्छा होता है ! इस दुम के सहारे उछल-उछलकर यह ऐसी छलाँगें भरता है कि देखनेवालों को यह भ्रम हो जाता है, मानों वह उड़ा जा रहा हो ! कहते हैं, इसकी गति तीव्रगामी हिरन की-सी होती है। इस जंतु के अगले पैर अत्यंत छोटे होते हैं, पर कान बहुत बड़े और आँखें भी काफ़ी बड़ी होती हैं। इसे देखकर कँगारू की याद आ सकती है। हमारे अपने देश के अलावा यह मध्य एशिया, दक्षिणी-पूर्वी योरप एवं पूर्वी अफ्रीका में

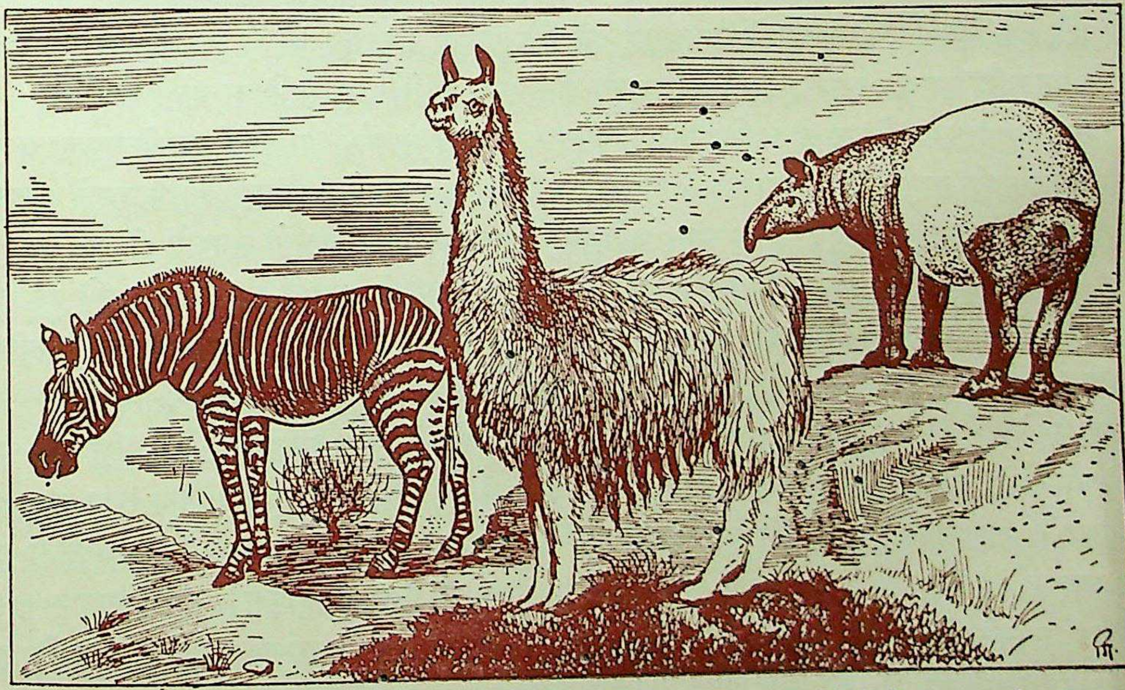

(क्रमशः बाईं से दाहिनी ओर को) 'ज़ेबरा', 'लामा' और 'तापीर' नामक विचित्रवेशी खुरवाले पशु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी पाया जाता है। इसका रंग ललछौंह-भूरा-सा होता है। यह एक रात्रिचर जीव है, जिसका कि मुख्य आहार अनाज और घास की जड़ें आदि हैं। चूहों की तरह यह भी अपनी खाद्य-सामग्री को भविष्य के लिए बटोरकर अपने बिल के भीतर संचित रखने का अभ्यस्त है।

संसार का सबसे अनोखा सामुहिक आत्मघाती—'लैमिङ्ग'

दूसरे एक छोटे-से कृन्तकदंती—'लैमिङ्ग'—की भी कथा बड़ी दिलचस्प और सुनाने योग्य है। एक मामूली-सी चुहिया के आकार का तीन इंच लंबा यह प्राणी उत्तरी योरप का निवासी है। कहते हैं, लगभग प्रति बारह वर्षों में एक बार अचानक नार्वे और स्वीडन के कृषि-प्रदेशों में इस लघुकाय प्राणी की एकबारगी ही बाढ़-सी आ जाती है और तीव्रता से उसकी संख्या बढ़ने लगती है। तब, संभवतः, आहार की कमी का अनुभव कर उसकी वह फौज़, या तो सीधे पश्चिम में अटलांटिक महासागर की ओर या पूर्व में एक समुद्री खाड़ी की ओर, बिना किसी बाधा का खयाल किये अग्रसर होने लगती है। इन प्राणियों की इस स्थानान्तर-यात्रा की सबसे बड़ी खूबी यह होती है कि वे तनिक भी अपनी दिशा की सीध नहीं छोड़ते, चाहे रास्ते में कोई पहाड़ आ पड़े या गहरी घाटी, चौड़ी नदी आ जाय या झील! वे मुड़े या कतराये बिना इन सब बाधाओं को लाँघते, पार करते हुए, और उन्हीं में से अपना रास्ता निकालते हुए, लगातार सागर की ओर बढ़ते ही चले जाते हैं। वे तीन-तीन फ़ीट के फ़ासले पर रहनेवाली समानान्तर पंक्तियों में चलते हैं! कहने की आवश्यकता नहीं कि रास्ते में पड़नेवाली नदियों और झीलों को भी वे इसी तरह सीधे चलते हुए तैरकर पार करते हैं, चाहे इस प्रयत्न में उनमें से कई डूब ही क्यों न जाएँ! वे पहाड़ों को भी, चक्कर काटकर बचाने के बजाय, सीधी चढ़ाई करके ही लाँघते हैं। घास या अनाज के पुआलों की भी परिक्रमा करने के बजाय, उनके बीच से सुरंगनुमा रास्ते बनाकर वे आगे बढ़ते हैं। उनका यह धावा रात ही को चलता है, दिन में प्रायः वे पड़ाव डालकर विश्राम करते और सोते रहते हैं। निस्संदेह, जिस ओर से उनका यह दल निकलता है, उस तरफ़ जो भी अनाज, घास-पात आदि राह में पड़ता है, उसका सफ़ाया होता चला जाता है। परन्तु आखिर यह काफ़िला जाता कहाँ है?

तुम्हें यह जानकर विस्मय होगा कि इस तरह निरंतर बाधा-अड़चनें लाँघने पर उसकी समाप्ति आखिर जाकर होती है उन सबके सामुदायिक आत्मघात के रूप में, केवल मौत के दामन में! कारण, अंत में जब वे समुद्रतट पर पहुँचते हैं तो अपनी अब तक की लगातार बढ़ते रहने की आदत से लाचार वे समुद्र में भी उसी भाव से उतर पड़ते हैं जैसे कि अब तक नदी-नालों में उतरते रहे थे। वे अपनी क़तारों को क़ायम रखते हुए उस लहराती हुई अपार जलराशि में कूदते चले जाते हैं, और या तो तत्काल ही किसी जलजंतु के मुख में समाकर ग़ायब हो जाते या कुछ दूर तक तैरने के बाद, आखिर महासागर की लहरों से मात खाकर, अपनी इहलीला समाप्त कर देते हैं! सबसे विचित्र बात तो यह है कि उनके झुंड-के झुंड समुद्र के गर्भ में लीन होते चले जाने पर भी ये प्राणी मौत के उस घाट पर आकर क्षण भर भी रुकते नहीं! प्रत्युत बिना आव-ताव देखे वे सागर में प्रवेश करते ही चले जाते हैं! उनकी इस भेड़ियाधसानी प्रवृत्ति को देखकर हमें ताज्जुब होता है! फिर आश्चर्य तो इस बात में है कि इस तरह अपनी जन-संख्या को लगभग समाप्तप्राय करके, बारह वर्ष बाद जब पुनः उनकी भीड़ काफ़ी बढ़ जाती है तो फिर से ज्यों-का-त्यों इसी आत्मघात का खेल दोहराते हुए उनका काफ़िला सागर की ओर चल पड़ता है! उनका यह महाप्रयाण सदियों से होता चला आ रहा है!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहाँ तक कुतरकर खानेवाले इन तीक्ष्णदंती लघुकाय जीवों के बृहत् समुदाय के विचित्र नमूनों का परिचय दिया जाय और किस-किस की माया का बखान यहाँ किया जाय ? कारण, जंतु-वैज्ञानिकों के अनुसार सारे स्तनपोषी-समूह में जितनी अधिक बिरादरियाँ कुतरकर खानेवाले इन तीक्ष्णदंती जीवों की मिलती हैं, उतनी और किसी भी दूसरे वर्ग की नहीं ! न केवल इनकी जातियों-उपजातियों ही की तादाद सबसे बढ़ा-चढ़ी है, बल्कि प्रत्येक जाति के सदस्यों की संख्या भी अनगिनत है। चूहे ही की मिसाल लो—कहते हैं, यदि एक जोड़ा भूरे चूहे की तीन वर्ष की समस्त संभावित सन्तान और पुनः उन सब की सन्तानों की पूरी मर्दुमशुमारी की जाय तो वह दो करोड़ से भी अधिक संख्या पर जा पहुँचेगी ! यह छोटा-सा जीव अपने उन कुतरनेवाले दाँतों की बदौलत प्रति वर्ष करोड़ों रुपये के अनाज की हानि करता है और उसके कारण प्लेग आदि बीमारियों के फैलने से जो महान् जन-धन-हानि होती है सो अलग है ! गिलहरियों की तरह चूहों की भी अनेक जातियाँ हैं। उनमें काले, भूरे और साँवले चूहे, तथा मूस, घूँस आदि के अलावा 'सफ़ेद चूहे', 'जल-चूहे', 'मुश्क-चूहे', 'गानेवाले चूहे', आदि कई जातियों के नाम गिनाये जा सकते हैं। इसी सिलसिले में 'छछूँदर', 'काँटाचूहा' या 'झाऊ चूहा', 'श्रू' आदि उन कीटभक्षी प्राणियों का भी उल्लेख किया जा सकता है, जो कि चूहों या कुतरकर खानेवाले जीवों से दूर का भी संबंध न रखते हुए भी संख्या में उन्हीं की तरह बढ़े-चढ़े हुए हैं। तारीफ़ की बात तो यह है ये कि सब के सब हमारी ही तरह स्तनपोषी जीव हैं !

अंडा देनेवाले विचित्र स्तनपोषी—'बत्तखचोंचा' और 'शूलधारी चींटीखोर'

हमने अब तक जिन स्तनपोषियों का परिचय तुम्हें कराया है, वे सब के सब जरायुज प्राणी हैं, अर्थात् अपनी संतान को पेट के भीतर गर्भाशय या जरायु में विकसित करके वे उन्हें सशरीर पैदा करते और तदुपरान्त स्तनों से दूध पिलाकर उनका पालन-पोषण किया करते हैं। परन्तु अब इसी स्तनपोषी-वर्ग के ऐसे दो अद्भुत प्राणियों की जानकारी हम तुम्हें कराने जा रहे हैं, जो अपनी संतान को पैदा तो करते हैं (गर्भाशय में पाल-पोसकर उपजाने के बजाय, अन्य सभी अंडज जीवधारियों की तरह) अंडों द्वारा, परन्तु इस तरह उन्हें उपजाने के बाद वे उनका पालन-पोषण स्तनपोषियों की तरह दूध पिलाकर करते हैं ! हाँ, यह बात अवश्य है कि अंडा देनेवाले इन अनूठे स्तनपोषियों का दुग्ध शेष स्तनपोषियों की तरह स्तनों से नहीं, बल्कि एक प्रकार के बहुत-से नन्हें-नन्हें छिद्रों से निकलता है, जो कि उनके पेट पर बने रहते हैं !

ऐसे केवल दो प्राणी इस समय पृथ्वी पर मौजूद हैं, जिनमें से एक का तो नाम 'बत्तखचोंचा' या 'प्लेटीपस' रक्खा गया है और दूसरा 'एकिड्ना' या 'शूलधारी चींटीखोर' कहलाता है। प्रथम जंतु लगभग उन्नीस-बीस इंच लंबा एक भौंडा-सा जानवर होता है, जिसका बदन भूरे रंग के घुँघराले घने ऊनी बालों से ढका रहता है। इसका नाम 'बत्तखचोंचा' इसलिए पड़ गया है कि लगभग ढाई इंच लंबी और दो इंच चौड़ी इसकी चोंच बत्तखों की-सी चपटी होती है। यह प्राणी केवल ऑस्ट्रेलिया और टस्मानिया ही में मिलता है। न केवल इसकी चोंच ही जलपक्षियों की-सी होती है, बल्कि इसके पैर भी तैरने के लिए उपयोगी या जालदार होते हैं ! अंडा देनेवाला यह जीव केवल नदियों ही के तट पर रहता है। वह पानी में प्रवेश करके नदियों के तले पर के कीचड़ को अपनी चपटी चोंच से उलट-पलट डालता और उनमें के कीड़ों, केंचुओं तथा छोटे-छोटे घोंघों आदि को बटोरकर उन्हें अपने गालों के भीतर बनी हुई विशेष प्रकार की थैलियों में भर लेता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। अपने पंजों के मज़बूत नाखूनों द्वारा वह तेज़ी से मिट्टी खोद लेता है। वह बिल बनाकर उसमें रहा करता है और अपने शत्रुओं को धोखा देने के लिए उस बिल में कुछ झूठे सुरंगनुमा रास्ते भी बनाता है, जिससे कि वे उसका पता न पा सकें। इन बिलों का असली रास्ता पानी के भीतर ही रहता है और ये तीस-तीस फ़ीट तक लंबे होते हैं। इन्हीं में रहकर मादा एक से तीन तक अंडे देती और उन्हें सेती है। अंडों से बच्चे पैदा हो जाने पर मादा उन्हें अपनी दुम से दबाकर पेट से चिपकाये रहती है, ताकि वे उसके छिद्रों में से निकलते हुए दूध को पी सकें। ये प्राणी ज़बर्दस्त तैराक और गोताखोर होते हैं और इनकी एक विशेषता यह होती है कि नर के पिछले पैर की जाँघ में एक खोखला-सा कड़ा शूल-सा होता है, जो कि इनके बदन में स्थित विष-ग्रंथियों से संबद्ध होता है। यह शूल इस जंतु का एक भयंकर शस्त्र है!

इस वर्ग का दूसरा प्राणी—'शूलधारी चींटीखोर' या 'एकिड्ना'—भी ऑस्ट्रेलिया का ही निवासी है। यह भी एक अंडा देनेवाला स्तनपोषी है। बालों के बजाय इसका बदन 'साही' या 'काँटाचूहे' की भाँति एक प्रकार के तीखे शूलवत् कड़े काँटों से ढका रहता है। यह जीवधारी संकट का सामना पड़ने पर काँटा-चूहे या साल की भाँति अपने सारे बदन को आपस में कुंडलाकार समेटकर गेंद का-सा बन जाता है! इसका मुँह ठीक चींटीखोरों जैसा लंबी थूथनवाला होता है और उन्हीं की-सी चिपचिपी इसकी जीभ भी होती है। यह सारी योजना कुदरत ने इस प्राणी में इसलिए की है कि इसका मुख्य आहार चींटी, दीमक आदि ही है। परंतु हमारे लिए तो इसका महत्त्व इस बात में है कि यह एक ऐसा अंडज जीव है, जो अंडज होकर भी बच्चों को, अंडों से बाहर निकलने पर, अपने बदन में बनी हुई एक थैली में रक्खे रहता है, जहाँ कुछ हफ़्तों तक वह उनका पालन-पोषण करता है। 'साही' आदि की तरह यह प्राणी भी बिल बनाकर रहता है और अपने पंजों से बड़ी तेज़ी के साथ ज़मीन खोद डालता है।

बच्चों को पेट की जेबनुमा थैली में लिये रहनेवाले स्तनपोषी—कोआला, ओप्पोसुम, कंगारू

अब तुम्हें स्तनपोषी-समुदाय के कतिपय ऐसे अजीब प्राणियों का हाल हम सुनाना चाहते हैं, जो इसलिए अन्य सभी जीवधारियों से विचित्र माने जा सकते हैं कि प्रसव करने के बाद संतान को एक उम्र तक, जब तक कि वह दौड़ने-फिरने लायक़ नहीं हो जाती, ये अपने पेट के ऊपर बनी हुई एक तरह की जेबनुमा थैली में बिठाये फिरते हैं। इस वर्ग का सबसे मशहूर प्राणी तो निस्संदेह 'कंगारू' है, जो केवल ऑस्ट्रेलिया ही में पाया जाता है और प्रायः हर बड़ी जंतुशाला में देखा जा सकता है। परन्तु इसी वर्ग में दो उल्लेखनीय जीव और भी हैं। इनमें से एक तो ऑस्ट्रेलिया ही का निवासी, वृक्षों पर चढ़कर रहनेवाला, भालू की-सी शक्ल का वह छोटा-सा अनोखा प्राणी है, जिसकी तस्वीर पृ० ७७ के चित्र के मध्य भाग में दिग्दर्शित है। दूसरा 'ओप्पोसुम' नामक एक छोटा-सा अजीब जानवर है, जोकि केवल अमेरिका ही में मिलता है।

कोआला आकार में ढाई फ़ीट लंबा घने बालवाला एक जानवर है। इसके कान भालुओं के-से, बहुत बड़े, गोल और बालों के गुच्छों से छाये हुए रहते हैं, तथा पैर बहुत छोटे और तोतों की-सी उँगलियोंवाले होते हैं। दुम इसके बिल्कुल ही नहीं होती। बदन का रंग सलेटी-सा होता है और समूर बहुत घना पाया जाता है। खिलौने जैसे ये जीव ऑस्ट्रेलिया के युकैलिप्टस वृक्ष की निचली डालियों पर चढ़कर दिन भर सोये रहते हैं और शाम होने पर उछलने-कूदने लगते हैं। वे आसानी से चार-पाँच फ़ीट तक ऊँचे उछल जाते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
हैं। ये प्राणी एक बार में केवल एक ही बच्चा देते हैं और पैदा होने के तीन महीने बाद तक अपने उस नन्हें-से शिशु को पेट के बाहरी हिस्से में बनी हुई एक जेबनुमा थैली में लिये रहते हैं। तदुपरान्त जब बच्चा कुछ बड़ा हो जाता है तो वह मा के गले में हाथ डाले उसकी पीठ पर चिपका रहता है। अपनी विनोदपूर्ण मुद्रा और बच्चों की-सी भावभंगी के कारण यह नन्हा-सा पशु बहुत ही अधिक प्यारा जान पड़ता है।

'ओप्पोसुम' बड़े नर्म बालवाला, हमारी घरेलू बिल्ली के बराबर, एक वृक्षवासी स्तनपोषी है, जो एक बार में पाँच से चौदह तक की संख्या में बच्चे देता है और सो भी साल में दो-तीन बार ! ये बच्चे बहुत ही अपरिपक्व अवस्था में पैदा होते हैं और जनमते ही रेंगकर मादा के पेट पर बनी हुई जेबनुमा थैली में घुस जाते हैं। वहीं मा का दूध पीते हुए वे बड़े होते हैं। इस जीवधारी की दुम लगभग फुट भर लंबी होती है, जिसे नई दुनिया के वानरों की तरह पेड़ों की डालियों में लपेटकर वह उससे पाँचवें हाथ का-सा काम लेता है। प्रायः इसके दस-बारह बच्चे अपनी छोटी-छोटी दुमें मा की दुम से लिपटाये उसकी पीठ पर चढ़े रहते हैं और देखने में बड़े भले जान पड़ते हैं ! यह जीव एक रात्रिचर प्राणी है। वह दिन में किसी वृक्ष की कोटर या डालियों की झुरमुट में छिपा सोया रहता है। फलों से लेकर कीड़े, अंडे, छोटे-छोटे पक्षी और जानवर तक सभी कुछ यह खा लेता है। इस बेचारे के अनेक जानी दुश्मन हैं—जैसे, उल्लू, लोमड़ियाँ, भेड़िए और बनबिलार। नीग्रो लोग इसका शिकार भी करते हैं। इसकी एक सबसे अनोखी विचित्रता यह है कि जब यह शत्रु से भयग्रस्त होता है या अपने सामने संकट देखता है तो लोमड़ी की तरह एकदम मुर्दा-सा बनकर ज़मीन पर लेट जाता है और ज्योंही मौक़ा पाता है उठकर भाग खड़ा होता है ! इसका मुँह भी लोमड़ियों का-सा लंबा व नुकीला होता है। यह केवल उत्तरी अमेरिका ही में पाया जाता है।

ऑस्ट्रेलिया का सबसे प्रसिद्ध जीव 'कंगारू', जोकि बच्चों को पेट की जेबनुमा थली में रखनेवाले स्तनपोषियों में सबसे बड़ा और सुविकसित प्राणी है, देखने में एक हास्यास्पद बेडौल पशु जान पड़ता है !

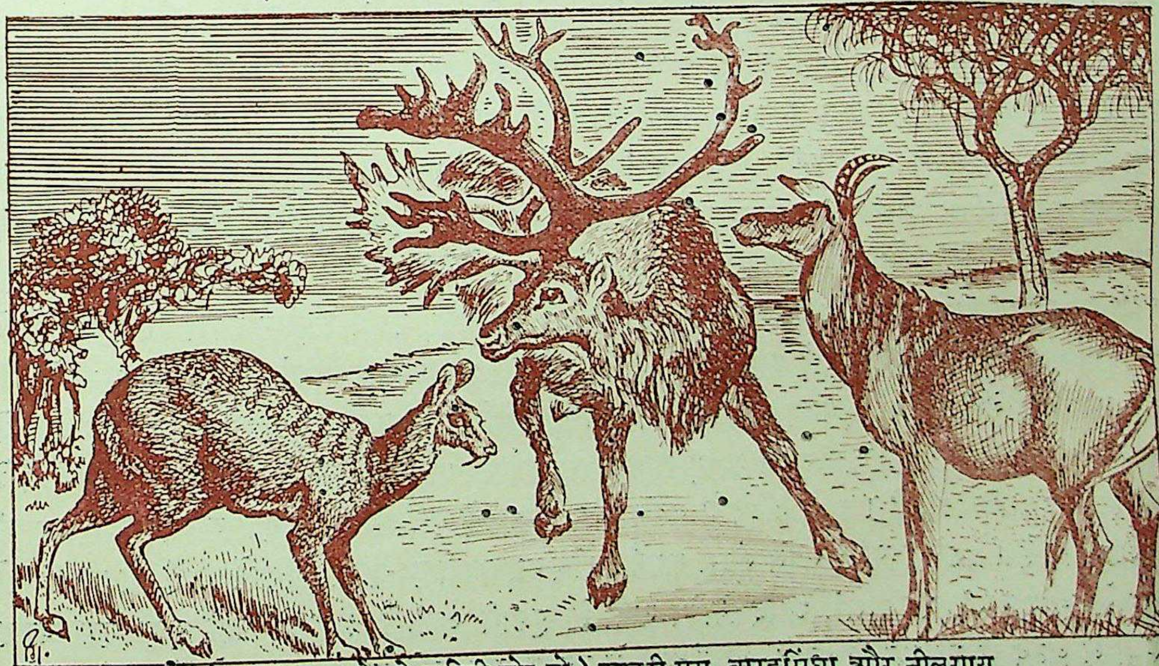
(क्रमशः बाइं ओर से दाहिनी ओर को) कस्तूरी-मृग, बारहसिंघा और नीलगाय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके शरीर का अगला हिस्सा तो कुत्ते के-से डीलडौल का और पिछला धड़ मानों ढोरों की देह जैसा भारी होता है। इस पर उसके पृष्ठभाग से जुड़ी रहती है एक बहुत मोटी, लंबी एवं वज़न के मारे ज़मीन ही पर पड़ी-सी रहनेवाली अजीब दुम, जिससे यह पशु क्या चलते और क्या उठते-बैठते समय मानों एक तीसरी टाँग की भाँति सहारा लिये रहता है! कंगारू की दो जातियाँ मिलती हैं—एक ललछौंह-भूरी, दूसरी हलके राखी वर्ण की। राखी वर्ण का कंगारू बहुत बड़ा होता है। उसके प्रौढ़ नर तो पाँच फ़ीट तक ऊँचे और ढ़ाई मन वज़नी होते हैं! बेडौल बदन का होने पर भी कंगारू बड़ी ज़बर्दस्त छलाँग मारनेवाला प्राणी है। यह साधारणतया दुम घसीटता हुआ-सा उँकड़ू-उँकड़ू और धीरे-धीरे चलता है, परन्तु जब वह भड़क उठता है तो एकदम पचीस-तीस फ़ीट लंबी छलाँग भरने लगता है! उस समय वह सात-आठ फ़ीट ऊँची बाड़ को भी आसानी से कूद जाता है। ओपोस्सुम की तरह इसके भी पेट पर बच्चों को रखने के लिए एक जेबनुमा थैली रहती है! इसके नवजात शिशु पैदा होते ही रेंगकर इसमें जा घुसते हैं, यद्यपि उस समय वे केवल इंच भर लंबे और नितान्त निर्लोम एवं दृष्टिहीन होते हैं। इसी थैली की दीवार में स्थित स्तनों से दूध पी-पीकर वे बड़े होते हैं। उस थैली से पहलेपहल चार महीने बाद वे बाहर निकलते हैं। कँगारू एक वनस्पतिभोजी प्राणी है। वह स्वभाव से भीरु होता है। उसकी आदत दिन भर पड़े रहकर सुस्ताते रहने और केवल सुबह-शाम आहार आदि की पूर्त्ति के हेतु हिलने-चलने की होती है। इस प्राणी की देखने, सुनने और सूँघने की शक्ति काफ़ी तीव्र होती है। प्रायः ये आपस में मनुष्यों की तरह बाक़ायदा 'घूँसेबाज़ी का खेल' खेलते देखे जाते हैं! उस समय अपने प्रतिद्वन्द्वी को पिछली टाँगों से लात मारने से भी वे नहीं चूकते!

मृग-समुदाय—भाँति-भाँति के हिरन, बारहसिंघे, नीलगाय, आदि

थलचरों की दुनिया में एक बहुत बड़ी तादाद मृग-समुदाय के पचीसों तरह के उन जानवरों की है, जिनमें से अधिकतर से मनुष्य अपने पालतू ढोरों आदि की तरह आदिकाल ही से सुपरिचित रहा है। कारण, यही उसके प्रधान शिकार के पशु रहे हैं। हमारे अपने देश में तो मृग-परिवार के अनेक पशुओं के नाम ज़माने से मानों घर-घर की वस्तु बनकर न केवल लोगों की ज़बान ही पर बसे हुए हैं, प्रत्युत साहित्य, काव्य और कला के प्राङ्गण में भी वे अमिट रूप से अंगीकृत हो चुके हैं। मृगों के झुंड के बिना हम प्रायः अपने पूर्वज ऋषि-मुनियों के तपोपुंज आश्रमों और राजन्यों के क्रीड़ा-उपवनों की कल्पना ही नहीं कर पाते! और कवियों तथा कलाकारों को तो हमारे यहाँ पग-पग पर इन लुभावने पशुओं की कमनीय आकृतियों को अपने मानस-पटल पर अंकित रखने की सदैव आवश्यकता पड़ती रही है। कारण, उन्हीं के सुंदर नयनों की कसौटी पर वे सुंदरियों के कटीले नेत्रों की लुनाई परखते रहे हैं! इन मृगों की अनेक जातियाँ संसार के विविध भागों में, ठंडे ध्रुवप्रदेशों से लेकर ठेठ विषुवत् उष्ण प्रदेशों तक, फैली हुई हैं। उनमें से कई यदि लंबे-चौड़े घास के मैदानों की ही निवासिनी हैं तो दूसरी ऊबड़-खाबड़ वन्य पर्वतीय प्रदेशों और बहुत ऊँचाई के बर्फ़ीले क्षेत्रों में भी विचरते पायी जाती हैं। इनमें देखने में सबसे भव्य और बड़े डीलडौल के मृग बारहसिंघे और उसकी बिरादरी के हैं। इसके विपरीत सबसे सुंदर, कमनीय और मनभावनी मृग-जातियाँ हिरनों की हैं, जो हमारे अपने देश में 'कृष्णसार', 'चिकारा', आदि विविध नामों से पुकारी जाती हैं। हमारे यहाँ कुछ मृग बारहसिंघों के कुटुंब के भी ऐसे मिलते हैं, जो सुंदरता में सबको मात करते हुए-से जान पड़ते हैं। 'चीतल' ऐसा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
ही एक प्रसिद्ध मृग है, जिसकी ललछौंह-बादामी रंग की सफ़ेद चित्तीदार खाल की बड़ी क़द्र की जाती है। बारहसिंघा-वर्ग के अन्य प्रख्यात भारतीय मृग 'साँभर', 'माहा', 'हंगल', 'पाढ़ा', आदि हैं, जिनमें डीलडौल और सींगों के फैलाव के लिहाज़ से 'साँभर' सबसे बड़ा है। इसके प्रौढ़ नर का क़द कंधों की जगह साढ़े चार फ़ीट से भी अधिक और लंबाई सात-आठ फ़ीट तक की होती है। वज़न में ये चार-पाँच मन तक के हो सकते हैं। ये बारहसिंघे इसलिए कहलाते हैं कि इनके नरों के मस्तक पर उगे हुए गज़ भर लंबे सींगों में वृक्षों की डालियों की-सी शाखें फूटी रहती हैं। ये शाखें 'साँभर' में तो प्रति ओर तीन ही होती हैं, परन्तु 'माहा' और 'हंगल' में वे निश्चय ही प्रति ओर छः-छः अर्थात् कुल मिलाकर बारह की संख्या तक पहुँची हुई रहती हैं। इन सींगों को ये प्राणी समय-समय पर उतार देते या गिराते भी पाये जाते हैं, जिनकी जगह पर कालान्तर में नए सींग निकल आते हैं! 'हंगल' केवल काश्मीर के शीत वन्य प्रदेशों ही में पाया जाता है। यह साँभर से भी भारी वज़न का प्राणी होता है। 'माहा' हिमालय की तराई और देश के मध्यवर्त्ती पर्वतीय वन्य प्रदेशों का वासी है। इन सभी पशुओं को झुंडों ही में रहने की आदत है, परन्तु जोड़ा बँधने से पहले अकेले भी भटकते हुए ये देखे जा सकते हैं। अपने वज़नी शरीर के बावजूद ये तेज़ दौड़नेवाले पशु हैं। जब ख़तरे का सामना होता है तो नर साँभर एक अजीब तरह की हुँकार-सी आवाज़ करके पैरों को ज़ोरों से पटकते हैं। कहते हैं, बाघ धोखा देने के लिए इनकी इस आवाज़ की हूबहू नक़ल किया करता है!

भारतीय मृगों की छोटी जातियों में 'चिकारा' अपनी बड़ी-बड़ी सुंदर आँखों के लिए प्रख्यात है और साधारण 'कृष्णसार हिरन' अपनी कलछौंह बादामी रंग की खाल तथा बल खाये हुए तीखे लंबे तुरहीनुमा सींगों के लिए! ये हिरन ज़बर्दस्त चौकड़ी भरनेवाले द्रुतगामी पशु होते हैं। हमारे यहाँ के अन्य प्रख्यात मृगों में हिमालय की ऊँची श्रेणियों में पाये जानेवाले 'कस्तूरी-मृग' का उल्लेख आवश्यक है, जिसकी नाभि से 'कस्तूरी' या मुश्क नामक सुगंधित पदार्थ मिलता है। इसके मुँह से दो दंतियाँ-सी निकलीं रहती हैं!

भारत से बाहर भी, बारहसिंघों की अनेक प्रसिद्ध जातियाँ नई-पुरानी दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों में प्राचीन-काल ही से फैली हुई हैं, जिनमें उत्तरी अमेरिका के शीतवनों का एकछत्र सम्राट् 'मूज़', उसी का एक उत्तर-योरपीय विलुप्तप्राय बंधु 'एल्क', उत्तरी ध्रुव-प्रदेशों के टंड्रा-क्षेत्रों के निवासी 'केरीबू' और 'रेनडीयर' तथा कनाडा व संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका) के पश्चिमी इलाक़ों का अधिपति 'वापिती' या 'अमरीकी एल्क', आदि सबसे बड़ी और विख्यात बिरादरियाँ हैं। 'मूज़' देखने में बड़ा भौंडा होता है, यद्यपि उसके छः फ़ीट फैलाव के शाखदार सींग ताड़पत्र की-सी अपनी विचित्र रचना के कारण आकर्षक कहे जा सकते हैं। वह डीलडौल में पाँच से सात फ़ीट तक ऊँचा होता है! ध्रुवप्रदेशीय बारहसिंघों की सबसे बड़ी ख़ूबी यह होती है कि एक तो उनमें नर-मादा दोनों ही में शाखदार सींग होते हैं, दूसरे उनमें से कई ध्रुवप्रदेशीय लोगों द्वारा पालतू भी बना लिये गये हैं। वे उनकी स्लेज-गाड़ियाँ आदि खींचने के काम में लाये जाते हैं। ये प्राणी झुंडों ही में रहने के आदी हैं और जोड़ा बाँधने की ऋतु में इनके नर मादाओं के लिए आपस में सिर टकरा-टकराकर तथा सींग उलझाकर प्रचंड द्वन्द्व-युद्ध करते हैं।

डीलडौल के लिहाज़ से बारहसिंघों के बाद मृग-समूह के ही एक निकट के नातेदार भारतीय 'नीलगाय' का स्थान सर्वोपरि है, जो गौ-वर्ग और मृग-समुदाय के बीच की कड़ी जैसे एंटीलोप-परिवार नामक एक वर्ग का प्रतिनिधि प्राणी है। यह हृष्ट-पुष्ट पशु निलछौंह श्यामल-राखी रंग का होता है, इसीसे 'नीलगाय'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

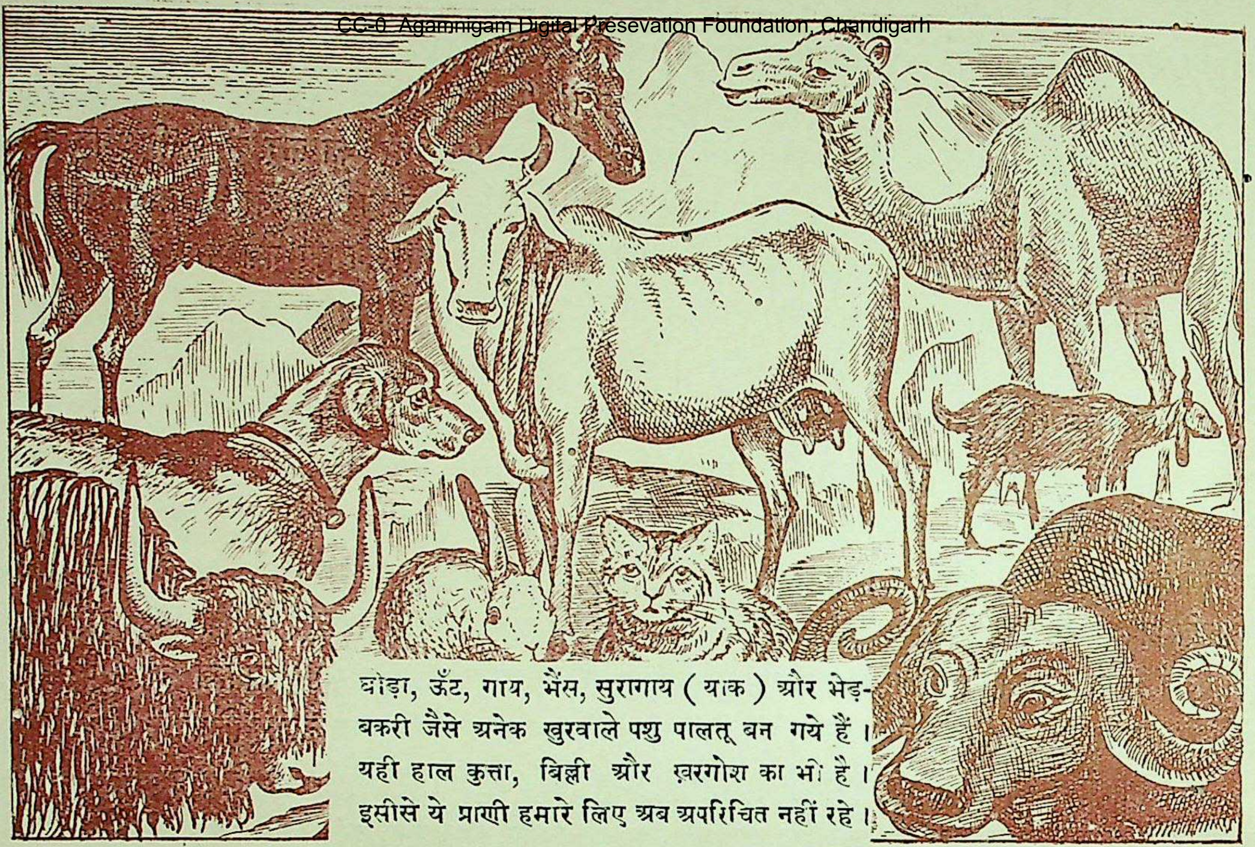

घोड़ा, ऊँट, गाय, भैंस, सुरागाय (याक) और भेड़-बकरी जैसे अनेक खुरवाले पशु पालतू बन गये हैं। यही हाल कुत्ता, बिल्ली और ख़रगोश का भी है। इसीसे ये प्राणी हमारे लिए अब अपरिचित नहीं रहे।

कहलाता है। इसके आठ-नौ इंच लंबे तीखे सींग होते हैं और ग्रीवा पर घोड़े के बालों की-सी अयाल पायी जाती है। यह खुरदार जंगली प्राणी झुंडों में रहता और खेती को बहुत नुकसान पहुँचाता है। एंटीलोप-वर्ग के दूसरे अनेक पशु भी मिलते हैं, पर स्थानाभाववश यहाँ उन सबका विवरण देने से हम लाचार हैं।

तीन अनोखे शफ़वर्गीय,—'ज़ेबरा', 'लामा', और 'तापीर'

मृग-परिवार के बाद, थलचरों के कुछ छुटपुट अनोखे नमूनों की जानकारी हम तुम्हें यहाँ कराना चाहते हैं। इनमें से तीन अनूठे पशु 'ज़ेबरा', 'लामा' और 'तापीर' हैं। दर्शनीयता के लिहाज़ से इनमें ज़ेबरा निश्चय ही सबसे बाज़ी मार ले जा सकता है। इस खच्चरनुमा पशु की मुख्य विशेषता है इसके बदन पर की चौड़ी-चौड़ी सफ़ेद और काली समानान्तर-सी पट्टियों द्वारा रचित वह खुशनुमा चित्रकारी, जो किसी चितेरे के हाथों बनाई गई-सी जान पड़ती है! किसी बड़े गदहे के आकार का यह पशु केवल अफ्रीका ही में जंगली स्थिति में पाया जाता है। यह झुंडों में रहता है और अपनी इस विचित्र वेशभूषा के कारण अँधेरे में या चाँदनी रात में पेड़ों की छाया में इस तरह घुल-मिल जाता है कि देखने पर समीप से भी नहीं देख पड़ता! इसके सबसे बड़े शत्रु सिंह आदि हिंसक शिकारी जीव हैं।

दूसरे विचित्र पशु 'लामा' को देखते ही एक साथ ही हमें ऊँट, जंगली भेड़ और मृग-परिवार के पशुओं की याद आ जाती है। ऊननुमा सफ़ेद बालों से ढका, ऊँट की बिरादरी का दूर का यह नातेदार केवल दक्षिणी अमेरिका के पर्वतीय क्षेत्रों में ही पाया जाता है। इसकी कुछ जातियाँ वहाँ पालतू भी बना ली गई हैं, जो सवारी या सामान ढोने के काम में लायी जाती हैं। यह विचित्र पशु ऊँट की-सी अपनी लंबी गरदन को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऊँची तानकर जब देखता है तो बड़ा ही प्रभावोत्पादक जान पड़ता है ! इसके कान लंबे और ऊपर उठे हुए, पैर अपेक्षाकृत छोटे तथा दुम भी बहुत छोटी होती है। ऊँट की जाति का होकर भी इसकी पीठ पर कूब नहीं होती। इसकी एक उपजाति 'अल्पाका' कहलाती है, जिसका ऊन बहुत ही उम्दा और लंबा होता है। इस प्राणी की एक विचित्र आदत यह है कि जब यह किसी से अप्रसन्न होता है तो उसके चेहरे पर अपना थूक उड़ाता है, जो बहुत ही बदबूदार होता है ! इसके मारे कोई भी उसके पास जाना पसंद नहीं करता।

उपर्युक्त दोनों पशु—ज़ेबरा और लामा—देखने में जितने दर्शनीय होते हैं, पृ० ८३ के चित्र में उन्हीं के साथ चित्रित तीसरा पशु 'तापीर', जो मध्य एवं दक्षिणी अमेरिका के अलावा एशिया के मलय प्रदेश में भी मिलता है, उतना ही अधिक भौंडा जानवर होता है। यह खुरदार प्राणी एक ओर तो बिना सूँड़ के हाथी जैसे अपने लँबोतरे चेहरे और कटी हुई-सी दुम के कारण बड़ा अजीब-सा लगता है। और दूसरी ओर, उसकी एशियाई जाति के शरीर पर जो दो विभागों में बँटे हुए-से अलग-अलग वर्ण देख पड़ते हैं, उनके कारण भी बड़ा ही बेतुका जान पड़ता है। उसके बदन की इस दोहरी रंग की पोशाक का नज़ारा यह होता है कि उसका सिर, चारों पैर, तथा बदन का अगला और पिछला हिस्सा तो एकदम काला तथा कंधों से पुट्ठों तक का धड़ का बीच का सारा हिस्सा ऐसा सफ़ेद रहता है, मानों उतना अंश किसी ने सफ़ेदी से पोत दिया हो !

भाँति-भाँति के पालतू पशु—घोड़ा, ऊँट, गाय, भैंस, सुरागाय, बकरी, भेड़ आदि

खुरवाले प्राणियों में से बहुत-से पशुओं को, उनकी उपयोगिता के कारण, मनुष्य ने पालतू बना लिया है, इसलिए वे हमारे लिए इतने अधिक जाने-पहचाने और आमफ़हम जैसे बन गये हैं कि उनके संबंध में हमारे मन में आश्चर्य या वैचित्र्य का कोई भाव शेष नहीं रह गया है। ऐसे प्राणियों में घोड़ा, ऊँट, गदहा, गाय, सुरागाय, भैंस, बकरी, भेड़, पालतू सुअर, आदि प्रमुख हैं। इनमें से कई सवारी और बोझा ढोने के लिए, कुछ खेत आदि को जोतने के लिए, कुछ एक दूध-घी आदि के लिए और दूसरे कई मांस तथा ऊन आदि के लिए पाले जाते हैं। इनमें से कुछ जानवर (जैसे भैंसा, सुअर, भेड़-बकरी और गदहा) जंगली दशा में भी अभी मिलते हैं, परन्तु ऊँट और घोड़े जैसे प्राणी तो एक ज़माने से सब के सब पालतू बना लिये जा चुके हैं। यों कहने के लिए, कुछ घोड़े अब भी अफ्रीका में वन्य अवस्था में स्वच्छन्द विचरण करते मिलते हैं, परन्तु वे वास्तविक जंगली पशु नहीं हैं। हाँ, गौ-जाति की (गौर, गयाल आदि), और भेड़-बकरी वर्ग की (पासंग, साकिन, मारखोर, उरियल, न्यान आदि) अनेक दिलचस्प क़िस्में अब भी निपट जंगली

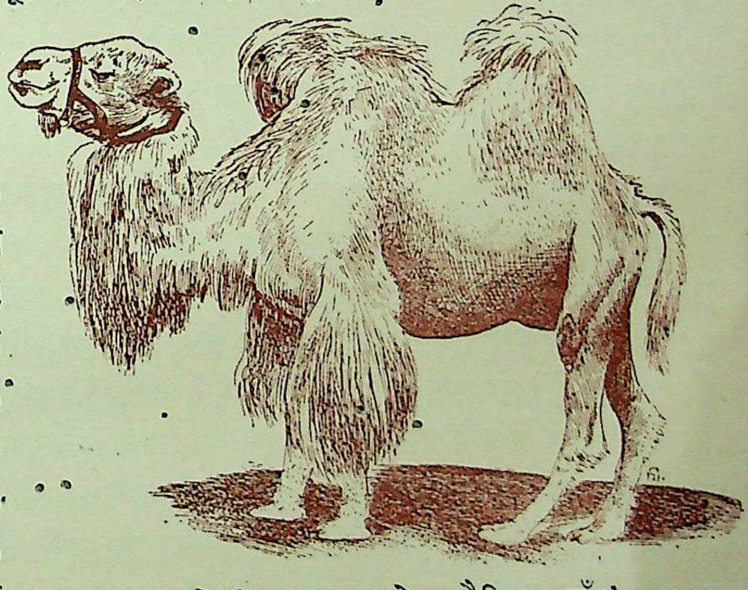

दोहरी कूबवाला अनोखा 'बैक्ट्रियन ऊँट'
ऊँटों की यह उपजाति मध्य एशिया के गोबी-रेगिस्तान में मिलती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अवस्था में पाई जाती हैं। इनमें से कई हमारे अपने देश में भी वन्य क्षेत्रों में मिलती हैं। सबसे पहले हम गौ-समूह ही के कुछ जंगली नमूनों को लें। ये हमारे यहाँ 'गौर', 'गयाल' आदि नामों से पुकारे जाते हैं। ये सात-आठ से नौ-दस फ़ीट तक लंबे और औसतन् पाँच-छः फ़ीट तक ऊँचे बड़े ही गठीले बदन के पशु होते हैं, जो मिश्रित भूरे-सफ़ेद एवं मटमैले कजछौंह रंग के पाये जाते हैं। इनमें से गौर छेड़ देने पर बेतरह बिगड़ उठते हैं और भयंकर रूप से हमला कर बैठते हैं। गयाल गौर की अपेक्षा अधिक सरल पशु होते हैं। इन्हें कहीं-कहीं पालने की भी सफल कोशिशें हुई हैं। गाय-बैलों के इन निकट के संबंधियों की तरह, हमारे दूसरे प्रमुख दूध देनेवाले प्राणी 'भैंस' की भी कतिपय जातियाँ भारत तथा इससे बाहर के देशों में जंगली अवस्था में अभी मिलती हैं। स्वयं हमारे अपने देश का इस वर्ग का एक प्रसिद्ध जंगली प्राणी 'अरना-भैंसा' है, जो हिमालय की तराई के इलाक़े के अलावा मध्यप्रदेश एवं बंगाल तथा उड़ीसा के कतिपय क्षेत्रों में भी पाया जाता है। आकार-प्रकार में यह सामान्य पालतू भैंसों से बहुत बड़ा और चौड़े सींगोंवाला प्राणी होता है। यह दलदली घास के क्षेत्र बहुत ज़्यादा पसंद करता है और अक्सर कीचड़ में लथ-पथ रहता है। इसका मिज़ाज बहुत गरम होता है और बिगड़ने पर तेंदुओं या घायल शेर तक पर हमला बोल देने में उसे हिचक नहीं होती। गयाल और गौर की तरह यह भी गिरोह में ही रहने का आदी है। इसी के दूर के नातेदार कतिपय जंगली भैंसे अफ़्रीका और फ़िलीपाइन तथा सेलीबीज़ द्वीपों में भी मिलते हैं। परन्तु गौ-वर्ग के इन प्राणियों में सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रचंड अमेरिका के जंगली 'बिसन' नामक वे पशु हैं, जो किसी समय योरप में भी पाये जाते थे। निरंतर शिकार के कारण ये क्रमशः अमेरिका से अब लगभग लुप्त-से हो चुके हैं। इन भारी-भरकम डील के ताक़तवर जानवरों का सामने का हिस्सा बहुत बड़ा और पुरानी दुनिया के गौवंशियों से निराला होता है। तुम्हें यह जानकर कुतूहल होगा कि तिब्बत का प्रसिद्ध पालतू चौपाया 'याक' भी विशाल गौ-वंश का ही एक पशु है। अतः इसका भारतीय नाम 'सुरागाय' या 'चँवरी गाय' एकदम उपयुक्त और सार्थक नाम है। इस दूध देनेवाले पशु की मुख्य विशेषता उसके सारे बदन पर से चँवर की तरह आजू-बाजू लटके हुए काले-भूरे लंबे बाल एवं लगभग गज़ भर की अर्द्ध-वर्तुलाकार परिधि में फैले हुए उसके लंबे सींग हैं। शीतप्रदेश का यह वासी सोलह हज़ार फ़ीट ऊँचे तिब्बती पठार का सवारी और असबाब उठानेवाला एकमात्र पशु है।

उपर्युक्त गौ-वंशियों ही की तरह पोले सींगवाली अनेक पशु-जातियाँ भेड़-बकरी-वर्ग के उन चित्र-विचित्र प्राणियों की हैं, जो अपने क़ीमती ऊन, बाल, खाल तथा मांस आदि की उपयोगिता के लिहाज़ से आदि-काल ही से मनुष्य द्वारा कसरत से पाली-पोसी एवं शिकार की जाती रही हैं। जंगली अवस्था में पाये जाने-वाले इस वर्ग के नमूनों में सबसे प्रसिद्ध एक ओर तो आल्प्स, पिरेनीज़ आदि योरपीय पर्वतीय क्षेत्रों, मध्य एशिया, दक्षिणी अरब तथा अबीसीनिया में पाये जानेवाले 'आइबेक्स'; कॉकेशश, एशिया माइनर, सिंध और बलूचिस्तान में पाये जानेवाले 'पासंग'; तथा मध्य एशिया एवं अफ़ग़ानिस्तान आदि में पाये जानेवाले 'मारखोर' नामक बकरे हैं। दूसरी ओर हैं, मध्य एशिया के इलाक़ों में पायी जानेवाली 'उरियल'; सार्डिनिया और कॉर्सिका की 'मूफ़्लान'; और मंगोलिया, तिब्बत तथा पामीर-क्षेत्र की 'अर्गली' आदि भेड़ें, जिनमें से कई पालतू बनाई जा चुकी हैं। इन सब पशुओं के सींग तरह-तरह के आकार के घुमावदार, बल खाये हुए और पेंचदार-से होते हैं! इन्हीं की उपजातियाँ 'शेमॉय', 'गुरल', आदि हैं, जो अपने उत्तम चमड़े के लिए विख्यात हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पक्षियों की दुनिया

आकर्षण और सुन्दरता के लिहाज़ से, सारे जीव-जगत् में जितनी गहरी दिलचस्पी आम तौर पर हमें पक्षियों के प्रति होती है, उतनी जानवरों के दूसरे किसी भी वर्ग के प्रति नहीं ! चिड़ियों को प्रकृति की महान् जंतुशाला में वही ललित और मनमोहक स्थान प्राप्त है, जो कि वनस्पतियों की दुनिया में फूलों का है ! फूलों की तरह, ये रंग-बिरंगे जीव भी हमारे लिए ज़िन्दगी की सारी मधुरता या मिठास, सरसता और सुकुमारता, ताज़गी और रंगीनी, तथा आज़ादी और रोशनी के प्रतीक जैसे हैं । दरअसल इन्हें यदि हम 'परदार उड़ते हुए फूल' ही कहें तो बेजा न होगा। साथ ही इनकी मीठी बोलियों के लिए इन्हें 'ज़िन्दा बाजों' या चलती-फिरती संगीत की धुनों की भी उपाधि दी जा सकती है ! सच तो यह है कि यदि ये पखेरू कदाचित् न हों तो हमारी यह दुनिया एकदम् फीकी, नीरस और सूनी-सी मालूम देने लगेगी ! भला, दूसरा कौन वह होगा जो इनकी तरह सुबह पौ फटते ही अपनी मंगल-धुन से नित ही अँधेरे की विदाई और रोशनी के आगमन की आशाभरी शुभ सूचना हमें दे पाएगा ? और कौन साँझ पड़ते ही, अपनी चहकार से पेड़ों को मानों तरह-तरह के बाजों में बदलकर, हमारे थके-माँदे या हारे हुए दिलों में उल्लास का वह सुर भर सकेगा ? भला, अन्य किसके बूते की बात है, जो हमारे बाग-बगीचों या जलाशयों की छबि में चुलबुलाती हुई ज़िन्दगी की वह मीठी हलचल और ताज़गी का भाव भर सके, जोकि केवल इन चिड़ियों ही की देन है ? और इनकी उस कभी भी खत्म न हो पानेवाली फुदुक-फुदुक तथा आसमान के नीले दामन में परियों की-सी थिरकन के मिस निरंतर जारी उनके रंगीन परों के साथ रोशनी की किरणों की अठखेलियों का वह जादुई नृत्य भी उनके सिवाय भला दूसरे किसके द्वारा कभी रचा जा सकेगा ? सचमुच ही हमारे ये पंखयुक्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

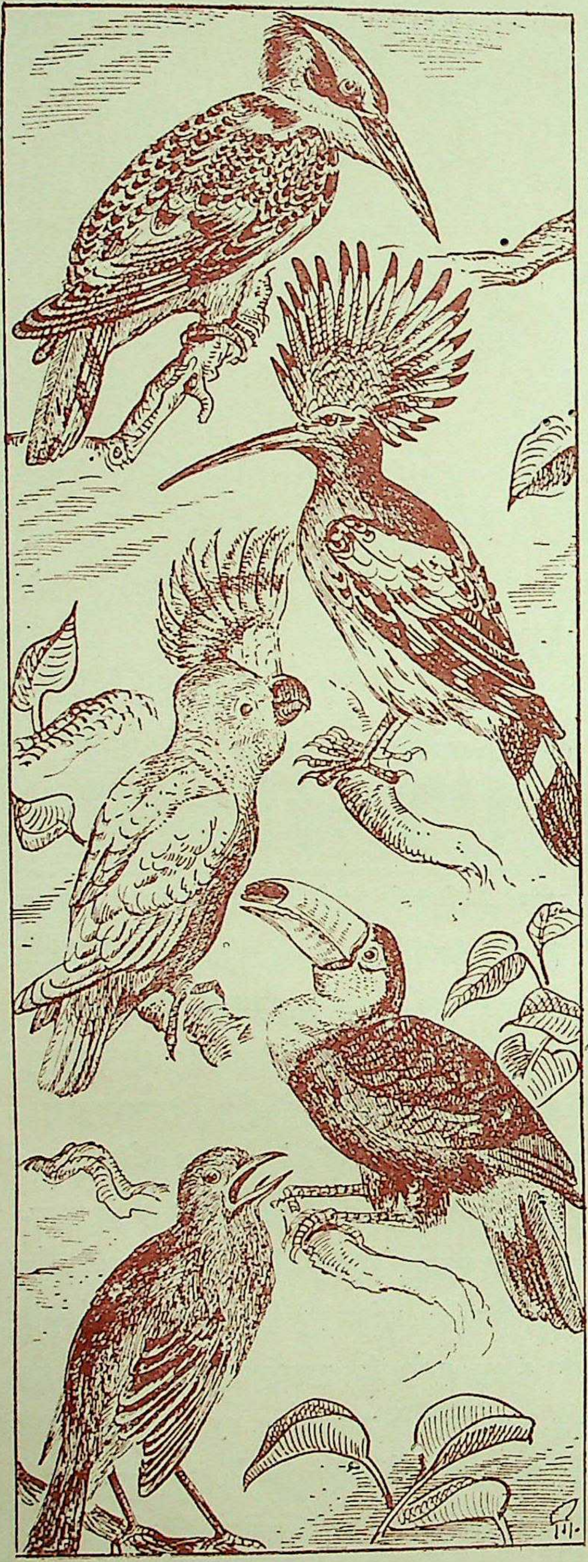

पक्षी जगत् के कुछ प्रसिद्ध नमूने—(क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर) कौड़िल्ला ; कठफोड़ ; काकातुआ ; टूकन ; और नाइटिंगेल नामक गानेवाली चिड़िया

पड़ौसी न केवल रंग-बिरंगे फूल-पत्तों के ही चिर सहचर हैं, बल्कि ये मुक्त नील गगन के विहारी, मनुष्यों की राग-द्वेष, हिंसा-प्रतिहिंसा और गंदगी से भरी हुई इस अंधकारपूर्ण दुनिया के लिए भी मानों एक स्वर्गीय ज्योति जैसे हैं। इसीलिए तो कोई भी सच्चा कलाकार उन पर लट्टू हुए बिना कभी नहीं रह सका, और कवियों की तो सदैव ही वे जी की कली खिलाते रहे ! ये आज़ाद मुसाफ़िर अपनी उन रहस्यभरी बोलियों द्वारा न जाने किन-किन अनजान परीलोकों की बात हमें सुना जाते हैं, और एक सँकड़े घिरौंदे-जैसी धरती से बँधी हुई हमारी इस स्वार्थ-सीमित दुनिया से क्षणभर के लिए हमारी निगाह खींचकर, नित ही कल्पना के परों पर, परे के उन दिव्य लोकों की ओर उड़ चलने की प्रेरणा हमें देते रहते हैं, जिनका कि पता शायद उन्हें ही होगा !

पक्षियों की चौदह हज़ार जातियाँ हैं !

कवियों एवं कलाकारों की भावनाओं की उपर्युक्त दुनिया से विदा होकर, पुनः जब हम विज्ञान के अपने धरातल पर वापस आ खड़े होते हैं तो जीव-सृष्टि के इन अनूठे पंखयुक्त प्राणियों की अलग-अलग बिरादरियों की बेशुमार संख्या का साक्षात्कार कर एकबारगी ही हमें अवाक् रह जाना पड़ता है ! कारण, जीव-वैज्ञानिकों के कथनानुसार अब तक ज्ञात पक्षियों की जातियों-उपजातियों की कुल तादाद चौदह हज़ार के आँकड़ों तक पहुँची हुई बताई जाती है ! इन विविध प्रकार के पक्षियों के चित्र-विचित्र वेश, उनके तरह-तरह के आकार-प्रकार और रहन-सहन की अपनी-अपनी खूबियों को देखकर, कलाकार कुदरत की अद्भुत कल्पना-शक्ति पर लट्टू हुए बिना हम नहीं रह सकते ! ऐसा मालूम देता है, मानों विविध जलचर-थलचर प्राणियों के हज़ारों चित्र-विचित्र नमूने बनाकर भी जब प्रकृति को तृप्ति न हो पाई तो अपनी कला की प्यास बुझाने के लिए उसने पक्षी-वर्ग के इन प्राणियों की सृष्टि का काम हाथ में लिया ! और कितने ही प्रकार के पहनावों की ईजाद करके आखिरकार उनके इन रंग-बिरंगे नमूनों का एक मेला-सा अपनी प्रयोगशाला में उसने लगा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिया ! भला, उनकी इन चौदह हज़ार बिरादरियों का विवरण यहाँ कैसे और किन शब्दों में दिया जाय ? यदि इनकी एक सूची या तालिका मात्र यहाँ दी जाय तो भी सैकड़ों पृष्ठ उससे भर सकते हैं ! अतः जैसा कि अन्य जीवधारियों के वर्गों के बारे में भी हमें करना पड़ा है, इन पंखदार प्राणियों के भी केवल कुछ चुने हुए दिलचस्प नमूनों का ही परिचय हम तुम्हें यहाँ करा सकेंगे, और सो भी अति संक्षेप में ! हाँ, जानकारी के लिए हम यहाँ उनकी इन बिरादरियों के उन विशाल महासमूहों की एक सूची दिये दे रहे हैं, जिनमें कि ये सब वर्गीकृत किये गये हैं । ऐसे कुल २५ समुदाय वैज्ञानिकों ने निर्धारित किये हैं, जो फिर से अलग-अलग वर्गों, उपवर्गों एवं परिवारों में पुनर्विभाजित हैं । परंतु सुविधा के लिए हम यहाँ इन समुदायों और वर्गों को केवल निम्नलिखित चौदह समूहों में ही दे रहे हैं:—

१. **दाँतवाले पक्षी**—इस वर्ग की मात्र तीन बिरादरियों का पता हमें प्रस्तर-विकल्पों से मिलता है । ये सब आदिम पक्षियों की जातियाँ थीं, जो अब लुप्त हो चुकी हैं। विगत एक प्रकरण में इनका हाल दिया जा चुका है।

२. **उड़ने से लाचार पक्षी**—इस समूह के चार बृहत् वर्ग हैं । ऐसे पक्षियों के पंख तो हैं, पर वे उड़ नहीं सकते । उदाहरणार्थ, शुतुर्मुर्ग, एमू, ही, कैसोवारी।

३. **गोताखोर या पनडुब्बे पक्षी**—इनके पैर झिल्लीदार होते हैं और बदन पानी के भीतर तैरने के लिए उपयुक्त होते हैं। उदाहरणार्थ, आँक, पेंग्वीन आदि।

४. **तैराक पक्षी**—इनके शरीर विशेष रूप से तैरने के लिए ही बने होते हैं । साथ ही ये समुद्र पर लंबी उड़ानें भी भर सकते हैं । उदाहरणार्थ, अल्बेट्रॉस, पेट्रेल, गल, कुररी, पेलिकन, कोर्मोरेण्ट आदि ।

५. **लगलगे के वर्ग के पक्षी**—ये चिड़ियाँ लंबी गरदन और लंबी टांगोंवाली होती हैं और छिछले पानी में प्रायः पैदल विचरा करती हैं । यथा, बगुला, दाबिल, लगलगा, आदि ।

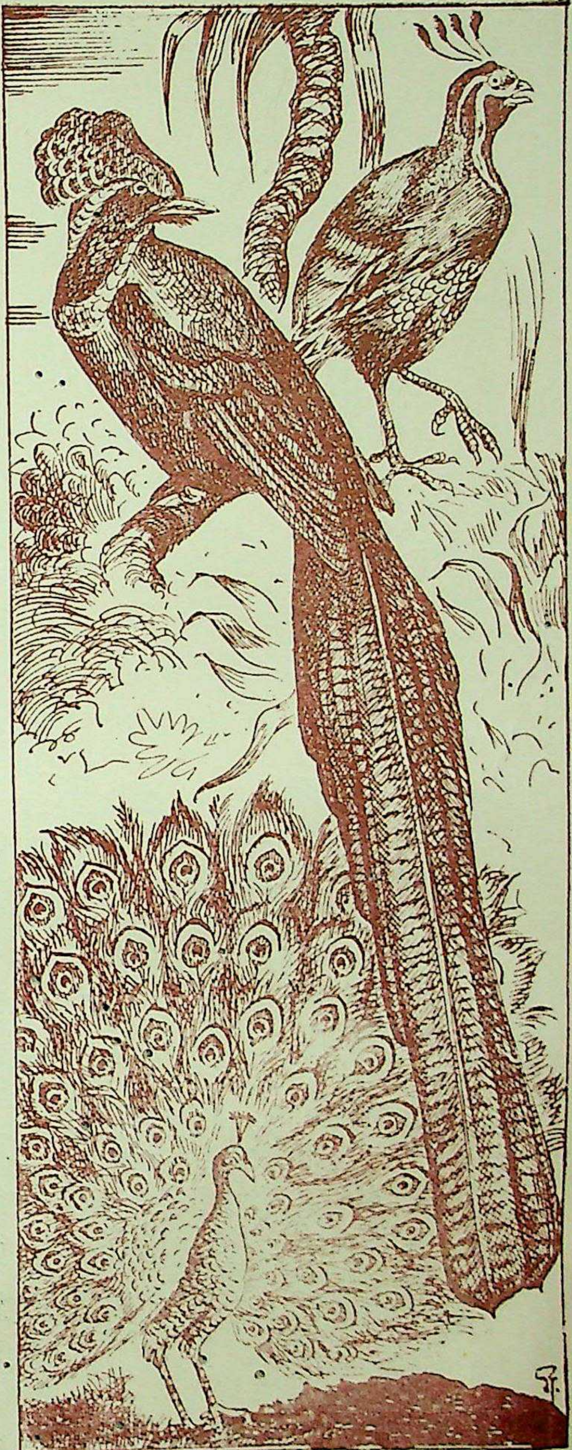

इन्द्रधनुष के-से अपने रंगों की बहुवर्णीय छटा के लिहाज से सारे पक्षी-जगत् को मात करनेवाले 'मयूर-वर्ग' के कुछ प्रतिनिधि—(नीचे) मोर, और (ऊपर) 'स्वर्ग का पक्षी' तथा कैलिफोर्निया के रंग-बिरंगा बटेर ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

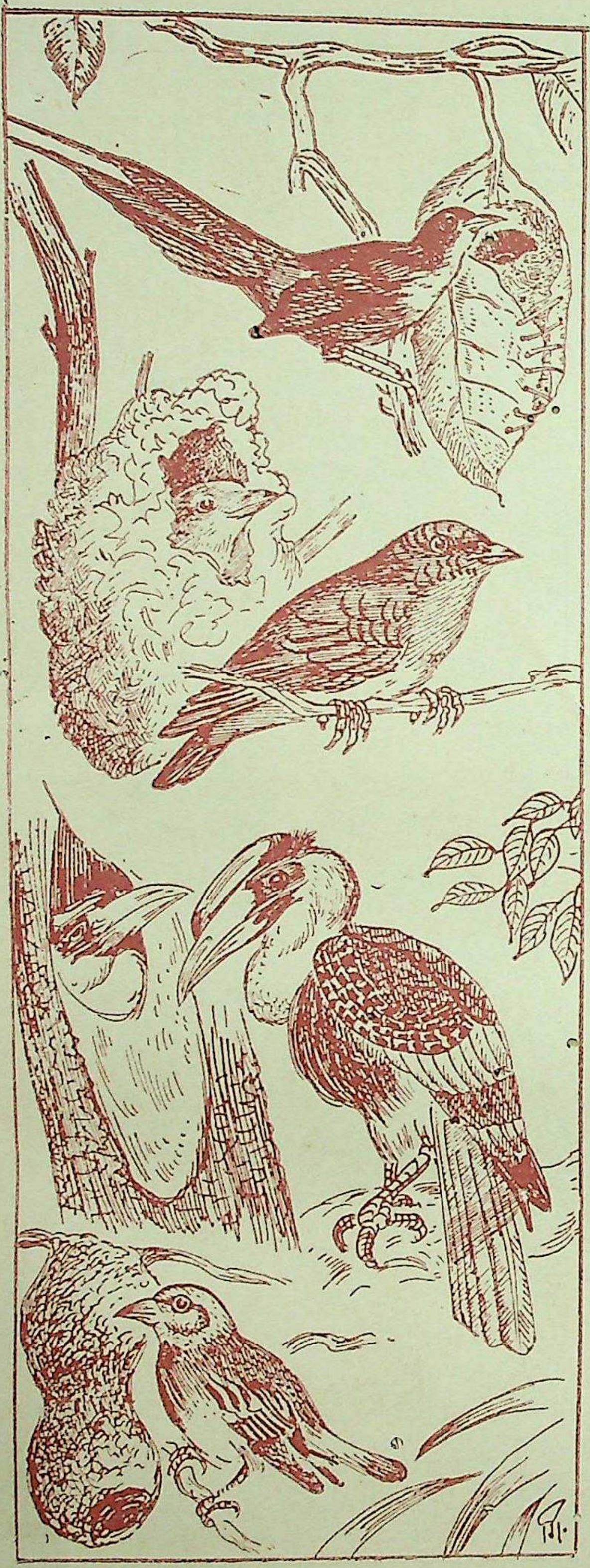

घोंसलों में प्रकट पक्षियों की निर्माण-कला
(क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर अपने-अपने घोंसलों सहित) दरज़िन; अबाबील; हार्नबिल; और बया।

६. जलपक्षी—इनके पैर जालदार और चोंच लंबी व चपटी होती है। उदाहरणार्थ, बत्तख, हंस, सुरख़ाब आदि।

७. दलदलों में रहनेवाले पक्षी—ये अधिकतर छिछले पानी में विचरनेवाले बगुले जैसे पक्षियों ही के भाई-बंधु होते हैं। यथा, सारस, हंसावर आदि।

८. किनारे के पक्षी—ये अपने आहार की टोह में जलाशयों के तट पर रहा करते हैं।

९. शिकारी पक्षी—अँकुए-सी मुड़ी हुई चोंच और मज़बूत तीक्ष्ण पंजोंवाले ये पखेरू हिंसक मांसभक्षी होते हैं। यथा, उक़ाब, चील, बाज़, शिकरा, उल्लू, गिद्ध आदि।

१०. वे पक्षी जिनका मनुष्य द्वारा शिकार किया जाता है—उदाहरणार्थ, बटेर, लवा, मोर, तीतर, चहा आदि।

११. कबूतर और फ़ाख्ता वर्ग के पक्षी—ये भी मनुष्य द्वारा शिकार किये जाते या पाले जाते हैं।

१२. शुक-वर्ग—तरह-तरह के तोते, कुड़िल्ला आदि।

१३. कठफोड़ और उसकी बिरादरी की चिड़ियाँ।

१४. हमारी बस्तियों, खेतों, बाग-बगीचों आदि के आसपास बसेरा लेनेवाली चिड़ियाँ—इस समूह में कोई पच्चीस वर्ग की चिड़ियाँ हैं, जिनकी लगभग १५,००० उप-जातियाँ पाई जाती हैं।

पक्षियों संबंधी कुछ उल्लेखनीय बातें

इसके पहले कि उपर्युक्त सूची में निर्दिष्ट विविध समूहों के पक्षियों के कुछ चुने हुए नमूनों को लेकर उनका सिलसिलेवार विवरण हम प्रस्तुत करें, यह अनुचित न होगा यदि पखेरुओं की बृहत् बिरादरी के संबंध में कुछ विशिष्ट जानकारी की बातें हम तुम्हें यहाँ बता दें, ताकि तुम यह समझ सको कि ये सब प्राणी अन्य जीव-वर्गों से किन-किन बातों में समानता रखते हैं और किन-किन बातों में एकदम निराले हैं। सबसे पहले तो हम यह बता दें कि इनका नाम 'पक्षी' किसलिए पड़ा! निस्संदेह, ये इसीलिए इस नाम से पुकारे जाते हैं कि इन सबके 'पंख' या 'पर' होते हैं। महज़ एक इसी बात के नाते ये अन्य सभी जीवधारियों से एकदम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथक् वर्ग में रक्खे जा सकते हैं। इनके बदन में इस अद्‌भुत अंग के विकास का एकमात्र उद्देश्य यही रहा है कि ये अन्य जीवधारियों की तरह धरती या सागर से ही बँधे न रहकर एक ऊँचाई तक आकाश में भी विचरण कर सकें ! अपनी इसी निराली योग्यता के कारण ये पक्षी एक तो किसी विशिष्ट भूभाग ही से निबद्ध न रहकर सुविधानुसार सारे पृथ्वीतल पर फैलते चले गए ! दूसरे, जल-थल के अधिकतर जीव-जंतुओं पर अपना आतंक जमानेवाले भयावने हिंसक जानवरों के खूँख्वार पंजे से भी वे अपने आपको बहुत-कुछ बचाये रख सके ! इस प्रकार इनकी आबादी काफ़ी बढ़ती चली गई और ताज्जुब नहीं कि आगे भी वह बढ़ती ही चली जाय !

तुम्हें यह जानकर कुतूहल होगा कि इन पंखयुक्त जीवों की सृष्टि करने में कलाकार कुदरत ने लगभग वैसी ही दक्षता और इंजीनियरों की-सी चतुराई से काम लिया है, जैसी कि हमारे यंत्र-वैज्ञानिकों को वायुयानों के निर्माण के सिलसिले में प्रयुक्त करना पड़ा है। उसने इन्हें उड़ने की सुविधा प्रदान करने के लिए इनके बदन को अधिक से अधिक हल्के वज़न का, कम से कम डीलडौल का, और ऐसे आकार-प्रकार का बनाने का प्रयत्न किया है कि जिससे बिना किसी अड़चन के हवा के अवरोध का सामना करते हुए वे आसमान में वेगपूर्वक उड़ सकें। इसी हेतु से इनकी हड्डियों को अधिकतर पोली बनाया गया और उचकने या फुदकने के लिए उपयुक्त पतले दो पैरों के अलावा (जिन्हें कि उड़ते समय हवाई जहाज़ों के पहियों की तरह समेटा जा सकता है) बाजू के अन्य किसी अंग का बवाल इनके बदन में नहीं रहने दिया गया ! इनके सिर, गरदन आदि भाग भी छोटे से छोटे आकार के रचकर जगह की बेहद बचत करने की कोशिश की गई ! उदाहरणार्थ, दाँतों की पंक्तियों से युक्त भारी जबड़ों और चेहरे के ढाँचे को क़ायम रखनेवाली बड़ी-बड़ी हड्डियों की रचना का बखेड़ा ही इन जीवधारियों में नहीं रक्खा गया। इसके बजाय भाँति-भाँति की आकृति की 'चोंचों' के रूप में एक महान् उपयोगी अंग इन सबको प्रदान किया गया, जो कि एक साथ ही इनके मुँह, दाँत, हाथ तथा आक्रमण के हथियार का काम देनेवाला एक कारगर अंग बन गया ! इसी प्रकार इनके शरीर की भीतरी रचना को भी वायुयानों के इंजिनों

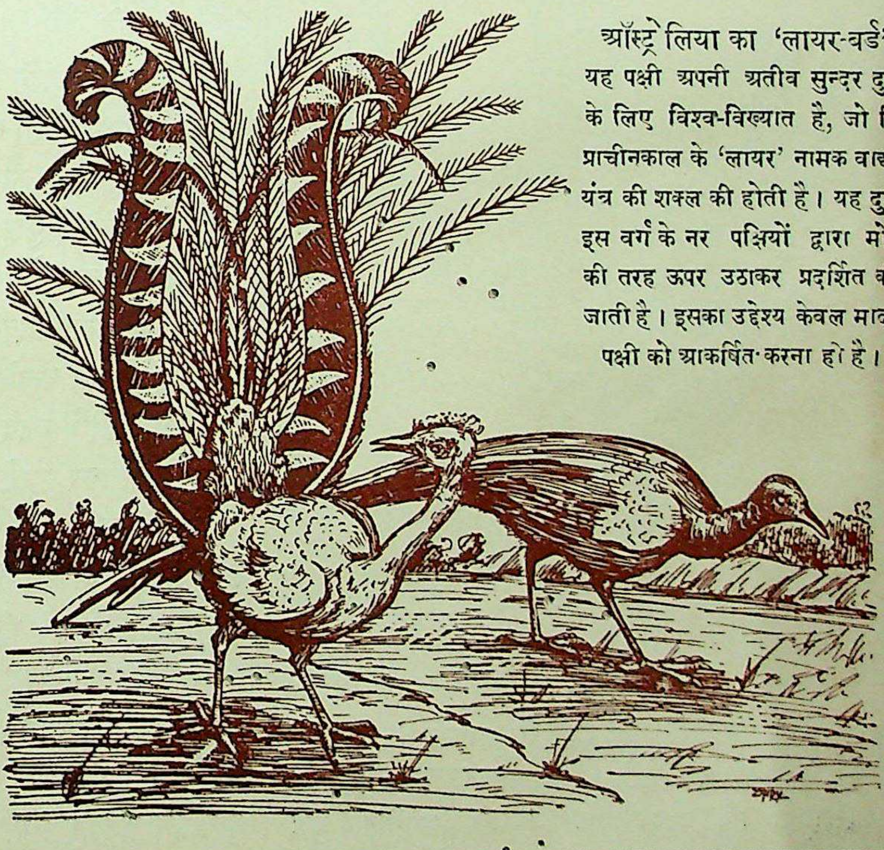

ऑस्ट्रेलिया का 'लायर-बर्ड' यह पक्षी अपनी अतीव सुन्दर दुम के लिए विश्व-विख्यात है, जो कि प्राचीनकाल के 'लायर' नामक वाद्य-यंत्र की शक्ल की होती है। यह दुम इस वर्ग के नर पक्षियों द्वारा मोर की तरह ऊपर उठाकर प्रदर्शित की जाती है। इसका उद्देश्य केवल मादा पक्षी को आकर्षित करना हो है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

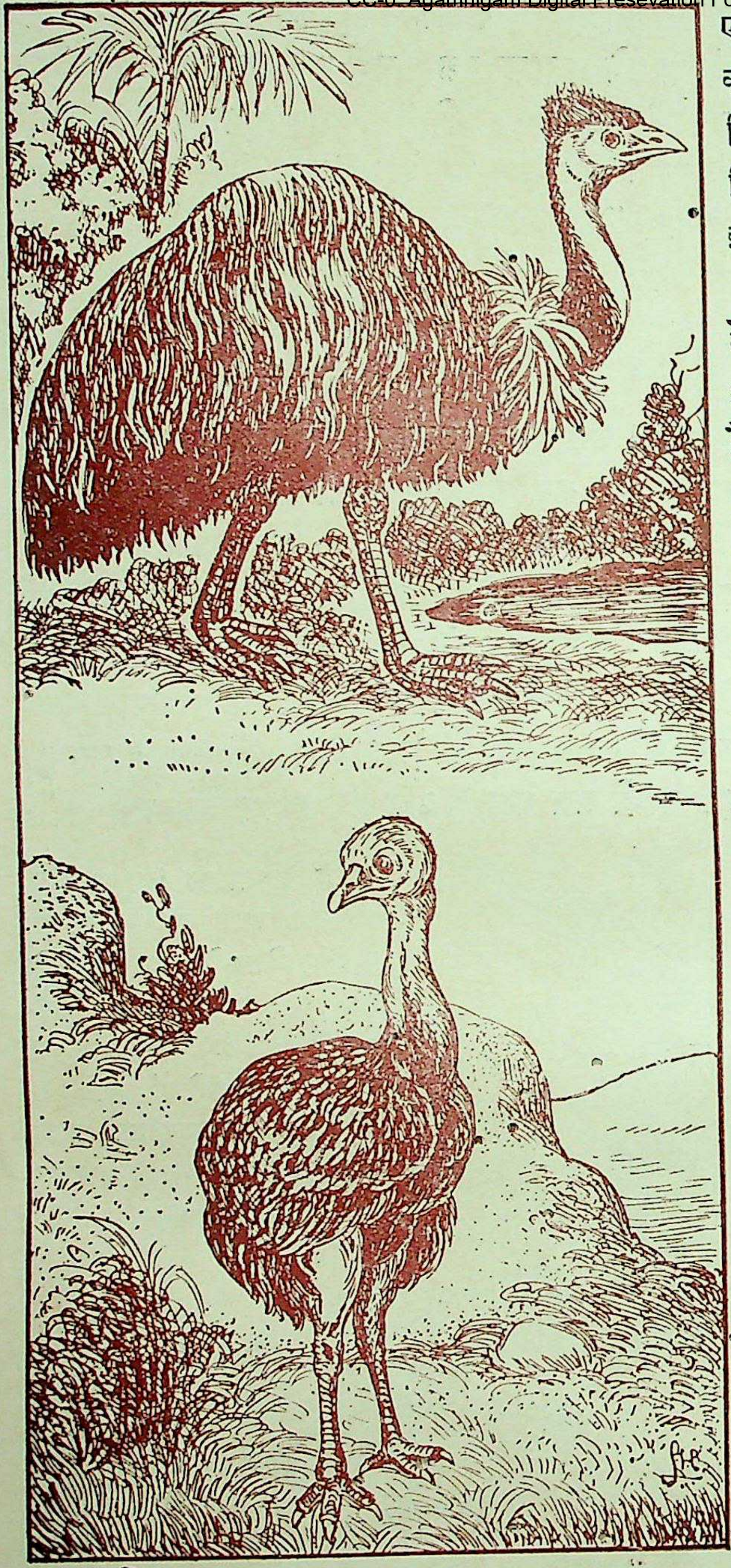

संसार के सबसे बड़े पक्षी, जो उड़ने से लाचार हैं—(१) (ऊपर) 'एमू '; (नीचे) 'ह्वी' या अमेरिकन शुतुर्मुर्ग़,

'एमू' ऑस्ट्रेलिया ही में मिलता है और 'ह्वी' दक्षिणी अमेरिका में ही !

एवं दूसरे पेचीदा यंत्र-जंजाल की भाँति, जगह की कमी तथा हल्केपन का ख़याल रखते हुए, विशेष प्रकार से नियोजित किया गया, जिसकी कि सरलता और सुव्यवस्था को देखकर बड़े-बड़े इंजीनियरों को भी चकराना पड़ता है !

यों तो अन्य जानवरों की तुलना में पक्षियों में जो-जो ख़ूबियाँ और विशेषताएँ पाई जाती हैं, उनके बखान से एक पूरी पुस्तक ही भरी जा सकती है (जिसकी कि गुंजाइश यहाँ नहीं है), फिर भी यहाँ कुछ प्रमुख विशेषताओं को हम गिना देना चाहते हैं। इनमें से एक मुख्य विशेषता यह है कि अब तक वर्णित सभी उन्नत श्रेणी के जानवर जहाँ स्तनपोषी जीव थे, वहाँ ये पक्षी सबके सब अंडज ही हैं। दूसरे, यद्यपि ये भाँति-भाँति के रंग-बिरंगे लिबास पहने हुए देख पड़ते हैं, तथापि किसी भी पक्षी के बदन पर वैसे बाल या रोएँ नहीं होते, जैसे कि उच्च शाखाओं के स्तन-पोषी प्राणियों में पाये जाते हैं। इसके विपरीत, उनका शरीर नीचे तो एक प्रकार के बारीक़ फुर-फुरे परों और ऊपर कम मुलायम पंखों की एक-दूसरे पर रची गई कुछ परतों या श्रेणियों द्वारा आच्छादित रहता है। इनमें नीचे के मुलायम बारीक़ परों का आवरण तो इनके बदन की गरमी को एकसाँ बनाये रखने तथा शीत आदि से उसे बचाने ही में मदद देता है, परंतु ऊपरी पंख (जिन्हें मिलाकर उनके डैने, दुम आदि बनते हैं) उनके शरीर की रक्षा करने के अतिरिक्त उन्हें उड़ने तथा अपनी झपट द्वारा कभी-कभी शत्रु पर वार करने में भी पर्याप्त योग देते हैं। इन पंखों से एक काम यह भी निकलता है कि वे इन प्राणियों के बदन को वर्षा आदि के जल से भीगने से बचाते हैं। शायद इसी काम में योग देने के लिए सभी पक्षियों के शरीर से एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार का अनोखा तैलीय द्रव्य निकला करता है, जो उनके परों और पंख-समूह को इस प्रकार का बनाये रखता है कि उन पर जल का कोई असर नहीं हो पाता ! परों के अलावा, पक्षियों की दुम भी उनके उड़ान के कार्य में महत्त्वपूर्ण मदद देती है। वह नौका की पतवार-सा काम देती है, अर्थात् इच्छित दिशा में शरीर को घुमाने या मोड़ने में वह योग देती रहती है।

पंख की तरह पैर भी इनके एक अति महत्त्वपूर्ण अंग हैं। ये भिन्न-भिन्न प्रकार के पक्षियों में भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के होते हैं। उदाहरणार्थ, उन बड़े पक्षियों में, जो कि उड़ने से एकदम लाचार हैं, वे इतने अधिक मज़बूत और दौड़ने के लिए विशेष रूप से उपयोगी बन गए हैं कि उनकी बदौलत शुतुर्मुर्ग जैसा भारी-भरकम पक्षी भी साठ मील प्रति घंटे के वेग से दौड़ लेता है ! दूसरी ओर, बत्तख जैसे पक्षियों में (जोकि जलाशयों में तैरने के आदी हैं) पैरों में पंजे की विभिन्न उँगलियाँ एक-दूसरे से पतली झिल्लियों से संयुक्त होकर इस प्रकार की डाँड़नुमा बन गई हैं कि उनके पैर उन्हें तैरने में विशेष प्रकार की मदद दे सकते हैं। पर इन्हीं के भाई-बन्धु बगुले, लगलगे जैसे जलपक्षियों के पैर कुदरत ने दलदली क्षेत्रों के कीचड़ में चलने में मदद देने के ख़याल से काफ़ी लंबे, बेंत जैसे पतले और पतली उँगलियों से युक्त चौड़े पंजोंवाले बनाये हैं, जिससे कि दलदलों में चहलक़दमी करते समय वे पंक में गड़कर नीचे न उतर जाएँ ! उधर उक़ाब, गिद्ध, बाज़, चील, उल्लू, कौए, आदि शिकारी पक्षियों के पैरों के पंजे उनकी वृत्ति के अनुरूप तीखे अँकुए जैसे फ़ौलादी नाख़ूनों से सुसज्जित किए गए हैं, ताकि वे शिकार को पकड़कर उसे बख़ूबी चीर-फाड़ सकें !

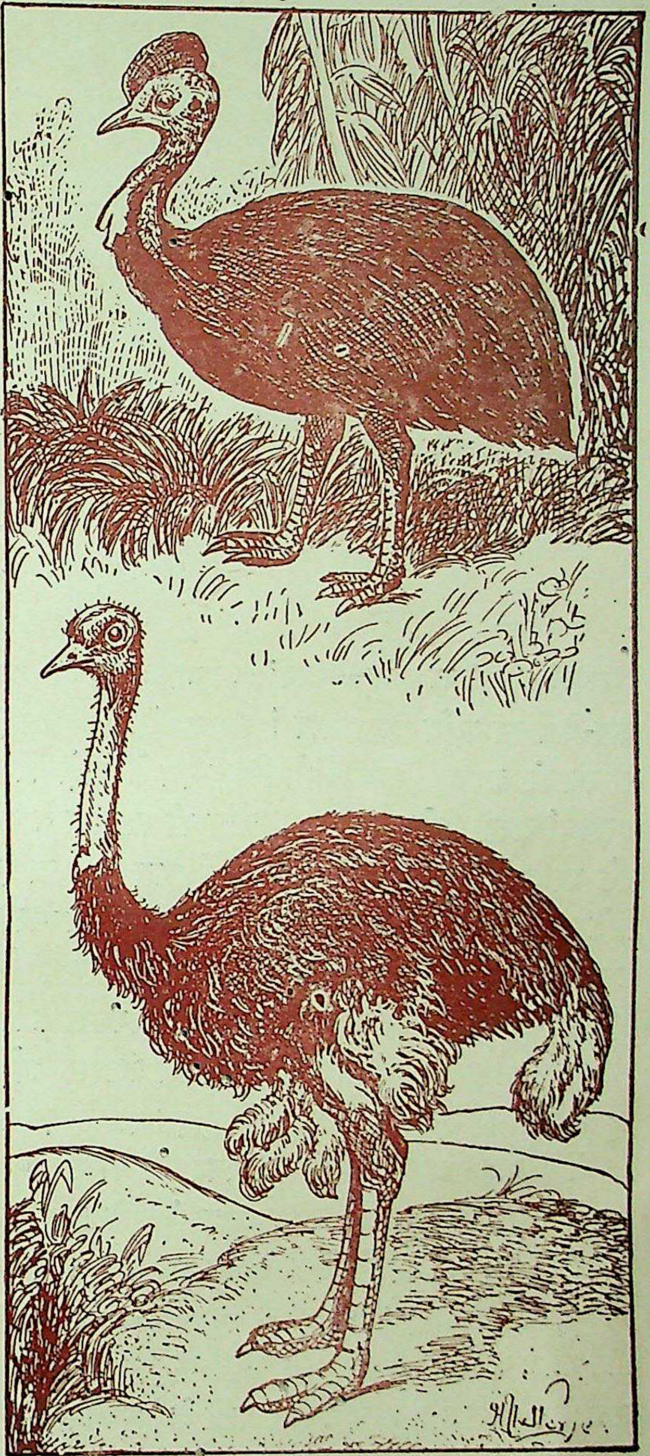

संसार के सबसे बड़े पक्षी, जो उड़ने से लाचार हैं—(२)
(ऊपर) 'कैसोवारी' ; (नीचे) असली 'शुतुर्मुर्ग'
'कैसोवारी' ऑस्ट्रेलिया का निवासी है और 'शुतुर्मुर्ग' अफ्रीका का।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

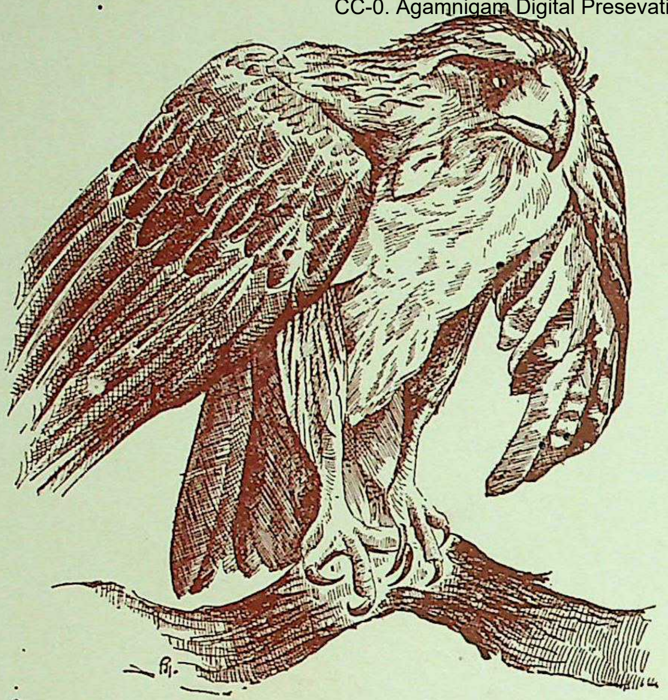

शिकारी पक्षियों का राजा—'गरुड़' या सुनहला उकाब

यही हाल चोंच का भी है, जोकि अलग-अलग पक्षियों में अलग-अलग काम के लिहाज़ से भिन्न-भिन्न लंबाई-चौड़ाई तथा भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार की रची गई है। उदाहरणार्थ, बाज़, उकाब आदि शिकारी पक्षियों में जहाँ वह मांस नोचने के हेतु विशेष रूप से अँकुए जैसी मुड़ी हुई और तीक्ष्ण धारवाली बनाई गई है, वहाँ कुतरकर खानेवाले शुक-वर्ग के फलभक्षियों में उसका रूप अँकुए-सा होकर भी और ही तरह का रक्खा गया है। इसी प्रकार सारस, लगलगे, बगुले आदि दलदली क्षेत्रों के शिकारी पक्षियों की चोंचें जहाँ बेहद लंबी और पतले चिमटे की-सी होती हैं, वहाँ बत्तखों आदि में उनकी आवश्यकता के माफ़िक वे चिपटी और चौड़ी बनी हैं। कहाँ तक इन्हें गिनाया जाय और किस-किस का वर्णन किया जाय ! यदि कठफोड़ में वे लकड़ी में छेद करने के लिए उपयुक्त सूजे जैसी होती हैं तो नीलकंठ आदि कीटभक्षियों में विशेष रूप से कीड़ों को चुग लेने के लिए उपयोगी बनाई गई हैं। यदि 'दरज़िन' अपनी विशेष प्रकार की चोंच की सहायता से पत्तों में छेद करके बाक़ायदा उनमें मोची की तरह टाँके भर लेती है तो शकरखोरों की चोंचें खास तौर पर इस प्रकार की रची होती हैं कि वे फूलों में छिद्र करके न केवल उनका रस ही चूस लें, बल्कि उनमें बसनेवाले छोटे-छोटे कीड़ों को भी खोजकर उन्हें उदरस्थ कर सकें ! सबसे अनोखी चोंचें तो पेलिकन, दाबिल, हॉर्नबिल, टूकन, सुरखाब, नकटा, बुज्जा आदि पक्षियों की होती हैं, जो कि उनकी अपनी-अपनी आवश्यकता के लिहाज़ से विचित्र आकार-प्रकार की रची गई हैं।

और भी कई मनोरंजक बातें अपने इन पंखदार पड़ोसियों के संबंध में बताने योग्य हैं। उदाहरणार्थ, बहुतेरे पक्षी अलग-अलग मौसमों में सामुहिक रूप से एक से दूसरे क्षेत्र की स्थानान्तर-यात्राएँ करने के अभ्यस्त हैं। वे पतझड़ या शीतकाल का आगमन होते ही उत्तरी ठंढे इलाकों से उड़कर झुंड के झुंड दक्षिणी उष्ण प्रदेशों में आ पहुँचते हैं और वसंत का आरंभ होते ही उन्हीं ठंढे क्षेत्रों को वापस लौट जाते हैं ! लगभग सभी पक्षी अंडा देने के लिए किसी न किसी प्रकार के सुरक्षित स्थान की तजवीज करते हैं, या घोंसला बनाते हैं। उनके ये घोंसले मामूली टहनियों के एक भौंडे-से ढेर से लेकर मनुष्योचित कारीगरी के उत्कृष्ट नमूनों तक भाँति-भाँति के होते हैं। जोड़ा बँधने की ऋतु में पक्षियों का बर्त्ताव विचित्र-विचित्र मनोरंजक नज़ारे पेश करता है ! मादाओं का प्रणय प्राप्त करने के हेतु प्रायः नर पक्षी कलापूर्ण नृत्य प्रदर्शित करते हैं, तथा अपनी संगीतमय बोलियों से वातावरण को गुँजा देते हैं ! इसमें संदेह नहीं कि पक्षी जंतु-संसार के गंधर्व हैं, यद्यपि कई कर्कश स्वरवाले भी होते हैं। बहुतेरे (जैसे कि तोते या मैना) मनुष्य की बोलियों की नक़ल उतारते भी पाये जाते हैं। मनुष्य के लिए ये प्राणी कितने उपयोगी हैं, इस पर तो अलग से पूरा एक लेख लिखा जा सकता है। आओ, अब अलग-अलग वर्ग के पक्षियों का अधिक विस्तार के साथ तुम्हें परिचय दें।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संसार के सबसे बड़े पक्षी, जो उड़ने से लाचार हैं !

क्या तुम्हें यह एक भारी अचंभे की-सी बात नहीं लगती कि जो प्राणी डीलडौल के लिहाज़ से सारे पक्षी-जगत् के सरदार अर्थात् सबसे बड़े पखेरू कहलाने के अधिकारी हैं, वही बेचारे (जहाँ तक कि उनके उड़ने का सवाल है) इतने लाचार और बेबस-से हैं कि नाम भर को भी धरती से ऊपर उठकर आसमान की सैर करने में वे नितान्त असमर्थ हैं ! भला, कुदरत ने इनके साथ यह कैसी विचित्र मज़ाक की है ? इन प्राणियों में से कुछ के नाम—यथा, 'शुतुर्मुर्ग़', 'एमू', 'कैसोवारी' और 'ह्री'—तो पिछले पृष्ठों में तुम्हें बताये जा चुके हैं। उन्हीं की तालिका में दो और नाम—'किवी' और 'मोआ'—भी सम्मिलित हैं, जिनमें से 'मोआ' कुछ समय से इस पृथ्वीतल से सदा के लिए विलुप्त हो चुका है।

सबसे पहले हम 'शुतुर्मुर्ग़' का ही परिचय तुम्हें दें, जिसे कि इस समय संसार के सबसे बड़े पक्षी का गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस पक्षिराज की ऊँचाई आठ फ़ीट के लगभग होती है और उसका वज़न ३०० पौंड (या पौने चार मन) के लगभग पाया जाता है ! इस भीमकाय पक्षी में उड़नेवाले पंख या डैने यद्यपि अब भी मौजूद हैं एवं उनकी आकृति भी काफ़ी बड़ी है, तथापि वह उड़ना पसंद नहीं करता ! संभवतः, उसका उड़ने का अभ्यास महज़ इसीलिए छूट गया हो कि शरीर के अत्यधिक भारी हो जाने के कारण उसे उड़कर आसमान में जाने में बेहद असुविधा होती रही हो। परंतु इस प्राणी के पंख निरंतर बेकार रहने के कारण जहाँ अनुपयोगी बन गये, वहाँ उसकी टाँगें अत्यधिक काम में आने के फलस्वरूप बेहद मज़बूत और विशेष रूप से पशुओं की-सी सुविकसित होती चली गईं ! इसका कारण शायद यह था कि उड़ने संबंधी अपनी योग्यता की सारी कमी की पूर्त्ति दौड़ने की असाधारण कूवत प्राप्त करके उसने कर डाली ! क्या तुम इस बात को मानने को तैयार होगे कि भारी-भरकम डीलडौलवाला यह पक्षिराज जब दौड़ता है तो उसकी गति कभी-कभी 'पंजाब-मेल' या 'फ्रंटियर मेल' जैसी डाकगाड़ियों की गति के लगभग पहुँचने लगती है, अर्थात् वह क़रीब पचास-साठ मील प्रति घंटे तक की रफ़्तार अपनी दौड़ में पैदा कर लेता है ! दरअसल वह दौड़ता क्या है, एक-एक छलाँग में पचीस-पचीस फ़ीट का फ़ासला तय करता हुआ, मानों वायु-गति से भागता है ! वह दौड़ते समय अपने आजू-बाजू के दोनों पंख या डैनों को इस तरह चौड़े फैला लेता है, जैसे कि नाका की पाल फैली रहती है ! ये डैने या पंख संभवतः उसके वेगपूर्वक दौड़ने की अवस्था में उसके बदन को पृथ्वी पर से तनिक ऊँचा उठा देने में उसी तरह सहायक हो जाते हैं, जिस प्रकार कि हवाई जहाज़ के पंख उसे ऊपर उचकने में मदद देते हैं ! यदि यह बात ठीक हो तो

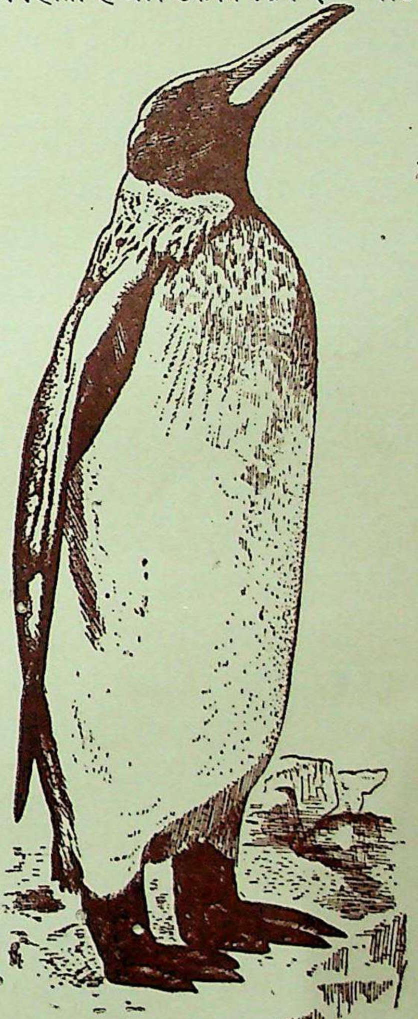

दक्षिणी ध्रुव-प्रदेशों का विचित्रवेशधारी जलपक्षी 'पेंगुइन'। यह गोताख़ोर उड़ने से सर्वथा लाचार है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह पक्षी वेगपूर्वक दौड़ते समय शायद नाममात्र ही को धरती को छूता हुआ-सा भागता होगा ! जो भी हो, इसकी इस तेज़ दौड़ का मुक़ाबला दुनिया का शायद ही कोई थलचर पशु कर सकता होगा !

शुतुर्मुर्ग़ मूलतः तो अफ्रीका महाद्वीप ही का निवासी है, जहाँ उसकी तीन उपजातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें से एक उत्तर में इराक़, सीरिया और अरब तक फैली हुई है। परन्तु अब इस पक्षी को अमेरिका के भी कतिपय क्षेत्रों में पालने का सफल प्रयत्न हुआ है। इस काम के लिए चरागाहों में बड़े-बड़े खुले अहाते या घिरौंदे-से बनाये जाते हैं, जिनमें एक बड़ी संख्या में ये पक्षी सदैव झुंड के झुंड विचरते रहते हैं। इन्हें पालने का मुख्य उद्देश्य उनके क़ीमती परों का व्यवसाय है। ये पर विशेष प्रकार के मुलायम होने के कारण अति मूल्यवान् समझे जाते हैं और अमीर वर्ग के लोगों द्वारा प्रायः रज़ाई, गद्दे, तकिए आदि भरने में प्रयुक्त किये जाते हैं ! शुतुर्मुर्ग़ के हर पैर में केवल दो ही उँगलियाँ होती हैं। उनमें से एक अधिक बड़ी होती है। पैरों की तरह इसकी गरदन भी काफ़ी लंबी और सशक्त होती है। इसकी भावभंगी और मुद्रा देखने में ऊँट की-सी होती है। नर-मादा दोनों के परों के रंग में काफ़ी अंतर रहता है। मादा के पर कुछ धूमिल राखी-भूरे रंग के होते हैं, जबकि नर के पर एकदम चटकीले काले होते हैं। इस पक्षी का प्रत्येक अंडा वज़न में तीन पौंड (डेढ़ सेर) के बराबर होता है ! पालने पर हर शुतुर्मुर्ग़ से लगभग एक पौंड क़ीमती पर प्राप्त किये जा सकते हैं। ये बिना कष्ट के काट लिये जाते हैं। बिगड़ उठने पर शुतुर्मुर्ग़ अपनी टाँगों से ज़ोरों की लात मारकर बचाव का प्रयत्न करता है। कभी-कभी अपनी रक्षा करने के लिए वह मरुभूमि की बालू पर लेटकर अपने आपको छिपाने की कोशिश भी करता है। परंतु प्रायः जो यह कहा जाता है कि तूफ़ान के समय वह बालू में गरदन डालकर मुँह छिपा लेता है, इसमें कुछ तथ्य नहीं है।

डीलडौल के लिहाज़ से शुतुर्मुर्ग़ के बाद संसार का दूसरा सबसे बड़ा पक्षी 'एमू' है। यह बड़ा पखेरू केवल ऑस्ट्रेलिया ही में पाया जाता है। क़द में यह पाँच फ़ीट तक का होता है। इसकी पंख-राशि शुतुर्मुर्ग़ से भिन्न प्रकार की होती है। ये पर मानों पतली तीलियों के आसपास लटकती हुई मुलायम घास की पत्तियों की तरह फूस के छप्पर के ढंग से उसके बदन पर छाये रहते हैं। वे गरदन के समीप एक प्रकार का छितराया हुआ गुच्छा-सा दरसाये रहते हैं। इस पक्षिराज के पैरों में शुतुर्मुर्ग़ की-सी दो उँगलियों के बजाय तीन-तीन पतली और लंबी उँगलियाँ होती हैं, जिनके सिरे पर तीखे नाखून होते हैं। रंग इसका बहुत आकर्षक नहीं होता। इसके पर मिश्रित काले और सफ़ेद होते हैं, जिससे यह खैरा कबचितरा-सा जान पड़ता है। विकासक्रम की दृष्टि से यह प्राणी शुतुर्मुर्ग़ आदि अन्य बड़े पखेरुओं से अधिक प्राचीन जाति का है। यह प्रायः रेतीले मैदानों और वनों की खुली जगह में रहना पसंद करता है। शुतुर्मुर्ग़ की तरह यह भी दौड़ने में तेज़ होता है और जब खतरा सामने देखता है तो दुश्मन को अपने पैरों से पीछे की ओर ज़ोरों से लात मारता है। यह नहाने का बेहद शौक़ीन होता है और बड़ी-बड़ी नदियों को तरकर पार कर लेता है। इसका आहार फल, कंद-मूल और पत्तियाँ आदि हैं। एक बार में यह एक ही मादा के साथ जोड़ा बाँधकर रहता है, परंतु प्रायः छोटे-छोटे गिरोहों में भी यहाँ से वहाँ भटकते देखा जाता है। इसके अंडे हरित वर्ण के होते हैं और वे एक बार में सात से तेरह तक की संख्या में दिए जाते हैं। यह पक्षी हज़ारों की संख्या में मारा जा चुका है, अतः इस बात का भय है कि न्यूज़ीलैंड के विलुप्त बड़े पक्षी 'मोआ' की तरह कहीं यह भी दुनिया से एकदम ग़ायब न हो जाय !

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आकार में 'एमू' ही के मुक़ाबिले का, परन्तु देखने में उससे कहीं अधिक सुन्दर और आकर्षक, ऑस्ट्रेलिया का वह दूसरा पक्षी 'कैसोवारी' है, जिसकी निलौंहे काले रंग की चटकीली पंखराशि के साथ लाल, हरे और बैंजनी रंग की भड़कीली निर्लोम ग्रीवा एवं सिर पर मुकुट-जैसी कलगी का सुन्दर मेल उसे सहज ही इन दौड़नेवाले पक्षियों में सबसे मनोहर प्राणी का गौरवपूर्ण पद दिला सकता है। यह पक्षी सघन वनों का वासी है और बहुत बिगड़ैल मिज़ाज़ तथा झगड़ालू होता है। यह बेहूदा आक्रमणकारी अपने पैरों की लात मारकर अपने नखों से बुरा घाव कर सकता है। इसकी कोई बीस जातियाँ मिलती हैं। इस तेज़ दौड़नेवाले एवं उड़ने से लाचार पक्षी की एक विशेषता यह है कि अपने अंडों को सेने तथा बच्चों की देख-भाल का सारा जिम्मा इस जाति में मादा के बजाय नर ही अपने ऊपर लिये रहता है!

उड़ने से लाचार परन्तु दौड़ने में तेज़ पक्षियों के इस मनोरंजक वर्ग का चौथा अनोखा प्राणी 'ही' है, जिसे प्रायः 'अमरीकी शुतुर्मुर्ग़' के नाम से भी पुकारा जाता है। ये पक्षी आकार में असली शुतुर्मुर्गों से काफ़ी छोटे होते हैं और बदन के अलावा इनके सिर तथा गरदन पर भी हलके पर होते हैं। इनके पैरों में तीन उँगलियाँ होती हैं और कैसोवारी की तरह इन पक्षियों में भी अंडों को सेने तथा बच्चों की देखभाल का सारा दायित्व नर पर ही रहता है! असली शुतुर्मुर्ग़ की तरह ये भी बहुत तेज़ दौड़नेवाले होते हैं और दौड़ते समय अपने एक पंख को ये ऊपर उठाये रहते हैं! इन्हें दौड़ में घुड़सवार भी नहीं पकड़ पाते! ये प्रायः बीस-पच्चीस के झुंड ही में रहते पाये जाते हैं और पालने पर बड़े विनम्र हो जाते हैं। यह बड़ा पक्षी केवल दक्षिणी अमेरिका ही में पाया जाता है।

इन उड़ने से लाचार पक्षियों के वर्ग का अंतिम प्राणी 'किवी' है, जिसका यह नाम इसलिए पड़ा है कि वह 'कि-इ-वी' जैसे स्वरों की सीटी-जैसी एक कर्कश आवाज़ लगाता है। यह पक्षी न्यूज़ीलैंड द्वीप में मिलता है।

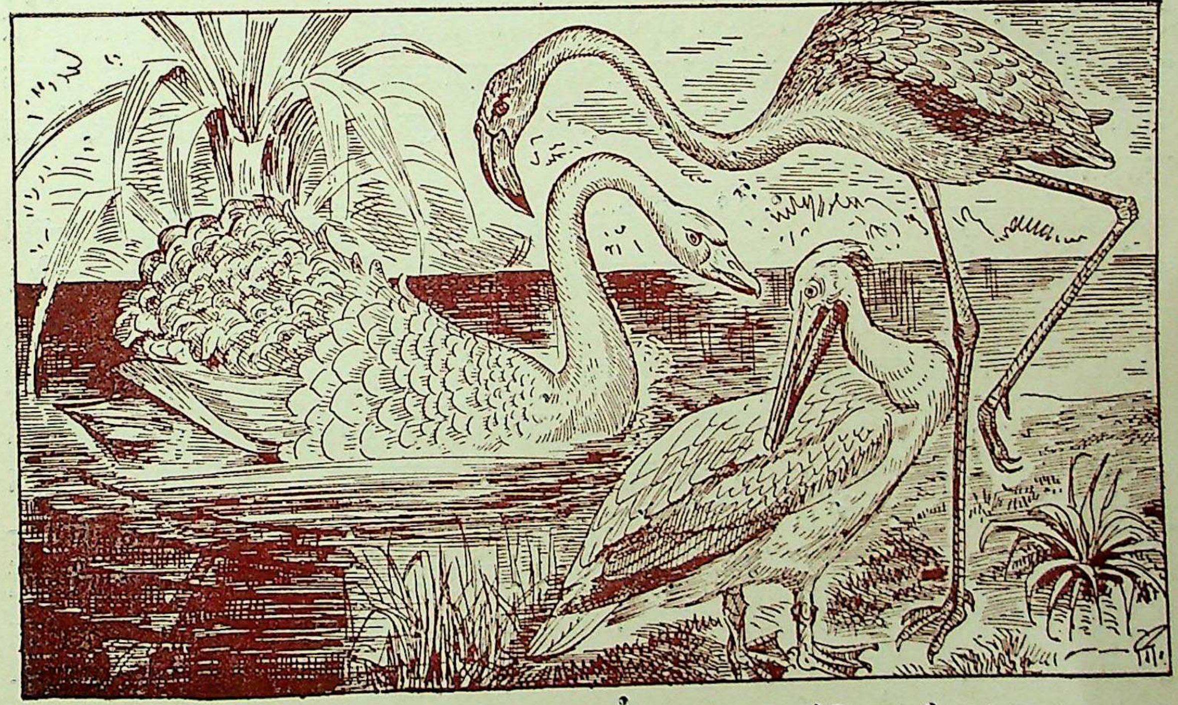

तीन प्रख्यात जलपक्षी—(क्रमशः बाईं से दाहिनी ओर को.) 'हंस', 'पेलिकन' और 'हंसावर'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जंतु-वैज्ञानिकों के लिए यह अनोखा प्राणी एक कुतूहल की वस्तु है, क्योंकि पक्षी-वर्ग का सदस्य होकर भी इसकी बहुतेरी बातें साही जैसे रात्रिचर स्तनपोषियों से मिलती हैं। सबसे अनोखी बात तो यह है कि यह धरती में बिल में रहता है! यह दिन भर तो उसी में छिपा रहता है और रात्रि को केवल अँधेरे में चुपके से आहार की खोज में बाहर निकलता है। इसका आकार साधारण मुर्गी के बराबर होता होगा, परन्तु जो अंडे यह देता है वे वज़न में पौंड-पौंड भर के और आकार में पाँच इंच लंबे तथा तीन इंच तक चौड़े होते हैं! इस पक्षी की शक्ल बड़ी अजीब-सी होती है! उसकी चोंच बेहद लंबी, पतली और तनिक झुकी हुई-सी होती है। उसी के सिरे पर इसके दो झिरीनुमा नथुने बने होते हैं, जिनकी मदद से यह अँधेरे में भी सूँघकर अपने आहार के लिए केंचुए आदि का पता पा लेता है! इसकी आकृति कुबड़े-जैसी इस प्रकार की होती है कि उसे देखकर बूढ़े मनुष्यों की याद आने लगती है! यह विचित्र पक्षी, जो अपने पंख-समूह के ह्रास के कारण उड़ने से सर्वथा लाचार हो गया है, अपने पैरों को इस तरह ज़ोरों से ज़मीन पर पटकता है कि जिससे कीड़े और केंचुए यह सोचकर बाहर निकल आते हैं कि शायद ऊपर धरती पर बरसात हो रही है! लड़ते समय किवी अपने मज़बूत पैरों से काफ़ी काम लेते हैं! कैसोवारी और ही की तरह इन पक्षियों में भी अंडों को सेने का सारा भार नर पक्षी ही उठाता है।

न्यूज़ीलैंड द्वीपों ही में, लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व, उड़ने से लाचार पक्षियों की एक और बिरादरी भी विद्यमान थी, जिसकी प्राप्त ठठरियों से पता चलता है कि ये पखेरू कोई नौ फ़ीट तक ऊँचे होते थे! इन दैत्याकार पक्षिराजों का वंश पृथ्वी से एकदम मिटा देने का सारा दोष वहाँ के मनुष्यों पर है, जो इन्हें मार-मारकर खा गये! इसी प्रकार का एक दैत्याकार पक्षी मैडेगास्कर द्वीप में भी कभी मिलता था, जो पुरानी पोथियों में 'रॉक' या 'गजपक्षी' के नाम से पुकारा गया है। यह भी तीन-चार सौ वर्ष हुए मनुष्य द्वारा इस लोक से उठा दिया गया! इस महाकाय पक्षी के पैरों की हड्डियों का ऊपरी घेरा ही कोई अठारह इंच तक का पाया गया है और उसके अंडे तो (जो कि मिले हैं) कोई फुट भर लंबे और लगभग उतने ही चौड़े होते थे! इन अंडों के खोखले आवरणों को वहाँ के लोग पानी भरने के घड़ों के रूप में प्रयुक्त करते थे! उनमें क़रीब दो गैलन पानी आ सकता था!

एक और अनूठा पक्षी, जोकि शुतुर्मुर्ग़ आदि के उपर्युक्त वर्ग का न होकर भी, इन्हीं के साथ-साथ बखाने जाने योग्य है, दक्षिणी ध्रुवप्रदेश के आसपास पाया जानेवाला 'पैंगुइन' नामक सुप्रसिद्ध जीव है। यह एक ग़ोताख़ोर जलपक्षी है। परन्तु पक्षी होते हुए भी पूर्वोल्लिखित बड़े पखेरुओं की तरह उड़ने से यह सर्वथा लाचार है! इसकी शक्ल-सूरत, वेशभूषा, खड़े रहने और चलने की मुद्रा व भावभंगी, तथा बर्त्ताव-संबंधी बहुतेरी बातों को देखकर देखनेवाले को एकदम मनुष्य का भ्रम होने लगता है! निश्चय ही, यह एक बड़ा ही दिलचस्प और मनोरंजक प्राणी है! सबसे पहले तो इसकी अनूठी आकृति ही को लो! ऐसा जान पड़ता है मानों सफ़ेद रंग के एक लंबे सीधे चोग़े के ऊपर, जिसका कि सामना एकदम खुला हुआ है, निलौंहे-सलेटी या श्यामल नील वर्ण का स्त्रियों का-सा मख़मली कोट पहने साक्षात् कोई मानवतनधारी ही अपनी बाहें आजू-बाजू लटकाये गंभीर भाव से सामने खड़ा हो! इसकी इस अद्भुत वेशभूषा के निर्माण में कलाकार प्रकृति ने दरअसल ऐसा कमाल कर दिखाया है कि जान पड़ता है मानों पेरिस या लंदन के किसी फ़ेशन-निर्माता दर्ज़ी ही ने कलापूर्ण काट के वस्त्र सीकर उसे पहना दिये हों! उसके उस ऊपरी नीले अंगरखे की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
शोभा को और भी अधिक बढ़ाने के प्रयोजन ही से कुदरत ने नीचे के श्वेतवर्णीय चोग़े के गले पर के अंश को चटक सुनहले केसरिया रंग की एक झाईं दे दी है। यह पीलापन, कनपटी के ऊपर तक दो अनूठी पट्टियों के रूप में आजू-बाजू फैलकर, उसके निलौंहे-श्यामवर्णीय मस्तक पर इस प्रकार की झाँकी दरसाये रहता है कि उसे देखकर बर्फ़ीले प्रदेशों में ओवरकोट के साथ-साथ पहने जानेवाले (कंटोप या कान ढाँपनेवाली टोपी) का-सा भ्रम होने लगता है ! यहाँ हम तुम्हें यह बात बता दें कि पक्षि-वर्ग में सम्मिलित होकर भी इस प्राणी के न तो पंख ही पखेरुओं जैसे हैं, न पैर ही। उसके वे जो डैने जैसे अनोखे अंग आजू-बाजू में कोट की बाँहों जैसे लटके दिखाई पड़ते हैं, वे हैं दरअसल तैरने में मदद देनेवाले उसके सुफ़ने, जो कभी उसके पंख रहे होंगे, पर अब इतने बदल चुके हैं कि कोई उन्हें पहचान नहीं सकता ! इन सुफ़नों से यह वैसा ही काम लेता है, जैसे कि नाविक नाव खेने के अपने डाँड़ों से लेता है ! जब पानी से बाहर निकलकर वह स्थलभाग पर आता है तो उड़ने से लाचार होने के कारण यह प्राणी अपने पैरों पर सीधा टटार खड़ा रहकर एकदम मनुष्यों की तरह चलते देख पड़ता है ! इन अद्भुत जीवधारियों के हज़ारों के झुंड मानों सभा करते हुए-से दक्षिणी ध्रुवक्षेत्र के समुद्रतटों पर प्रायः एकत्रित देख पड़ते हैं ! उन्हीं के साथ-साथ मनों वज़न के 'गज-सील' जैसे महाकाय समुद्री जंतु भी बोरों की तरह अपने बदन को फैलाये सागर-तट पर पड़े रहते हैं। आश्चर्य तो यह है कि ये पक्षी उनसे तनिक भी नहीं डरते, न वे ही इन्हें कभी छेड़ते हैं !

पैंगुइनों की कोई सत्रह जातियाँ पाई जाती हैं। उनमें सबसे बड़े डीलडौल के पैंगुइन 'सम्राट् पैंगुइन' और सबसे छोटी जाति के 'नील पैंगुइन' के नाम से पुकारे जाते हैं। प्रथम जाति का क़द तीन फ़ीट से भी अधिक और वज़न लगभग मन भर होता है। ये ग़ोताख़ोर मुख्यतः मछली, घोंघे, आदि पर ही अपना गुजर-बसर चलाते हैं। अपने अंडों को ये तटवर्ती ज़मीन में एक गढ़ा-सा बनाकर रखते हैं। ध्रुव-प्रदेश की घोर शीत के कारण इन अंडों को गरमाये रखने के लिए मादा उन्हें अपने पैरों के पीछे दबाकर पेट के हिस्से से ढाँपे रहती है। जब ये प्राणी तट पर जमा होते हैं तो प्रायः महीने-महीने भर तक बिना कुछ खाये-पिये उपवास किये हुए वहीं डटे रहते हैं। इससे इनके बदन की चर्बी काफ़ी झड़ जाती है। परंतु समुद्र में पहुँचकर खा-पीकर पुनः वे तगड़े हो जाते हैं। पैदल चलने में तो ये इतने कुशल होते हैं कि हज़ार-हज़ार फ़ीट की ऊँचाई तक तटवर्ती कगारों और हिम-पर्वतों पर वे चढ़ते ही चले जाते हैं ! अफ्रीका के समीपवर्ती 'डासेन' नामक द्वीप में पैंगुइनों का एक महान् उपनिवेश स्थापित है। कहते हैं, इस द्वीप पर एक वर्गमील क्षेत्रफल में कोई नब्बे लाख पैंगुइन बसते होंगे ! इनका यह ज़बर्दस्त मेला हमारे यहाँ के प्रयागराज के कुंभ-मेले की भीड़ को भी मात करते देख पड़ता है। ये प्राणी किसी से डरना तो जानते ही नहीं ! आप उनके पास तक बेखटके चले जाइये ! अपनी इसी निर्भीकता की आदत के कारण ये प्रायः आसानी से दूसरों के शिकार हो जाते हैं !

भाँति-भाँति के तैराक और गोताखोर समुद्री पक्षी

जैसा कि पिछले पृष्ठों में सूचित पक्षियों की विविध बिरादरियों की वर्गीकरण-विषयक तालिका से सुस्पष्ट है, इस प्राणि-वर्ग का एक विशाल समुदाय तैरनेवाले, गोताखोर, दलदलों में विचरनेवाले तथा जलाशयों के किनारे रहकर गुजर-बसर चलानेवाले भाँति-भाँति के उन पखेरुओं का है, जिन्हें सामान्यतया 'जलपक्षी' के सामुहिक नाम से पुकारा जा सकता है। यह तो एक स्वाभाविक-सी बात है कि सभी गोताखोर किसी हद तक कुशल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

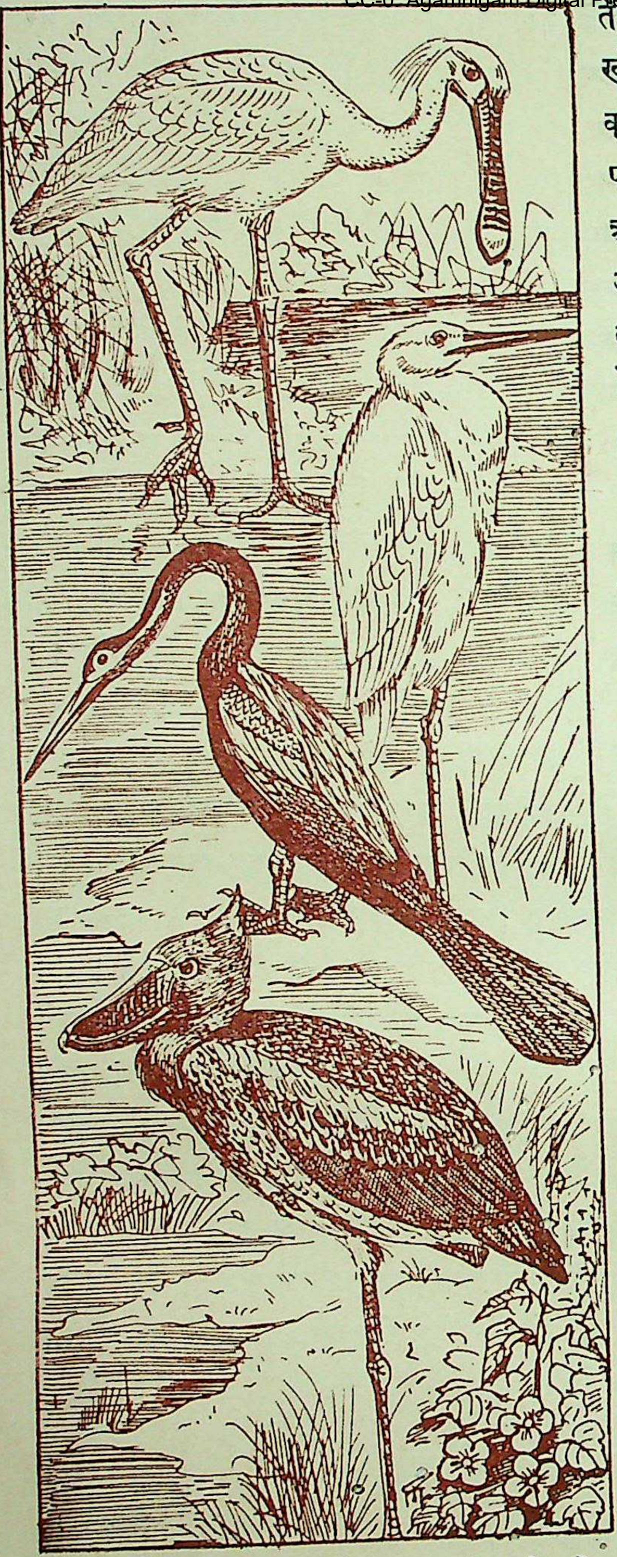

जलाशयों और दलदली क्षेत्रों में पाये जानेवाले हमारे कुछ सुपरिचित जलपक्षी (क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर) दाबिल ; बगुला ; बानवर ; और लगलग ।

तैराक भी होंगे और सभी तैराक पक्षी किसी अंश तक गोता-खोर होंगे । अन्यथा जलपक्षियों के रूप में वे सफल नहीं कहे जा सकते । परन्तु इनमें के कुछ पक्षी मछली आदि पकड़ने के लिए समुद्र की सतह पर उतरकर जल में तैरने के अलावा लंबी-लंबी उड़ानें भरने में भी ख़ास तौर से समर्थ पाये जाते हैं । इसीलिए इन्हें विशेष रूप से 'तैराक' समुद्री पक्षियों का नाम दिया गया है, यद्यपि पानी से कहीं अधिक ये हवा में उड़ते हुए अपना समय बिताते हैं । इनमें से कई एक के पंख का फैलाव असाधारणतया बड़ा होता है, जैसा कि 'अल्बेट्रास' नामक समुद्री पक्षी में पाया जाता है ! यह योजना प्रकृति ने इन पक्षियों में इस उद्देश्य से की है ताकि ये सागर पर काफ़ी लंबी उड़ानें भर सकें । इस वर्ग के पक्षियों में सबसे प्रसिद्ध 'गल', 'अल्बेट्रास', 'कुररी', 'पेट्रेल' 'फुलमार', 'शेअरवॉटर', 'जेगर', 'स्कूआ', 'पेलिकन', 'गैनेट', 'कोर्मोरेण्ट', आदि हैं ।

प्रशान्त महासागर के लायसन द्वीप पर 'अल्बेट्रास' लाखों की तादाद में बसा हुआ है । यह पक्षी काफ़ी बड़ा होता है और इसके पंख का फैलाव बारह फ़ीट की असाधारण चौड़ाई तक का पाया जाता है ! ये पंख बहुत लंबे और सँकड़े आकार के होते हैं । इसकी सबसे बड़ी तारीफ़ तो इस बात में है कि अपने पंखों को फड़फड़ाये या हिलाये बिना काफ़ी फ़ासले तक यह उड़ता ही चला जाता है ! कहा जाता है कि अल्बेट्रास दिन-रात उड़ता हुआ समुद्र के वक्षःस्थल पर तैरते हुए जहाज़ों के साथ-साथ लगातार उनका पीछा करते हुए चलता रहता है !

'गल' भी एक विश्वविख्यात समुद्री पक्षी है, जो कि उत्तरी गोलार्द्ध के सभी क्षेत्रों में कसरत से पाया जाता है । इस जाति की 'हेरिंग गल' नामक चिड़िया तो उड़न-कला की मानों उस्ताद-सी होती है ! वह क्या आगे और क्या पीछे, क्या दाएँ और क्या बाएँ, क्या ऊपर से नीचे की ओर और क्या नीचे से ऊपर की ओर, सभी दिशाओं में समान निपुणता के साथ उड़ते पाई जाती है ! उसके ये उड़न-करतब देखते ही बनते हैं ! इन पक्षियों की चोंच

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कतिपय मुड़ी हुई-सी होती है और उनकी मुँहफाड़ काफ़ी बड़ी होती है। 'कुररी' कुशल मछलीमार चिड़िया है। यद्यपि उसकी गणना तैराक़ पक्षियों में की जाती है, परन्तु वास्तव में उसका अधिकांश समय हवा ही में उड़ते बीतता है। इसी से उसे 'समुद्री अबाबील' की उपाधि दी गई है। इस पक्षी की एक ध्रुव-प्रदेशीय जाति इस बात के लिए विख्यात है कि वह अपना ग्रीष्मकालीन अंडा देने का समय ठेठ उत्तरी ध्रुव के समीप व्यतीत कर, जाड़ा शुरू होते ही वहाँ से कोई ११,००० मील की स्थानान्तर-यात्रा करके सुदूरतम दक्षिणी ध्रुव-क्षेत्र में जा पहुँचता है। वहाँ उन दिनों सर्दी कम होती है और ध्रुवप्रदेशीय लंबा दिन निरंतर छाया रहता है। इस प्रकार यह अद्भुत पक्षी वर्ष के लगभग आठ महीने निरंतर अखंड रूप से प्रकाशित दिवस के उजाले में ही व्यतीत करता है। सबसे अचरजभरी बात तो यह है कि दोनों ओर की अपनी उस २२,००० मील की लंबी उड़ान को यह छोटी-सी चिड़िया केवल बीस-बाईस सप्ताहों में ही पूरा कर डालती है!

अन्य समुद्री तैराक़ पक्षियों में 'कोर्मोरेण्ट' इस मानी में सबसे अधिक विलक्षण है कि वह है न केवल एक कुशल उड़ाकू और तैराक़ ही, प्रत्युत सबसे ज़बर्दस्त ग़ोताख़ोर भी। वह मछलियों का पीछा करते हुए, प्रायः सौ फ़ीट से भी अधिक गहराई तक समुद्र के भीतर ग़ोता लगाते पाया गया है! इस मानी में हम उसे एक ज़िन्दा पनडुब्बी (सबमैरिन) की उपाधि प्रदान कर सकते हैं! अपनी इसी योग्यता के कारण यह पक्षी प्रायः मछलियों का शिकार करने के लिए पुराने ज़माने ही से मनुष्य द्वारा सफलतापूर्वक पाला जाता रहा है। आज भी चीन और जापान में कोर्मोरेण्ट की मदद से मछलियों का शिकार करने का काफ़ी रिवाज़ है! देखने में यह जलपक्षी सुंदर नहीं कहा जा सकता और वह है एक ज़बर्दस्त भुक्खड़ या पेटू जीव। परन्तु एक बात में मनुष्य के लिए वह बड़ा ही उपयोगी या हितकर साबित हुआ है। वह यह है कि अन्य अनेक तटवर्ती पक्षियों की तरह इसके भी उपनिवेशों से 'गुआनो' नामक मूल्यवान् खाद की एक बृहत् राशि प्राप्त होती है! कहते हैं, अकेले पेरू राज्य की यह उपज प्रतिवर्ष सवा लाख टन है!

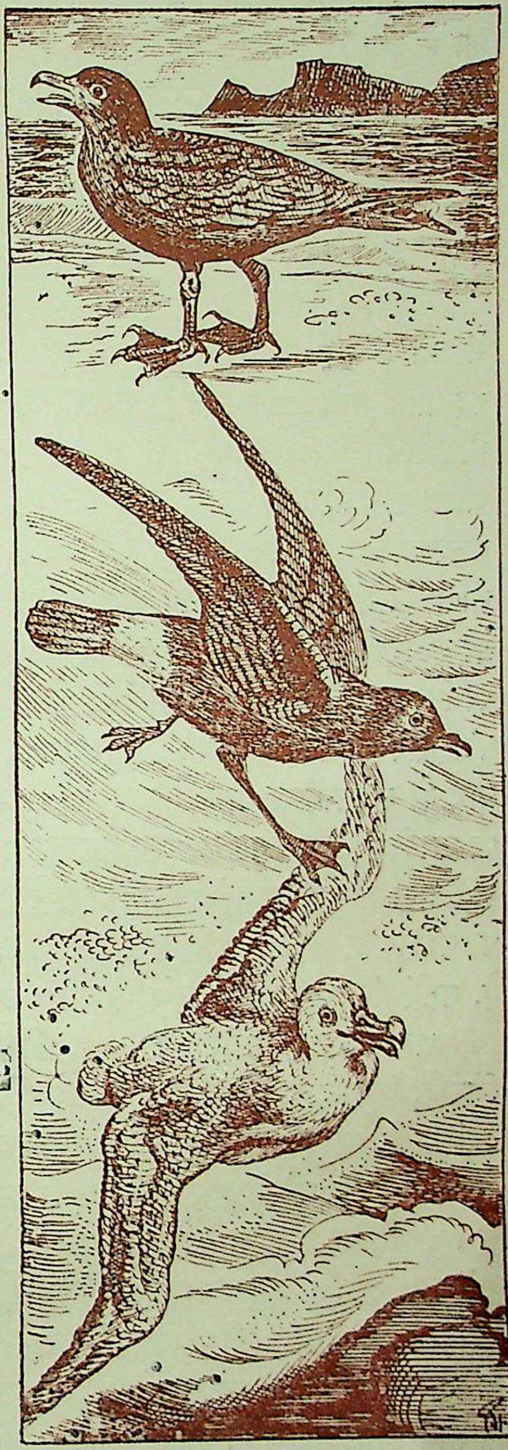

लंबी उड़ानें भरन में समर्थ तैराक़ समुद्री पक्षियों के कुछ प्रख्यात नमूने
(क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर)
'गल', 'तूफ़ानी पेट्रेल' और 'अल्बेट्रास'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'अल्बेट्रास', 'गल', 'कुररी' और 'कार्मोरेण्ट' आदि समुद्री तैराक पक्षियों ही की श्रेणी में वह अति प्रसिद्ध जीव 'पेलिकन' भी संमिलित है, जिसे उसकी लंबी और मोटी चोंच, हंस की-सी मुद्रा और गरदन, तथा चोंच के निचले हिस्से में निर्मित थैली की-सी लटकती हुई अनोखी रचना के कारण सहज ही समस्त पक्षियों की मंडली में अलग से पहचाना जा सकता है। आकार में यह पक्षी चोंच से टेठ दुम तक पाँच फ़ीट से भी अधिक लंबा पाया जाता है और उसके पंख का फैलाव तो प्रायः नौ-दस फ़ीट तक का नापा गया है ! क्या तुम विश्वास करोगे कि इतना बृहदाकार होने पर भी यह पक्षी न तो समुद्र पर तैरने ही में किसी से पीछे रहता, न आसमान में उड़ने में ही ! वह अपने सशक्त पंख की बदौलत तेज़ से तेज़ आँधी के मुक़ाबले में भी ऊँचाई तक आसमान में ऊपर उठकर ग़ज़ब का कमाल कर दिखाता है ! आहार की खोज में वह प्रायः अपने निवासस्थान से पचास मील तक की दूरी का चक्कर काट आता है और कभी-कभी केवल मौज के लिए अपने साथियों के साथ वायुयानों की तरह आकाश में बड़े-बड़े कुंडलाकार चक्कर मारता है और हज़ारों फ़ीट की ऊँचाई से उल्कापिंड की तरह टूटकर पानी को छूता हुआ-सा एकदम झपाटे के साथ समुद्र की सतह पर सरसराते हुए उड़ते देखा जा सकता है। इस पक्षी की कोई नौ उपजातियाँ पाई जाती हैं। उनमें से एक उत्तरी अमरीकी जाति में, जोड़ा बँधने की ऋतु में, नर पक्षी की चोंच के मध्य भाग पर सींगनुमा पदार्थ की एक प्रकार की कलगी-सी निकल आया करती है। यह कलगी प्रणय-ऋतु की समाप्ति पर गिर जाया करती है। पेलिकन की चोंच के नीचे बनी हुई थैली उसके बच्चों के लिए खाद्य-सामग्री के संग्रहालय का काम देती है। जिस समय इस पक्षी के शावक अपने माता-पिता की उस खुली हुई बृहदाकार चोंच की कंदरा में अपनी नन्हीं-नन्हीं चोंचें डालकर, बुरी तरह चिल्लाते हुए, उसमें संचित मछलियों के झोल पर झपटते हैं, उस समय का दृश्य सचमुच ही हँसा देनेवाला होता है ! यह बड़ा पक्षी अकेला कभी भी नहीं पाया जाता। वह झुंडों ही में रहता है। झुंडों ही में आसमान में उड़ते देखा जाता है और सागरतट या नदीतट पर छोटी-छोटी टहनियाँ आदि बिछाकर अपने अनोखे घोंसलों की जो बस्ती-सी वह स्थापित करता है, उसमें भी उसके झुंड के झुंड एक ही स्थान पर अंडे देते और संतान-पालन करते देखे जाते हैं।

अन्य एक उल्लेखनीय समुद्री पक्षी, जिसका कि चित्र पृष्ठ १०७ की तस्वीर में द्वितीय पंक्ति में दिग्दर्शित है, 'तूफ़ानी पेट्रेल' के नाम से मशहूर है। यह आकार में तो अबाबील के बराबर की एक छोटी-सी चिड़िया है, परन्तु इसकी एक अनोखी विशेषता यह है कि यह अधिकतर तूफ़ानी मौसम ही में देखने में आती है, मानों तूफ़ान-बवंडरों से उसे स्वाभाविक अनुराग हो ! इसीलिए इसका नाम 'तूफ़ानी पेट्रेल' पड़ गया है। यह विचित्र चिड़िया समुद्र की लहराती हुई सतह पर पानी को मानों छूती हुई-सी अपने जालदार पैरों द्वारा उस पर इस तरह फुदकती देख पड़ती है कि उसकी इस तेज़ हरकत से दर्शक को यह भ्रम होने लगता है, मानों वह पानी पर अपने पैर जमा-जमाकर दौड़ती चली जा रही हो ! प्रायः घोर आँधी-तूफ़ान के समय, तथा शान्त वातावरण में भी, यह नन्हीं-सी चिड़िया तट से मीलों दूर सागर की अगाध जलराशि के साथ अठखेलियाँ करने तथा लहरों पर दौड़ने का अपना वह अजीब-सा खेल जारी रखते पाई जाती है ! कहते हैं, इसी तरह समुद्र की सतह पर भागते हुए वह अपना आहार जुटा लिया करती है ! वह मछली के तेल की विशेष रूप से शौक़ीन जान पड़ती है, जोकि उसके पेट में इतना अधिक संचित रहता है कि वह उसके मुँह से उगल पड़ता है। यह लघुकाय चिड़िया सुदूर दक्षिणी ध्रुव-क्षेत्र में जाकर अपने अंडे देती है !

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अंत में, इसी सिलसिले में अपने देश के जलाशयों में आम तौर से दिखाई पड़नेवाले 'बानवर' नामक उस सुपरिचित ग़ोताखोर का भी नाम गिना देना हम उचित समझते हैं, जिसे कि अपनी बेहद लंबी गरदन और चोंच का कतिपय अंश पानी से बाहर निकालकर तैरते देख सहज ही दर्शकों के मन में जलसर्प की भ्रान्ति होने लगती है। ये जलपक्षी प्रायः किसी तटवर्ती स्थान पर बसेरा लिये बैठे रहते हैं और तनिक-सी आहट पाते ही तीर की तरह सरसराकर या तो नीचे पानी में डुबकी लगा देते हैं और निगाह से एकदम ग़ायब हो जाते हैं, या फिर उड़कर काफ़ी ऊँचाई तक आसमान में उठ जाते हैं और वहीं बाज़ की तरह चक्कर लगाया करते हैं। ये अति कुशल तैराक़ होते हैं और ग़ोता लगाना तो इनका स्वाभाविक गुण-धर्म है। अपने शिकार को पानी के भीतर ही भीतर तैरते हुए ये पकड़ते हैं। जिस समय ये अपनी साँप की-सी लचकीली लंबी ग्रीवा का कुछ अंश पानी से बाहर झलकाते हुए तैरते हैं, उस समय कोई भी यह अंदाज़ नहीं लगा सकता कि कोई पक्षी तैर रहा है! बस, यही जान पड़ता है कि वह कोई साँप है! इन्हीं का एक नज़दीकी नातेदार 'रणपोत-पक्षी' के नाम से पुकारा जानेवाला वह वृहदाकार समुद्री पखेरू है, जो कि अपने बेहद लंबे पंख, दो हिस्सों में विभाजित आदर्श दुम और अत्यंत छोटे-से पैरों की बदौलत बिना थके हुए दिन भर महासागरों के ऊपर मँडराया करता है! यह पक्षी उड़ते-उड़ते ही समुद्र की सतह पर से मछलियाँ आदि पकड़ लिया करता है और दूसरे पक्षियों के शिकार को भी प्रायः छुड़ाकर स्वयं हड़प कर जाता है!

हमारे तालाबों, नदी-तटों और दलदली क्षेत्रों की कुछ सुप्रसिद्ध चिड़ियाँ

इसमें संदेह नहीं कि जलपक्षियों के विकास में प्रकृति ने, परिस्थिति और वातावरण की विभिन्नताओं के अनुरूप विशिष्ट प्रकार की आवश्यकताओं का लिहाज़ रखते हुए तरह-तरह के अनुकूल नमूने तैयार करने में, वाक़ई कमाल कर दिखाया है! इसका प्रमाण यदि चाहिए तो किसी भी जलाशय या दलदली क्षेत्र के समीप पहुँचकर प्रत्यक्ष रूप से उसकी कला के इन अगणित प्रतिरूपों की एक झलक ली जा सकती है, जो कि आसपास के वातावरण में पूर्णतया घुलमिलकर नित ही अपनी छवि वहाँ छहराये रहते हैं। भला, कमल, कुमुदिनी, आदि भाँति-भाँति के जल-पुष्पों और सेवार, बेंत, नरकुल आदि वनस्पतियों की रंग-बिरंगी पृष्ठभूमि में विस्तृत, नील-हरित अथवा श्वेत वर्ण के पानी के जादूभरे दर्पण में अपनी परछाइयाँ देख-देखकर मुग्ध होते रहनेवाले, उन श्वेतपंखी जलपक्षियों का वह फबता हुआ दृश्य किसे मोहित न कर देगा, और कौन उनकी चित्र-विचित्र झाँकी को देखकर कुदरत की कला को सराहे बिना रह सकेगा? इन विचित्रवेशधारी जलपखेरुओं में, यदि एक ओर हंसावर, बगुला, लगलग, सारस, बुज्जा, दाबिल आदि लंबी टाँगोंवाले तथा लंबचंचुधारी पक्षियों का मेला लगा है तो दूसरी ओर मानों पाल फैलाकर पानी की चादर पर तैरती हुई नौकाओं जैसे दिखाई पड़ते हंस, बत्तख़, सींखपर, आदि अदा के साथ तैरनेवाले उन पखेरुओं की कलापूर्ण नुमाइश सजी है, जिनकी कि कमनीयता का चित्रण या बखान करने का सामर्थ्य या तो कवियों की लेखनी में या फिर केवल कलाकारों की तूलिका ही में पाया जाता है!

जलपक्षियों की इस प्रदर्शनी में प्रकृति की सबसे आकर्षक और भव्य कलाकृति का पद संभवतः 'हंस' ही को दिया जा सकता है, जोकि हमारे अपने देश में तो पुराने ज़माने ही से पक्षि-जगत् में सर्वोच्च प्रतिष्ठा पाये हुए है ही, साथ ही इंगलैंड आदि विदेशों में भी जो काफ़ी लोकप्रियता का पद प्राप्त किये हुए है। यही सुंदर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
जलपक्षी हमारे यहाँ विद्या की अधिष्ठात्री वीणापाणि भगवती सरस्वती का वाहन माना गया है और काव्य की दुनिया में उसकी ख्याति का मुक़ाबला तो, संभवतः, फ़ारसी-उर्दू के कवियों की मशहूर आशना बुलबुल को छोड़कर शायद ही कोई पक्षी कर पाता है। इस प्रसिद्ध जलपक्षी की शक्ल-सूरत हमारे लिये इतनी अधिक जानी-पहचानी है कि उसका परिचय देना अनावश्यक-सा है। इसी तरह उसका रंग भी हमारे लिए कोई अपरिचित वस्तु नहीं है—वह श्वेतवर्ण का प्रायः आदर्श-सा माना जाता रहा है, यद्यपि उसकी एक जाति (जो कि ऑस्ट्रेलिया में पाई जाती है) चटकीले काले रंग की भी होती है! अतः यहाँ हम उसके स्वभाव और गुण-धर्म के बारे में ही कुछ बातें बता देना पर्याप्त समझते हैं, जिनसे कि आम तौर पर लोग शायद परिचित नहीं होते। इनमें से एक विशेष बात तो यह है कि यह जलपक्षी महज़ एक तैराक़ चिड़िया ही है, ग़ोताख़ोर नहीं! वह अपने आहार की पूर्ति अपनी चोंच को पानी में डालकर छोटे-छोटे जलकीटों, घोंघे-सीपियों, केंचुओं और जलपौधों की जड़ों, पत्तियों आदि को चुगकर किया करता है! इस काम में उसकी लंबी गरदन विशेष रूप से सहायक होती है। वह उसकी चोंच को छिछले जलाशयों के ठेठ पेंदे तक पहुँचा दिया करती है! दूसरी विशेष बात यह है कि लगभग पाँच फ़ीट लंबे और पंद्रह-बीस सेर वज़नी शरीरवाला होते हुए भी यह पक्षी ज़बर्दस्त उड़ाकू होता है! कहते हैं, उसकी उड़ने की गति सौ मील प्रति घंटे के वेग तक पहुँच जाती है! अपने इस असाधारण उड़न-सामर्थ्य ही के बल पर यह पक्षी, उत्तरी शीतप्रदेशों में वसंतकाल व्यतीत कर, जाड़ा आने पर भूमध्यसागर के उष्ण क्षेत्रों एवं भारतवर्ष तक झुंड का झुंड आ पहुँचता है! यह एक अति तीखी तुरही की-सी आवाज़ करता है। तैरते समय यह अपनी गरदन को एक खास अदा के साथ राजसी ढंग से मोड़कर एवं सीना तानकर, अपने परों की धवल राशि को कुछ फुला-सा लेता है तथा पंख को ऊपर उठा-सा लेता है। इससे यह बड़ा ही प्रभावशाली जान पड़ता है। सफ़ेद और काले हंसों के अलावा इस पक्षी की एक जाति ऐसी भी पाई जाती है, जिसमें केवल गरदन ही काली होती है, शेष सारा शरीर शुद्ध श्वेत वर्ण का होता है! हंस एक दीर्घजीवी प्राणी है। कहते हैं, उसकी उम्र हाथी से भी अधिक (अर्थात् डेढ़ सौ वर्ष तक की) होती है! वह बड़ा ही ईर्ष्यालु और भावुक प्रेमी जीव होता है। प्रायः नरपक्षी अपनी पत्नी एवं संतान की रक्षा के हेतु निर्भीक होकर शत्रु से कड़ा लोहा लेता है, चाहे कितना ही बड़ा और ख़तरनाक वह क्यों न हो! संतान-पालन के संबंध में तो हंस एक आदर्श अभिभावक माना जाता है।

भव्यता और सौन्दर्य के लिहाज़ से, जलाशयों एवं दलदली क्षेत्रों के इन पक्षियों में हंस के बाद सम्मान का दूसरा स्थान 'हंसावर' या 'फ्लेमिंगो' नामक पखेरू को दिया जा सकता है। यह पक्षी जब पतली टहनियों की-सी अपनी लंबी टाँगों में से एक पर खड़ा हो, अदा के साथ मुड़ी रहनेवाली सुहावनी गरदन सहित अपनी चटक लाल-गुलाबी पंख-राशि को बगुले की तरह साधकर, छिछले जल में समाधिस्थ-सा देख पड़ता है तो हूबहू ऐसा जान पड़ता है मानों जल में कमलदंड पर कोई बड़ा-सा अद्‌भुत कुमुद या सरोज पुष्प खिला हुआ हो! इस लँबटंगू जलपक्षी की चोंच बहुत भारी, तीखी और मुड़ी हुई होती है। वह सिरे पर तो काली और मध्य में नारंगी रंग की होती है। इन पक्षियों की सबसे विचित्र विशेषता इनके उन अनोखे ढंग के ढूहनुमा मिट्टी के घोंसलों के निर्माण में पाई जाती है, जोकि दलदलों के समीपवर्ती कछार में स्थित इनकी बस्तियों में हज़ारों की तादाद में एक ही जगह पर बने हुए मिलते हैं। इन टेकरीनुमा चबूतरों पर एक गड्ढा-सा करके उसमें ये अपने अंडे रखते हैं और प्रायः हर ऐसे चबूतरे पर एक-एक हंसावर अपनी एक टाँग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को मोड़कर खड़ा देख पड़ती है। इनकी उन अनोखी बस्तियों के उस अद्भुत नज़ारे से अधिक मनोरम और चित्ताकर्षक दृश्य कदाचित् ही सारे जंतु-जगत् में दूसरा देखने को मिल सकता है !

परंतु इन जलाशयों या दलदली क्षेत्रों के सभी पक्षियों की बिरादरियाँ—जिनकी कि संख्या सैकड़ों के आँक तक पहुँची हुई है—सौन्दर्य की कसौटी पर ऊँची नहीं उतर सकतीं ! कारण, उनमें से कई बड़ी भौंडी, बदशकल या बेतुके आकार-प्रकार की भी हैं ! उदाहरणार्थ, लगलग-वर्ग के 'एडजूटंट' एवं 'खुली चोंचवाले स्टार्क'; बगुला-वर्ग के 'जूते की-सी चोंचवाले' एवं 'किश्ती की शक्ल की चोंचवाले बगुले' और बुज्जा-वर्ग के गिद्ध की-सी आकृति के बहुतेरे कुरूप लंबचंचुधारी प्राणी किसे सुंदर जान पड़ेंगे? न केवल अपनी सूरत-शक्ल और आकार-प्रकार ही के लिहाज़ से, प्रत्युत रहन-सहन और पेशे या वृत्ति की निगाह से भी, इनमें से कई हमें बहुत रुचिकर नहीं जान पड़ने के ! वस्तुतः इन बेचारों को यह बेतुकी वेशभूषा अपनी-अपनी विशिष्ट परिस्थिति के ही अनुरूप प्रकृति से प्राप्त हुई है, जिसका कि सीधा संबंध उनके अपने अस्तित्व बनाये रखने की गूढ़ समस्या से है ! मिसाल के लिए, 'एडजूटंट' नामक लगलग की वह गंदी और भौंडी, किंतु बेहद ताक़तवर एवं बृहदाकार, डरावनी चोंच महज़ इसलिए विकसित हुई है कि गिद्ध आदि मुर्दाखोरों की तरह यह पक्षी भी जानवरों के शवों के सड़े-गले मांस को खाकर अपना गुज़ारा करने का आदी है ! इसी तरह जूते की-सी शक्ल की अत्यंत चौड़ी, चपटी और भौंडी चोंचवाले मसखरे जैसी आकृति के मिस्र देश के बगुले की चोंच नील नदी में पाई जानेवाली एक मछली के अत्यंत कड़े सिन्नों या छिलकों को तोड़ने-चबाने का काम करते-करते ही शायद इस आकार में बदल गई है ! यही हाल चम्मच की-सी चोंचवाले 'दाबिज़' नामक बुज्जों, 'सारस' की जाति के तीखी लंबी चोंचवाले अन्य अनेक पक्षियों, तथा बत्तखों और मुर्ग़ाबियों की बिरादरी के 'सुरख़ाब', 'सीख़पर', 'सवन', 'नकटा', 'चैती', 'तिदारी' आदि भाँति-भाँति के ख़ूबसूरत या भौंडे जल-कुक्कुटों का भी है, जिनका कि स्थानाभाववश हम यहाँ विस्तारपूर्वक विवरण प्रस्तुत करने से लाचार हैं। हाँ, इन सबमें 'सारस' का उल्लेख परम आवश्यक है, जोकि हमारे देश के सबसे बड़े पक्षी का पद प्राप्त किये हुए है ! यह लंबी टाँगोंवाली सुंदर सलेटी रंग की प्रसिद्ध चिड़िया क़द में पाँच फ़ीट तक ऊँची होती है और इसकी गुलाबी-श्वेत गरदन तथा चोंच काफ़ी लंबी एवं सुहावनी होती है। इसकी बोली बड़ी कर्कश होती है। ये पक्षी प्रायः जोड़े में ही (अर्थात् नर-मादा दोनों साथ-साथ) दिखाई देते हैं और इनका आदर्श दाम्पत्य-जीवन अपनी सुदृढ़ प्रेमनिष्ठा के लिए मशहूर है। कहते हैं, इन पक्षियों में एक बार पति-पत्नी में बिछोह हो जाने पर उनमें से कोई भी आजीवन फिर से जोड़ा नहीं बाँधता ! बल्कि, सुनते तो यह हैं कि इस वियोग-दशा में घुल-घुलकर बचा हुआ सारस अपने प्राण तक दे देता है !

जलपक्षियों के इस विवरण के साथ ही 'कौड़िल्ला', 'खंजन', 'टिटिहरी', आदि कतिपय उन चिड़ियों का भी उल्लेख अप्रासंगिक न होगा, जोकि वास्तविक जलपक्षियों से रिश्ता-नाता न रखते हुए भी महज़ इसीलिये इनके साथ-साथ प्रायः गिनायी जाती हैं कि वे जलाशयों के किनारे बसकर उन्हीं में की मछलियों आदि से अपना गुजर-बसर चलाते पायी जाती हैं। 'कौड़िल्ला' या 'किलकिला' हमारे यहाँ भला किसके लिए अनजान होगा ? प्रायः मिश्रित नील-हरित-कत्थई रंग की सुंदर पोशाक धारण किए हुए बेहद लंबी और नुकीली चोंचवाले इस पक्षी को हम अपने नदी-तालाबों आदि जलाशयों के समीप किसी भी वृक्ष की उभरी हुई डाली पर ध्यान लगाये बैठे देख सकते हैं ! अथवा अठारह-बीस फ़ीट की ऊँचाई पर पानी के ऊपर एक ही जगह पर अपने पंख फड़फड़ाते

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हुए उसे उड़ते देखना भी हमारे देहातों का एक सामान्य दृश्य है ! वह है जलाशयों के किनारे पर बसनेवाला एक सुप्रसिद्ध मछुवा, जोकि ज्योंही अपनी घात की जगह पर से पानी में मछली की टोह पाता है, त्योंही अपने शरीर को एकदम शिथिल करके इस तरह जल पर टपक पड़ता है जैसे कोई पत्थर गिरा हो ! क्षण भर ही में डुबकी लगाकर, चोंच में शिकार लिये, वह पुनः बाहर निकलते तथा अपने स्थान तक वापस उड़ते देखा जाता है ! उसका निशाना प्रायः अचूक होता है और जब चोंच में मछली को लिये हुए वह उड़ता है तो विजय-गर्व से नारा लगाता हुआ 'किल्-किल्' जैसी एक आवाज़ वह करता है। इसी से 'किलकिला' कहलाता है !

'खंजन' जलाशयों के निकट रहकर वहाँ मिलनेवाले कीड़ों को खाकर गुजारा करनेवाली अति चपल और सुहावनी-सी एक छोटी-सी मौसमी चिड़िया है। यह हमारे देश में केवल बरसात बाद शरदकाल में उत्तरी शीतप्रदेशों की ओर से आती है और ग्रीष्मकाल से पहले ही उन्हीं प्रदेशों को वापस लौट जाती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता इस बात में है कि इसके बदन का रंग—जोकि मिश्रित सफ़ेद राखी एवं काला-सा होता है—मौसम के साथ-साथ निरंतर बदलते देखा जाता है ! 'अटी' और 'टिटिहरी' एक ही वर्ग की दो अलग-अलग बिरादरियों की चिड़ियाँ हैं, जो साधारणतः हमारे जलाशयों के आसपास एक खास तरह की आवाज़ लगाती हुई इधर-उधर गतिशील देख पड़ती हैं। ये तटवर्ती बालू के किसी गड्ढे में अंडे दिया करती हैं और जब कोई व्यक्ति उस स्थान के समीप पहुँचता है तो ज़ोरों से कोलाहल करने लगती है तथा उसके सिर पर लगातार मँडराने लगती हैं !

शिकारी पक्षी

जिस प्रकार थलचर जीवों में स्तनपोषी पशुओं का एक विशिष्ट वर्ग सिंह, बाघ, भेड़िया आदि उन हिंसाजीवी शिकारी जानवरों का है, जो कि अन्य छोटे-बड़े पशुओं या प्राणियों को मारकर उन्हीं से अपना गुजर-बसर चलाते पाये जाते हैं, उसी प्रकार पक्षियों की दुनिया में भी प्रकृति ने कतिपय ऐसे भयावने हिंसक नभचर उपजाए हैं, जिनसे कि न केवल अनेकों छोटे-छोटे निरीह पक्षी ही, बल्कि खरगोश, गिलहरी आदि बहुतेरे लघुकाय स्तनपोषी और सर्प आदि उरंगम भी सदैव त्रस्त और भयभीत रहते हैं। इन शिकारी पक्षियों को कुदरत ने उनकी वृत्ति के अनुरूप ही अँकुए जैसी मुड़ी हुई एक खास तौर की मजबूत चोंच, मुड़े हुए तीखे नाखूनों से युक्त कराल पंजे, और देखने में काफ़ी डरावनी-सी एवं रोबीली आकृति प्रदान की है। ये ताक़तवर जीव उड़ने और झपट्टा मारने में तो बेहद कुशल होते ही हैं, साथ ही उनकी दृष्टि भी बड़ी पैनी होती है। सबसे विचित्र बात तो यह है कि कुदरत ने इनकी विविध बिरादरियों का ऐसा कुछ बँटवारा किया है कि न तो ये दिन ही में, न रात में ही, बेचारे छोटे-छोटे पक्षियों और अन्य छोटे जानवरों को चैन से रहने देते हैं ! कारण, इनमें से कई तो—जैसे उक़ाब, बाज़, शिकरा आदि—दिन में अपनी घात लगाये आसमान में मँडराते रहते हैं, और दूसरे कुछ—जैसे उल्लू, आदि—दिन भर तो मानों गायब रहते हैं और रात पड़ते ही अपना हिंसा-कार्य आरंभ कर देते हैं !

न केवल अपने बृहत् आकार-प्रकार और रोबीले दिखावे के लिहाज़ से ही, बल्कि सारे पक्षी-संसार में सबसे अधिक आयु, सबसे तीक्ष्ण दृष्टि, एवं सिंह की-सी निर्भीकता, भव्यता एवं राजसी प्रवृत्ति से युक्त होने के नाते भी 'गरुड़' या 'सुनहला उक़ाब' इस वर्ग के पक्षियों का मानों सम्राट् कहा जा सकता है। यह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पक्षी मुख्यतः उत्तरी अमेरिका, उत्तरी एशिया और यूरोप के कतिपय पर्वतीय क्षेत्रों ही में निवास करता है, यद्यपि इसकी कुछ छोटी जातियाँ हमारे अपने देश में भी मिलती हैं। यह पखेरू अद्वितीय शक्तिशाली होता है। वह न केवल छोटे-बड़े पक्षियों, मुर्गाबियों, खरगोशों एवं बड़ी जाति की थलचर गिलहरियों जैसे जानवरों ही को, एक ही झपट्टे में समाप्त कर, किसी ऊँचे वृक्ष या पर्वत-शिखर पर स्थापित अपने घोंसले में उठा ले जाता है, बल्कि कभी-कभी भेड़-बकरियों जैसे बड़े जानवरों तक को अपने फ़ौलादी पंजों की लपेट में लेकर उन्हें समूचा ही वहाँ तक उठा ले जाने की भी सामर्थ्य रखते वह पाया गया है! इसका प्रमाण यह है कि उसके घोंसले में पक्षियों एवं खरगोशों की ठठरियों के अलावा भेड़ों के भी अस्थि-कंकाल प्रायः पड़े मिले हैं! उक़ाब की कई और बिरादरियाँ भी हैं, जो अपनी तेजस्विता और हिंसक वृत्ति के लिए प्रख्यात हैं। उनमें संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका) के राजचिह्न को सुशोभित करनेवाले सफ़ेद सिरवाले 'बाल्ड ईगल', अपनी भयावनी आकृति से 'उड़नेवाले भेड़िए' की उपाधि प्राप्त करनेवाले अमेरिका के सघन वनों के निवासी कलगीदार 'हार्पी ईगल', तथा फ़िलीपाइन द्वीपों में पाये जानेवाले 'बृहदाकार वानरभक्षी उक़ाब' के नाम विशेषतया गिनाने योग्य हैं। इनमें सफ़ेद सिरवाला उक़ाब देखने में सबसे भव्य और प्रतापी जान पड़ता है। वह भी सुनहले उक़ाब की तरह किसी पर्वतीय कगार या वृक्ष की चोटी पर बहुत ऊँचाई पर अपने घोंसले बनाता है। वह पक्षियों के अलावा मछली के आहार का भी बड़ा शौक़ीन होता है, जिसे 'ऑस्प्रे' नामक एक शिकारी चिड़िया से वह ज़बर्दस्ती छीन लिया करता है। 'हार्पी उक़ाब' बंदर, लोमड़ी, वृक्षवासी स्लॉथ आदि पर ही प्रायः अपना गुजारा चलाता है। इस बड़े पक्षी के पंजे, नाखून और चोंच आदि अंग विशेषरूप से बड़े जीव-जंतुओं की चीरफाड़ के लिए ही बने हुए-से प्रतीत होते हैं!

उक़ाब के बाद, शिकारी हिंसक पक्षियों के इस विशाल समूह की अन्य प्रसिद्ध चिड़ियाँ 'बाज़', 'शिकरा', 'चील', 'बहरी', 'टीसा', 'गिद्ध', 'उल्लू' आदि हैं, जिनमें से अधिकतर से हमारे देश के लोग पुराने ज़माने ही से काफ़ी परिचित रहे हैं। 'बाज़' कबूतर, फ़ाख्ता, तीतर, और वनमुर्गी जैसी चिड़ियों पर निर्वाह करनेवाला एक मँजा हुआ शिकारी पक्षी है। उसी का एक छोटा रूप, जिसे लोग शौक़िया तौर पर शिकार के लिए पाला करते हैं, 'शिकरा' कहलाता है। बाज़ और शिकरा की तरह 'बहरी' भी हमारी एक प्रसिद्ध जानी-पहचानी शिकारी चिड़िया है, जो देश-विदेश सब-कहीं प्राचीन काल ही से पक्षियों के शिकार के लिए पाली जाती रही है। इसी की एक जाति 'तुरुमुती' कहलाती है। इन पक्षियों के अतिरिक्त 'चील' भी हमारा एक सुपरिचित पखेरू है, जिसके झपट्टे सदा से मशहूर रहे हैं। यह पक्षी शहरों में प्रायः मकानों के ऊपर आसमान में मँडराया करता है और झपट्टा मारकर कभी-कभी लोगों के हाथों तक से खाने की चीज़ें छीन ले जाता है! इसी का एक रिश्तेदार 'टीसा' है, जो स्वयं शिकार करके

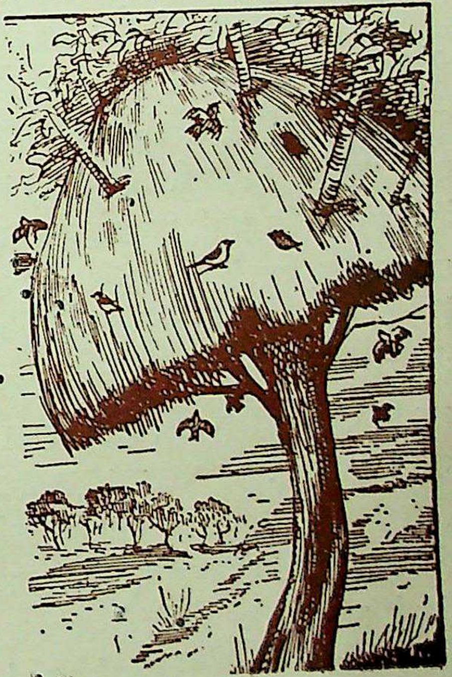

पक्षियों की कारीगरी का एक अद्भुत नमूना
दक्षिणी अफ्रीका की बया जैसी एक नन्हीं-सी चिड़िया द्वारा इस वृक्ष पर बनाये गये झोंपड़ेनुमा सामूहिक घोंसले में उसकी सारी बिरादरी बसती है!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपना भरण-पोषण करने के बजाय दूसरों द्वारा मारे गए शिकार को हड़पने का ही अधिक अभ्यस्त है। अंत में, हिंसाजीवी पक्षियों के इस विवरण में उस कुरूप और भौंडे (किन्तु सबसे अधिक उपयोगी जीव) 'गिद्ध' का भी नाम गिनाना आवश्यक है, जो कि आदिकाल ही से हमारी बस्तियों और आसपास के जंगलों में मरे हुए पशुओं के शवों को खाकर, सफ़ाई रखने की दृष्टि से दुनिया की बहुमूल्य सेवा करता चला आ रहा है। इसीलिए उसे 'जंतु-संसार के मेहतर' की उपाधि दी गई है। इस बड़े-से कुरूप पक्षी के सभी अंग विशेष रूप से मानों अपनी वृत्ति के अनुरूप ही निर्मित हुए प्रतीत होते हैं! प्रायः उसके झुंड के झुंड आसमान में चील की तरह मँडराते देख पड़ते हैं और ज्योंही उन्हें कहीं कोई मुर्दा दिखाई दिया नहीं कि उनकी पूरी जमात उसके आसपास एकत्र हो फ़ौरन् अपना व्यवसाय आरंभ कर देती है।

शिकारी पक्षियों के इस विवरण में अन्य एक दिलचस्प चिड़िया का भी परिचय देना अप्रासंगिक न होगा, जोकि 'मुंशी-पक्षी' (सेक्रेटरी बर्ड) के अनोखे नाम से पुकारी जाती है! यह चिड़िया दक्षिणी अफ्रीका में मिलती है और इसकी एक विशेषता यह है कि इसे साँपों को खाने का विशेष शौक़ है। इसके पैर बगुले या सारस जैसे बेहद लंबे होते हैं और उनमें घुटनों तक फुरफुरे पर छाये रहते हैं, जिससे जान पड़ता है मानों वह कोई जाँघिया पहने हुए हो! इसके सिर पर कुछ लंबे पर उठे रहते हैं, जिन्हें उत्तेजित होने पर यह पक्षी उठा-सा लेता है। उस समय वे ठीक ऐसे जान पड़ते हैं जैसे मुंशीजी के कान में लगी हुई क़लम। इसी से इसको अपना यह अनूठा नाम मिला है! इसका रंग निलौंह-सलेटी-सा होता है, जिससे यह पक्षी बड़ा भड़कीला जान पड़ता है!

आखिर में हमें 'उल्लू' और उसकी जाति के अन्य निशाचर शिकारी पक्षियों का भी उल्लेख यहाँ करना है, जोकि दिन भर छिपे रहकर केवल रात को शिकार के लिए निकलने तथा एकदम सामने की ओर घूर-घूरकर देखनेवाली मनुष्यों की-सी विचित्र आँखोंवाले होने के नाते सारे जंतु-जगत् में अपना एक विलक्षण स्थान बनाये हुए हैं। ये शिकारी पक्षी बड़े ही चौकन्ने और चालाक तथा खतरनाक होते हैं। अतः यह समझ में नहीं आता कि हमारी साधारण बोलचाल की भाषा में इनके नाम के साथ भोंदूपन या बेवकूफ़ी का वह अर्थ क्यों जुड़ गया है, जिससे कि इनके स्वभाव या वृत्ति का दरअसल मेल नहीं मिलता! ये पक्षी एक बात में अपने अन्य उड़नेवाले भाई-बन्धुओं से एक निराली विशेषता रखते हैं। वह यह है कि जब ये उड़ते हैं तो इनके डैनों से वैसी आवाज़ नहीं निकलती जैसी कि पक्षियों के पंख से आम तौर पर सुनाई पड़ती है—यहाँ तक कि यदि ये दो हाथ की दूरी से होकर भी उड़ते हुए निकल जाएँ तो भी प्रायः किसी को इनकी आहट नहीं मिल पाती! यह व्यवस्था कुदरत ने इन पक्षियों में शायद इसीलिए की है ताकि रात के सन्नाटे में बिना किसी को आहट दिये सफलतापूर्वक ये अपना शिकार मार सकें! इन पक्षियों की अनेक छोटी-बड़ी बिरादरियाँ हैं, जिनमें सबसे मशहूर वीरान खँडहरों या वृक्षों के पुराने कोटरों में बसनेवाले बड़े 'घुग्घू', अपने सिर के ऊपर उठे हुए परों के दो विलक्षण गुच्छों से युक्त 'चोटीवाले उलूक' (ग्रेट हार्नड् आउल) तथा ज़मीन पर ही रहनेवाले 'बिलवासी उलूक' की जातियाँ हैं। छोटी बिरादरी के उल्लू 'खूसट' या 'चुग़द' (स्क्रीच आउल) के नाम से पुकारे जाते हैं। इन सबके रंग भूरे, कबचितरे से लेकर सफ़ेद और चटक सुनहले-पीले तक तरह-तरह के होते हैं। चोंच सबकी कटिया की तरह टेढ़ी और नुकीली होती है। ये निशाचर प्रायः पालतू और जंगली चिड़ियों, गिलहरियों, चूहों आदि से लेकर खरगोश जैसे बड़े जीवों को

भी अपनी लपेट में लेने से नहीं चूकते ! इसीलिए इन्हें 'उड़नेवाले बिलार' की उपाधि दी गई है। उल्लू की बोली बड़ी मनहूस होती है। प्रायः इसका बस्तियों में रहना अच्छा नहीं समझा जाता, क्योंकि यह ऊजड़पन का प्रतीक माना जाता है ! पाश्चात्य जगत् में उल्लू को विवेकशील बुद्धि का प्रतीक भी माना गया है !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमारी बस्तियों, बाग़-बगीचों और आसपास के जंगलों में रहनेवाली प्रसिद्ध चिड़ियाँ

पक्षियों की विशाल दुनिया का एक बहुत बड़ा भाग हज़ारों प्रकार की छोटी और बड़ी, भाँति-भाँति की चित्र-विचित्र रंगीन वेशभूषावाली और सैकड़ों प्रकार की संगीतमय अथवा कर्णकटु बोलियाँ बोलनेवाली, उन अनोखी और साधारण चिड़ियों से भरा पड़ा है, जोकि हमारी बस्तियों, खेतों, बाग़-बगीचों एवं निकटवर्ती जंगलों की निवासिनी होने के नाते चिरकाल से हमारी पड़ोसिन-सी रही हैं। फलतः आम तौर पर हमारे लिए वे काफ़ी जानी-पहचानी हुई-सी हैं। भला, इन 'गौरेया' और 'अबाबील', 'कोयल' और 'पपीहा', 'चंडूल' और 'बुलबुल', 'कठफोड़' और 'ठठेरा', 'दर्ज़िन' और 'बया', 'तोता' और 'मैना', 'पीलक' और 'पतेना', 'लाल मुनिया' और 'शकरखोर', 'मछमरनी' और 'नीलकंठ', 'हुदहुद' और 'महोख', 'कबूतर' और 'तीतर', 'फाख्ता' और 'बटेर', 'मोर' और 'लवा', तथा 'कौआ' और 'दँहगल' जैसे नित-प्रति ही अपने आसपास उड़ते, फुदकते, नाचते, गाते, घोंसले बनाते और उनमें बसेरा लेते तथा दाना-पानी की खोज-तलाश में निरंतर क्रियाशील दिखाई देते रहनेवाले अपने चिरपरिचित पड़ोसियों का भी परिचय देने की क्या हमें कभी आवश्यकता हो सकती है ? और फिर यदि उनके अपने-अपने अनूठे वेश, विलक्षण बर्त्ताव तथा गुण-धर्म-विषयक अपनी-अपनी विशेषताओं के प्रति आकृष्ट हो विस्तार के साथ उनका अलग-अलग बखान करने पर हम यहाँ तुल ही जाएँ तो भला इतने सीमित पृष्ठों के दायरे में हम उनका यथोचित वर्णन प्रस्तुत कर सकने में क्योंकर कामयाब हो सकते हैं ! कारण, जंतु-वैज्ञानिकों के अनुसार इस प्रकार की हमारी इन पड़ोसिन चिड़ियों की कम से कम छः हज़ार से भी अधिक जातियाँ एवं पंद्रह हज़ार उपजातियाँ हैं ! अतः यहाँ तो केवल सामुहिक रूप ही से इनका उल्लेख करके हमें संतोष कर लेना होगा।

तो आओ, सबसे पहले हम इनके उस सबसे अधिक दर्शनीय और वृहत् वर्ग के तड़क-भड़कदार प्राणियों को ही लें, जिसके कि प्रतिनिधि 'मोर', 'तीतर', 'बटेर', 'लवा', 'हारिल', 'चहा', 'कबूतर', 'फाख्ता', 'भटतीतर' एवं भाँति-भाँति के पालतू तथा जंगली 'मुर्गे-मुर्गी' हैं। बड़े आकार के ये तड़कीले-भड़कीले पक्षी, जोकि सादी तथा सुंदर आकृतिवाली रंग-बिरंगी पंखराशि से युक्त अनेक जातियों और बिरादरियों में बँटकर संसार भर के आबाद इलाक़ों में फैले हुए हैं, आम तौर पर जंतुविज्ञान की पोथियों में 'शिकार के पक्षी' कहे जाते हैं। सो इसलिए कि उन पर सदैव ही

'बुश टर्की' नामक पक्षी का टीले के-से आकार का अनोखा घोंसला, जिसे वह पत्तियों का ढेर लगाकर तैयार करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से आहार-पूर्त्ति के लिए मनुष्य का दाँव रहा है। ये पक्षी मनुष्य द्वारा न केवल मारकर खाये ही जाते हैं, प्रत्युत इनमें से कई मांस, अंडे आदि के लिए पाले भी जाते हैं। सौन्दर्य की दृष्टि से, इस वर्ग के पक्षियों में सर्वोपरि स्थान, निर्विवाद रूप से, एक ओर तो अपनी अनोखी पंख-राशि में इन्द्रधनुष की-सी सप्तरंगी शोभा नखराये रहनेवाले हमारे चिरपरिचित 'भारतीय मोर' को दिया जा सकता है! दूसरी ओर, बिना किसी हिचक के उसी के समकक्ष का अथवा किसी हद तक उससे भी अधिक ऊँचा पद हम प्रदान कर सकते हैं, 'स्वर्ग के पक्षी' के नाम से विख्यात, अपनी दुम की पंखराशि में अद्भुत रंग-बिरंगी छटा छहराये रहनेवाली, पूर्वीय द्वीपपुंजों में पायी जानेवाली, उस अद्वितीय सुंदर और मनमोहक चिड़िया को भी, जिसके कि परों का मूल्य अपने वज़न के सोने के मूल्य से भी पचीस-तीस गुना अधिक आँका जाता है! इन पक्षियों के रंगों की अद्भुत साज-सज्जा का विवरण प्रस्तुत करना शब्दों की शक्ति से एकदम परे की बात है।

प्रायः अपनी दुम पर की हरित-पीत-नीलवर्णीय मखमली पंखराशि को ऊपर उठाकर (जिस पर कि अर्द्धनिमीलित नयनों की-सी असंख्य अर्द्ध-चंद्राकार आकृतियाँ बनी रहती हैं) अपनी भोंडी प्रेयसी के सन्मुख नृत्य करते हुए 'मोर' की मनोहारी शोभा तुमने अवश्य ही कभी देखी होगी! अतः उसके विशेष परिचय की आवश्यकता ही नहीं है। परन्तु उसके महान् प्रतिस्पर्द्धी 'स्वर्ग के पक्षी' के बारे में कुछ बताना बहुत ज़रूरी है। इन लुभावने पक्षियों की वेशभूषा परों से नहीं, बल्कि सोने-चाँदी के महीन ज़री-जैसे तारों, अथवा यों कहिए कि रोशनी की झिलमिलाती हुई किरणों से बनी हुई-सी प्रतीत होती है! इनके सिर तथा ग्रीवा के क्षेत्र में तो फुरफुरे बालों के-से हरित-पीत-वर्णीय रेशमी परों की एक महीन झालरनुमा अयाल-सी बनी होती है और दुम की जगह फैली रहती है हरे, लाल, बैंजनी और सुनहले पीले ज़री के-से तारों की झिलमिल-सी एक अद्भुत अनोखी लंबी चँवर, जिसका रूप पक्षियों की अलग-अलग बिरादरियों में अलग-अलग प्रकार का होता है! यह अलौकिक वेशभूषा केवल नरपक्षी में ही होती है, मादा में नहीं! कहते हैं, जब वह गर्व के साथ अपनी इस पंखमाला को दरसाता हुआ, वृक्षों की सघन डालियों पर थिरक-थिरककर, प्रणयिनी के आगे नाचता है, तो यही ज्ञात होता है, जैसे कि स्वर्ग से साक्षात् कोई अप्सरा ही चिड़िया का रूप धरकर पृथ्वी पर उतर आई हो! इस सुंदर पक्षी की अनेकों चित्र-विचित्र जातियाँ न्यूगिनी और उसके समीपवर्ती द्वीपों में मिलती हैं। ये आकार में बहुत बड़े नहीं होते। इनमें से कई तो मुश्किल से छः से आठ इंच की लंबाई के ही होते हैं! यह एक उल्लेखनीय बात है कि तड़क-भड़कदार वेशभूषावाले मोर आदि अनेकों पक्षियों की भाँति इन सुंदर चिड़ियों को भी प्रकृति ने मधुर स्वर का वरदान नहीं दिया है!

इन्हीं के एक नज़दीकी रिश्तेदार 'बाग़बान पक्षी' के नाम से पुकारे जाते हैं। ये क्रीड़ा के हेतु कई प्रकार की काईनुमा वनस्पतियों को इकट्ठा करके उनसे एक तरह की वाटिकास्थित कुटिया-सी बनाते हैं, जिसके आसपास इन्हीं काइयों द्वारा सुसज्जित हरियाली की कई क़ालीननुमा पट्टियाँ-सी वे बिछाते हैं! इन हरे क़ालीनों के बीच-बीच की क्यारियों में बड़े ही चटकीले-भड़कीले पुष्प और फल तथा कीड़े-भुनगे आदि सजाकर रक्खे जाते हैं! तारीफ़ की बात तो यह है कि जब सजावट की यह सामग्री मुरझाने लगती है तो उसे हटाकर तुरंत ही उसकी जगह पर ताज़ी सामग्री लाकर उसकी पूर्त्ति कर दी जाती है!

'मोर' तथा 'स्वर्ग के पक्षी' के अतिरिक्त, तीतर-बटेर एवं मुर्ग़ियों की जाति के भी बहुतेरे पक्षी अपनी भड़कीली चितकबरी पंखराशि के बल पर जंतुवर्ग की किसी भी सौंदर्य-प्रतियोगिता में उतरने का नैसर्गिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दावा कर सकते हैं। तुम्हें यह जानकर कुतूहल होगा कि अपनी लाल-पीली पंखराशि को फुलाकर अकड़ के साथ चलनेवाले हमारे सुपरिचित पालतू मुर्गे का एक बंधु ऐसा भी है, जिसकी कि दुम छः फ़ीट से भी अधिक लंबी होती है! इसी तरह अपनी दाँव-पच की लड़ाई द्वारा लखनऊ की नवाबी के दिनों की याद को तरोताज़ा बनाये रहनेवाले तीतर-बटेरों की भी अनेकों चित्र-विचित्र बिरादरियाँ संसार भर में फैली हुई हैं! ये पक्षी वृक्षों के बजाय धरती पर ही रहना पसंद करते हैं और उड़ने के बजाय अधिकतर चलने या दौड़ने के ही वे अभ्यस्त हैं। पर शिकार के पक्षियों में सबसे अधिक प्यारे, भोले-भाले और लुभावने तो हैं 'कबूतर', जिनकी कि भिन्न-भिन्न रंगों और आकृतियों वाली अनेक सुहावनी जातियों में से कुछ उड़ने में इतनी अधिक निपुण हैं कि पुरानी प्रथा के अनुसार एक से दूसरे स्थान को संदेश भेजने में आज भी उनका प्रयोग किया जाता है! इनकी यह उपयोगिता इस बात के कारण से है कि सैकड़ों मील की दूरी से छोड़े जाने पर भी ये पक्षी कभी अपने निवासस्थान को वापस लौट आने से नहीं चूकते! कबूतरों के ही नज़दीकी रिश्तेदार 'फ़ाख्ता' हैं, जिनकी भी अनेक सुंदर क़िस्में मिलती हैं। इसी वर्ग की अन्य चिड़ियाँ 'लवा', 'भटतीतर', 'हारिल' आदि हैं, जो या तो तीतर-बटेर की या कबूतरों की नातेदार हैं। इनमें 'भटतीतर' के बड़ी ही सुंदर लंबी चितकबरी दुम होती है! यह पक्षी उड़ने में काफ़ी दक्ष होने पर भी वृक्षों के बजाय धरती पर ही रहने की विशेष प्रवृत्ति रखता है। यहाँ उस प्रसिद्ध विलुप्त पक्षी 'डोडो' का भी उल्लेख किये बिना हम नहीं रह सकते, जो कि आकार में बड़ी मुर्गी के बराबर का एवं अजीब-सी मुड़ी हुई बड़ी भारी चोंचवाला, सुस्त और उड़ने से लाचार एक भौंडा पक्षी था, जिसे पृथ्वीतल से उठे कोई तीन सौ वर्ष बीत चुके हैं। यह सीधा-सादा पखेरू मॉरीशश द्वीप में पाया जाता था और नातेदारी के लिहाज़ से वह फ़ाख्ता-वर्ग के पक्षियों से निकट का रिश्ता रखता था!

इसी सिलसिले में 'होत्ज़िन' नामक उस विचित्र चिड़िया का भी उल्लेख अप्रासंगिक न होगा, जो कि दक्षिणी अमेरिका में पायी जाती है। यह पक्षी बचपन की अवस्था में अपने डैनों पर की पंजेनुमा रचनाओं की सहायता से छिपकिली की तरह रेंगकर वृक्षों की डालियों पर विचरता है। यह उड़ने में तो अधिक समर्थ नहीं होता, परन्तु पानी में कूदकर ग़ोता लगाने व तैरने में काफ़ी पटु होता है! इन्हीं असामान्य खूबियों के कारण जंतु-वैज्ञानिकों के लिए एक महान् कुतूहल और आश्चर्य की वस्तु वह बना हुआ है! यह प्राचीन-काल के उरंगमवंशी सदंत आदिम पक्षी 'आर्कियोप्टेरिक्स' की तरह, उरंगमों और पक्षियों के बीच की कड़ी का एक महत्त्वपूर्ण नमूना-सा मालूम होता है! इसके सिर पर एक कलगी-सी होती है और बदन का रंग गहरा हरा होता है, जिस पर सफ़ेद धारियाँ पड़ी रहती हैं। दुनिया में अपने ढंग का यह एक ही पक्षी है!

उपर्युक्त 'मयूर-वंशियों' एवं 'तीतर-बटेर-वंशी' तड़कीली-भड़कीली चिड़ियों के उपरान्त, हमारा सबसे अधिक ध्यान खींचनेवाले पक्षी 'शुक-वर्ग' के वे हरे, नीले, पीले, तथा लाल रंगों की कलापूर्ण छवि छहराये रहनेवाले पखेरू हैं, जिनकी 'टुइयाँ', 'हरा तोता', 'पहाड़ी सुग्गा', आदि कुछ मामूली देसी जातियों से हम सदा से परिचित रहे हैं, कारण वे हमारे यहाँ घर-घर पाले जाते हैं! ये पक्षी मनुष्य की बोली की नक़ल उतारने की अद्भुत क्षमता रखते हैं। ऐसी बोलियाँ रटा-रटाकर पिंजड़े में पाले जानेवाले तोतों को सिखाई जाती हैं। इसी की बुनियाद पर अन्य पक्षियों से ये अधिक बुद्धिमान भी समझे जाते हैं! ये सब के सब अधिकतर फलाहारी होते हैं और इनकी एक खास विशेषता कटिया की तरह मुड़ी हुई इनकी चोंच है, जो विशेष रूप से मानों फलों को कुतर-कुतरकर खाने के लिए ही बनी हुई प्रतीत होती है। इस वर्ग का सबसे बड़ा और दर्शनीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पक्षी 'काकातुआ' नामक वह बृहदाकार शुक है, जिसकी 'सफ़ेद' एवं 'लाल' नामक दो प्रमुख जातियाँ मिलती हैं। इस तोते के सिर पर एक बड़ी ही सुंदर कलगी होती है। प्रायः चिड़ियाखानों में पिंजड़े के भीतर लटकते हुए झूलों पर झूल-झूलकर यह पक्षी अपनी कलाबाज़ी दिखाया करता है। इसकी लाल-वर्ण की जाति में लाल के अलावा बीच-बीच में नीले, पीले एवं हरे रंग के भी छुटपुट परों की शोभा निखरी रहती है।

शुक-वर्ग के ही निकट के पड़ोसी 'कठफोड़-वर्ग' के वे विचित्र चोंचधारी हैं, जिनमें से एक से हमारे देहातों में प्रायः सब कोई परिचित पाये जाते हैं। यह पक्षी अपनी चोंच द्वारा पेड़ों की लकड़ी पर आघात कर-करके उसे छेद देने की असाधारण योग्यता रखता है। पक्षि-जगत् के इस बढ़ई का ही एक प्रसिद्ध नज़दीकी रिश्तेदार भारी-भरकम चोंचवाला वह बृहदाकार भौंडा पक्षी 'हार्नबिल' या 'धनेश' है, जो कि अपनी चोंच की एक ही चोंट से लकड़ी में आधे इंच तक गहरा छेद कर लेता है! एक विचित्र मसखरे-सा जान पड़नेवाला यह बदशकल पक्षी अंडा देते समय मादा को किसी वृक्ष के कोटर या खोखले स्थान में बिठा देता है और उस कोटर का मुँह मिट्टी द्वारा बंद कर देता है! केवल मादा की चोंच भर बाहर निकालने की जगह वह उसमें बाक़ी छोड़ देता है। इसी क़ैदखाने जैसे घोंसले में मातृत्व की अवधि भर बंदिनी रहकर, मादा 'धनेश' अपनी बाहर निकली हुई चोंच द्वारा नरपक्षी से अपने आहार की सामग्री पाती रहती है! धनेश का एक पक्का प्रतिस्पर्द्धी अमेरिका के सघन वनों का वासी 'टूकन' नामक वह बृहत्चंचुधारी है, जो कि अपनी भारी-भरकम, चौड़ी-चपटी, मुड़ी हुई चोंच की बदौलत एक ही जगह पर बैठे-बैठे चारों ओर की शाखाओं के फलों को बटोर लिया करता है। इस पक्षी की तस्वीर इस पुस्तक के आवरण-पृष्ठ पर प्रदर्शित है।

अंत में जब हम अपने आसपास के कहीं अधिक परिचित और निकटस्थ पक्षियों की दुनिया में प्रवेश करते हैं, तो एक ओर तो हमें 'कोयल', 'पपीहा', 'चंडूल', 'बुलबुल' तथा 'नाइटिंगेल' जैसी मीठी-मीठी बोलियाँ बोलनेवाली; और दूसरी ओर 'दरज़िन' और 'बया' जैसी कारीगरी से पूर्ण घोंसले बनानेवाली; इधर 'गौरैया', 'थरथरकँपनी', 'दँहगल', और 'मछमरनी' तथा 'जंगली मैना' जैसी नितप्रति हमारे आसपास ख़ास-ख़ास मौसमों में या बारहों मास ढिठाई के साथ फुदकती रहनेवाली; तो उधर हमारे बाग़-बग़ीचों को सदैव आबाद किये रहनेवाली 'अबाबील', 'लाल मुनिया', 'पुदना', 'पतेना', 'पीलक', 'नीलकंठ', 'ठठेरा', 'शकरखोर', जैसी सैकड़ों-हज़ारों प्रकार की देसी और विदेशी चिड़ियों की भरमार दिखाई पड़ती है, जिनका कि संपूर्ण विवरण देने के लिए अलग से पूरी एक पुस्तक चाहिये। इन्हीं में जंतु-जगत् का वह हिंसक और कूटनीतिज्ञ सर्वभक्षी 'कौआ' भी शरीक है, जो कि क्या शहरों और गाँवों में, तथा क्या बाग़-बग़ीचों और जंगलों में, हर कहीं हर घड़ी हमारे यहाँ मौजूद मिलता है! इसी का एक नज़दीकी जंगली रिश्तेदार 'भुजंगा' नामक काग है, जो कि चील जैसे शिकारी पक्षियों तक पर वार करने से नहीं चूका करता! लगभग छः हज़ार जातियों और पंद्रह हज़ार उपजातियों में बिखरे हुए पक्षियों के इस महासमुदाय में ऊपर उल्लिखित चिड़ियों के अतिरिक्त और भी अनेकों देशी-विदेशी चिड़ियाँ सम्मिलित हैं। शोभा की दृष्टि से, इन सब में दो जाति की चिड़ियों का विशेष रूप से हम यहाँ उल्लेख करना चाहते हैं—एक तो 'हमिंग बर्ड' या 'भनभनानेवाली चिड़ियाँ', जो कि पक्षी-संसार के सबसे छोटे जीव हैं; दूसरे, 'लायर बर्ड' नामक पक्षी, जो कि 'लायर' नामक प्राचीन बाजे की शक्ल की अपनी अति सुंदर दुम के लिए प्रख्यात हैं। 'भनभनानेवाली चिड़ियों' का आकार मात्र दो-सवा दो इंच का ही होता है! इन रंग-बिरंगे पक्षियों को 'उड़ते हुए पुष्पों' की उपाधि प्राप्त है!

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उरंगम (रेंगने वाले प्राणी)

जंतु-जगत् में, विकासक्रमानुसार, पक्षियों से तो निम्न कोटि का परन्तु मेंढक आदि उभयचरों से कहीं अधिक समुन्नत, एक विशाल समुदाय उन थलचर, जलचर एवं जल-स्थलचर प्राणियों का है, जो कि पेट के बल रेंगकर या घसिट-घसिटकर चलने के कारण 'उरंगम' (रेप्टाइल) कहलाते हैं। इस वर्ग के जानवरों का ख़याल आते ही, स्वभावतः, दो प्रकार के भाव हमारे मन में उठते हैं—एक तो घृणा का भाव; दूसरा ख़तरे या भय का भाव भी। भला, सरक-सरककर चलनेवाला, बिना रोएँ का, सिन्नेदार खालवाला कोई भी जीव क्यों न किसी को घिनौना जान पड़ेगा! साथ ही ऐसे जानवर, चाहे वे निरापद ही क्यों न हों, कुदरती तौर पर भयावने या ख़तरनाक भी प्रतीत होंगे। निश्चय ही इस वर्ग के कई जीव (जैसे छिपकिलियाँ) काफ़ी गंदे या घिनौने तथा कई एक (जैसे मगर और विषैले सर्प) ज़बर्दस्त हानि पहुँचानेवाले या घातक होते हैं। परंतु बहुतेरे ऐसे भी हैं, जो न तो देखने में ही उतने घिनौने हैं, न वैसे हानिप्रद या ख़तरनाक ही हैं। कुल मिलाकर लगभग ४००० प्रकार के उरंगमों की जातियों-उपजातियों का उल्लेख जंतु-विज्ञान की पोथियों में है। इनमें उन महाकाय विलुप्त प्राणियों का भी समावेश किया गया है, जो कि आज से दस-पंद्रह करोड़ वर्ष पूर्व इस पृथ्वी पर अपना एकछत्र साम्राज्य स्थापित किये हुए थे, तथा जिनका विवरण पिछले एक प्रकरण में विस्तारपूर्वक तुम्हें बताया जा चुका है।

इन उरंगमों की एक मुख्य विशेषता, जोकि उन्हें अन्य पृष्ठवंशियों से एकदम पृथक् समूह में रखने को हमें बाध्य कर देती है, यह है कि वे सब हैं 'ठंढे रक्तवाले' प्राणी, अर्थात् इनके ख़ून में गरमी की मात्रा उस दर्जे तक की नहीं पाई जाती, जिस दर्जे तक कि वह 'गरम रक्तवाले' जीवधारियों में मिलती है। दूसरी एक विशेषता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

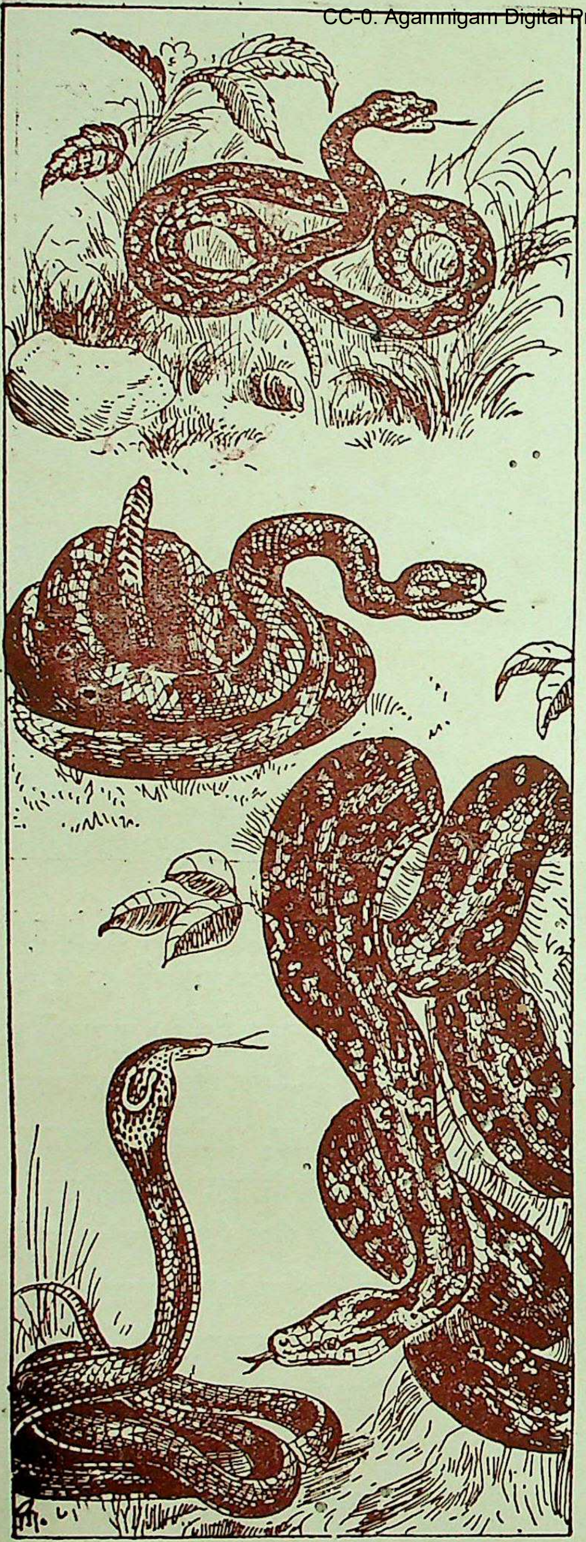

सर्पों के कुछ प्रसिद्ध नमूने
(क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर) 'दबोइया'; 'झनझनिया साँप'; 'अजगर'; और 'गेंहुअन काला नाग या कोबरा'। इनमें अजगर को छोड़कर शेष तीनों सर्प घोर विषधर हैं

इनमें यह भी है कि इनके बदन पर न तो उच्च वर्गों के जानवरों की तरह रोएँ या बाल ही होते हैं, न पक्षियों की तरह पर या पंख ही। इसके बजाय इन सबकी खाल सिन्नेदार (एक प्रकार के शल्कों से निर्मित) होती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी ठंढे रक्तवाले अथवा सिन्नेदार खालवाले जीव 'उरंगम' ही होते हैं। उदाहरणार्थ, मेंढक, न्यूट आदि उभयचर इस बात में उरंगमों से हूबहू मिलते हैं, तथापि इस वर्ग में वे सम्मिलित नहीं किये जा सकते। वस्तुतः पृष्ठवंशी समुदाय में उरंगमों का स्थान मेंढक आदि उभयचरों तथा पक्षियों के बीच के विकास-सोपान पर है। वे मछलियों और उभयचरों से विशेष समुन्नत प्राणी हैं। कारण, उनके शरीर में साँस लेने के लिए मत्स्य या मेंढक वर्ग के जीवों की तरह गलफड़े नहीं होते, बल्कि बाक़ायदा फेफड़ों की व्यवस्था होती है। इस वर्ग के सभी प्राणी अंडज हैं और उनमें से अधिकतर केवल उष्णतर प्रदेशों ही में पाये जाते हैं। उन्हें भूमध्यरेखा के गरम और नम इलाक़े अधिक अनुकूल पड़ते हैं। जाड़े की मौसम में ये प्राणी सुस्त पड़ जाते हैं और वर्षाकाल तथा गरमी की ऋतु में उनमें अधिक तेज़ी आ जाती है। इनमें से कई (जैसे कछुए) मंदगामी होते हैं, परंतु अनेकों (जैसे सर्प, छिपकिलियाँ आदि) बहुत तेज़ गति से चलते भी पाये जाते हैं। कई असाधारणतया दीर्घ-जीवी भी होते हैं (जैसे कि कुछ जाति के सर्प, मगर और स्थलचर कछुए)। इनके आहार में जीव-जंतुओं के अतिरिक्त पौधे भी सम्मिलित हैं। कई छोटे उरंगम कीटभक्षी भी पाये जाते हैं। निस्संदेह, इनमें से कुछ विषैले भी हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत ही कम है। यदि कुल मिलाकर देखा जाय तो तरह-तरह के हानिप्रद कीड़ों को ख़त्म करने में मदद देकर इस वर्ग के प्राणी नुक़सान के बजाय लाभ ही अधिक पहुँचाते हैं। आओ, अब संक्षेप में इन रेंगनेवाले जीवों का परिचय तुम्हें कराएँ। इनके चार मुख्य वर्ग निर्धारित किए गए हैं। प्रथम, छिपकिलियों और गोह आदि का वर्ग है; दूसरा, मगर और घड़ियाल का; तीसरा, भाँति-भाँति के कछुओं का; और चौथा सब प्रकार के साँपों का। हम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सबसे पहले सर्प-समूह के उरंगमों ही को लें, जो कि बिरादरियों की संख्या के लिहाज़ से इनमें सबसे बड़ा वर्ग है।

भाँति-भाँति के सर्प

हमें ज्योंही किसी रेंगनेवाले प्राणी का ध्यान कराया जाता है, त्योंही हमारी कल्पना में सबसे पहले सहज ही सर्प की तस्वीर आ खड़ी होती है! इसका कारण केवल यह नहीं है कि उरंगम-वर्ग के प्राणियों में (छिपकिली को छोड़कर) यही हमारा सबसे अधिक जाना-पहचाना प्राणी है, बल्कि इसलिए भी कि (मगर के सिवा) उससे हम अन्य सभी उरंगमों से कहीं अधिक भयभीत भी रहते हैं। सर्प से इतना अधिक डरने का हमारा एकमात्र कारण यह है कि उसका दंश हमारे लिए घातक है! भारतवर्ष में ही प्रति वर्ष लगभग बीस हज़ार आदमी सर्पदंश से अपने प्राण गँवाते हैं, और सारी दुनिया में इस छोटे-से उरंगम द्वारा होनेवाली मनुष्यों एवं जानवरों की हत्या की संख्या तो और भी बढ़ी-चढ़ी है। परन्तु इस वर्ग के सभी जीवों के प्रति हमारा यह भय एकदम निराधार और निरर्थक-सा ही है; कारण, सभी साँप ज़हरीले या घातक नहीं होते! तुम्हें यह जानकर ताज्जुब हुए बिना न रहेगा कि संसार भर के साँपों के तीन सौ छब्बीस वर्गों में से (जो कि लगभग दो हज़ार छोटी-बड़ी बिरादरियों एवं नौ महासमूहों में बँटे गए हैं) केवल अड़तीस वर्गों के ही सर्प न्यूनाधिक रूप में विषैले होते हैं—बाक़ी सब नाममात्र को भी ज़हरीले नहीं होते! हाँ, विषैले न होते हुए भी कुछ बड़ी जाति के सर्प (जैसे अजगर आदि) हिंसक और ख़तरनाक अवश्य होते हैं। परन्तु हर हालत में हानिप्रद सर्पों की संख्या बहुत सीमित ही है। भौगोलिक दृष्टि से भी विषधर साँप ज़्यादेतर एशिया, अफ्रीका और योरप ही में व्याप्त हैं। नई दुनिया की ज़्यादेतर सर्प-जातियाँ विषहीन ही हैं! वहाँ के केवल कुछ ही जाति के सर्प विषैले होते हैं!

इसके पहले कि सर्प-समूह के कतिपय सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रख्यात विषधर एवं विषहीन नमूनों का परिचय हम

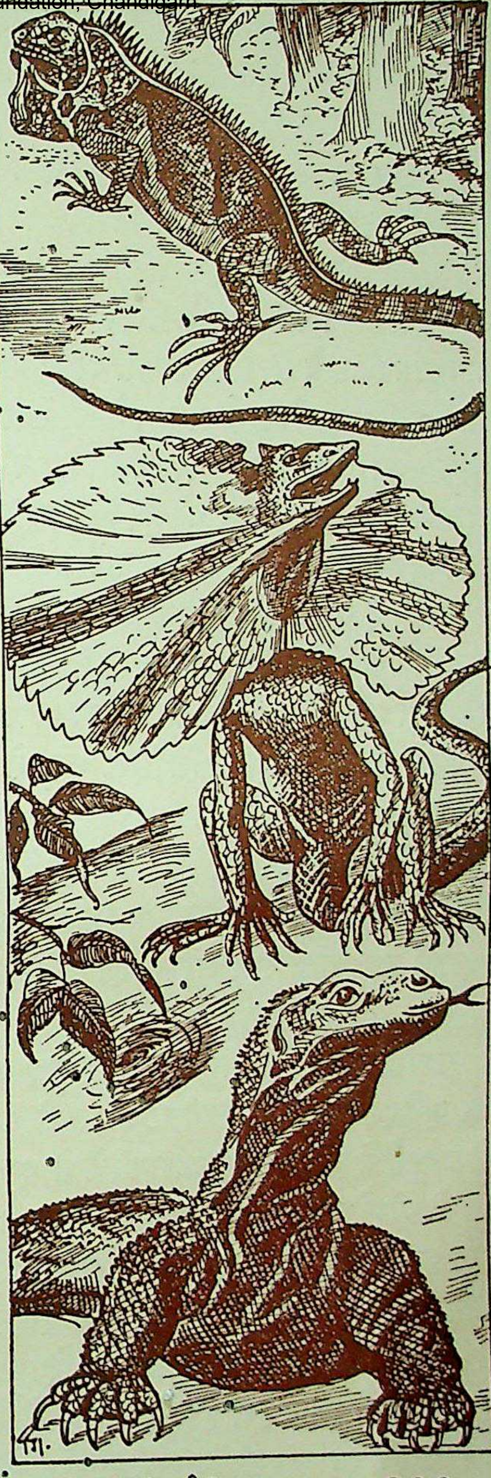

छिपकिली-वर्ग के कुछ अद्भुत प्रतिनिधि (क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर) नई दुनिया की 'इगुआना' नामक छिपकिली; झालरदार अनोखा गिरगिट; वर्त्तमान युग की सबसे बड़ी गोह 'कमोडो ड्रैगन'।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुम्हें दें; यह आवश्यक है कि इस उरगम की विशिष्ट प्रकार की शरीर-रचना के बारे में भी संक्षेप में कुछ जानकारी हम तुम्हें करा दें। यह तो तुम्हें मालूम ही होगा कि सर्प के, अन्य प्राणियों की तरह, पैर नहीं होते। तो फिर भला वह चल कैसे लेता है? इसका उत्तर हम पाते हैं उसकी अनूठी शरीर-रचना में! यदि तुमने कभी किसी सर्प को धरती पर रेंगते हुए देखा हो तो इस बात पर तुम्हारा ध्यान गए बिना न रहा होगा कि यह प्राणी एक अजीब ढंग से अपने शरीर को मोड़ता, बल देता और छोटी-छोटी कुंडलियों में उसे तोड़ता-मरोड़ता हुआ-सा मानों घसिटता हुआ आगे को सरकता है। इसकी यह घसीट बल देकर धरती पर फेंकी जानेवाली किसी ज़ंजीर या रस्सी की मरोड़दार सरकन जैसी होती है! उसकी इस सरकन के लिए यह नितान्त आवश्यक होता है कि जिस धरातल पर वह सरके वह एकदम चिकना न हो। प्रायः तुमने देखा होगा कि काँच की-सी चिकनी फ़र्श पर साँप उतनी तेज़ी से नहीं रेंग पाता, जितनी कि खुरदरी सतह पर! इससे तुम समझ सकते हो कि वह खुरदरे धरातल का मानों सहारा लेकर अपने बदन को आगे की ओर घसीटता है। इस काम में उसके शरीर पर बने हुए छिलकेनुमा पतले-पतले सिन्नों से काफ़ी मदद मिलती है। वे मानों धरती को पकड़कर आगे बढ़ने एवं ज़ोर लगाने के लिए उसे पैरों की तरह सहायता देते हैं। परंतु सबसे अधिक मदद तो मिलती है उसे अपने शरीर की उस विशिष्ट प्रकार की अस्थि-रचना से, जोकि गेंद-गड्ढेवाले जोड़ की रीति से गठित एक लंबी रज्जुवत् लचकीली मेरुदंडिका के आसपास, उत्तरोत्तर छोटी पड़ती चली गई प्रति ओर दो सौ या ढाई सौ पसलियों की अद्भुत व्यवस्था का विचित्र रूप लिये हुए रहती है! इस लचकीले पृष्ठवंश एवं उससे संबद्ध सैकड़ों पसलियों की मदद से यह जंतु अपने बदन को लहरदार ढंग से तोड़ता-मरोड़ता हुआ ऐसी तीव्र गति से रेंगता है कि वस्तुतः इन दो-ढ़ाई सौ जोड़े पसलियों को यदि हम एक प्रकार से उसके शरीर के भीतर छिपे हुए गुप्त पैरों की उपमा दें तो बेजा न होगा! हम यह कह सकते हैं कि अपने इन गुप्त पैरों के बल यह उरंगम उसी प्रकार चलता है जिस प्रकार कि गोझर जैसा शतपदी जीव अपने शत-शत पैरों पर चलते देखा जाता है। अंतर केवल यही है कि सर्प के लिए इस प्रकार चलते समय अपने बदन को बल देकर चलना अत्यावश्यक है। यदि किसी सर्प की खालरहित कोरी हड्डियों की ठठरी को कभी तुम देख पाओ तो उसकी इस विशिष्ट शरीर-रचना का रहस्य अच्छी तरह तुम्हारी समझ में आ सकता है।

न केवल अपनी इस विशिष्ट प्रकार की अस्थि-रचना ही में, बल्कि शारीरिक अंग-विधान संबंधी अन्य अनेक बातों में भी सर्प दूसरे जीवधारियों से बहुत-कुछ विशिष्टता रखता है। एक तो इस प्राणी में धड़ और सिर को जोड़नेवाली गरदन जैसी किसी रचना का झमेला नहीं है। न हाथ-पैरों का ही बवाल उसके शरीर में रक्खा गया है! केवल अजगर जैसे कतिपय सर्पों ही में पिछले पैरों के नाममात्र के कुछ निशान अब भी अवशिष्ट हैं। इससे ज्ञात होता है कि शायद इस उरंगम के भी कभी पैर रहे होंगे! इसके अतिरिक्त इसका सिर—जिसकी कि परिधि में उसका मुख, नेत्र तथा नथुने बने हुए हैं—इस प्रकार की लचीली मांस-पेशियों एवं उनसे जुड़ी हुई हड्डियों द्वारा रचा गया होता है कि देखने में सिमटा हुआ जान पड़ने पर भी जब उसका मुँह खुलता है तो आवश्यकता पड़ने पर रबड़ की तरह खिंचकर उसकी समाई बेतरह बढ़ा ली जा सकती है। इसी खूबी की बदौलत यह प्राणी प्रायः अपने से अधिक मोटी वस्तुओं को भी निगल लेता है! यह इसके लिए एक अत्यंत आवश्यक व्यवस्था है; कारण, वह आहार को समूचा ही निगलता है, उसे चबाता नहीं! वस्तुतः सर्प के दाँत केवल शिकार को पकड़ने के लिए ही होते हैं, चबाने के लिए नहीं। उनकी रचना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसे कुछ निराले प्रकार की भीतर की ओर मुड़ी हुई-सी होती है कि एक बार उनके अँकुए में शिकार के फँस जाने पर उसका छुटकारा असंभव हो जाता है। केवल दाँत ही नहीं, सर्प के जबड़े भी किसी चीज़ को पकड़ लेने पर इस तरह की हरकत करते हैं कि पकड़ी हुई वस्तु भीतर ही जा पाती है, वह बाहर नहीं निकल सकती ! इसी कारण, इन प्राणियों को कभी-कभी असावधानी में पकड़ ली गई अप्रिय या प्रतिकूल वस्तु को भी निगलने को विवश होना पड़ता है। इससे कभी-कभी तो इन्हें अपनी जान तक से हाथ धोना पड़ता है, कारण, अनुचित आकार की वस्तु को निगलने के फेर में पड़कर इनका गला घुटने की नौबत आ जाती है !

सर्प के इन भीतर की ओर मुड़े हुए नुकीले दाँतों में एक और खूबी—जोकि केवल विषधर सर्पों ही में पाई जाती है—यह होती है कि कभी-कभी वे डॉक्टरों की इंजेक्शन की पिचकारी की सुई की तरह भीतर से पोले भी रहते हैं ! भला, यह योजना प्रकृति ने उनमें किसलिए की है ? इसका रहस्य हमें तब ज्ञात होता है, जब कि हमारा ध्यान इन दाँतों की जड़ों के पास व्यवस्थित एक प्रकार की थैलीनुमा ग्रंथियों पर जाता है, जिनमें कि हलाहल विष संचित रहता है ! यह घातक विष साँप के दाँतों की पोली नली के रास्ते टपककर शत्रु के बदन में उनके द्वारा किये गये घावों को उसी प्रकार सिंचित कर देता है, जिस तरह कि डॉक्टरों की सुई रोगी के शरीर में पिचकारी की दवा को प्रविष्ट करा देती है ! परंतु जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, यह व्यवस्था केवल विषधर सर्पों ही के दाँतों में पाई जाती है। दाँतों की तरह, साँप की जिह्वा भी विशिष्ट प्रकार की होती है। प्रायः लोग लपलपाती हुई एवं दो भागों में विभक्त साँप की लंबी पतली जीभ को देखकर यह सोचते हैं कि उसके एक नहीं बल्कि दो जीभें हैं ! पर यह बात नहीं है। वस्तुतः, उसका यह अंग न तो हमारी जिह्वा की तरह स्वाद लेने में मदद देनेवाला अंग ही है, न खाये हुए या चबाये हुए कौर को गले से नीचे उतारने में योग देनेवाला साधन ही ! इसके विपरीत वह है मानों आधुनिक 'राडार' नामक विद्युत्-यंत्र की तरह इस प्राणी को अपने सामने पड़नेवाली वस्तु का भान कराने एवं इस प्रकार के वस्तु-बोध द्वारा उसे अपने मार्ग का सही-सही ज्ञान कराने में मदद देनेवाला एक अनूठा अंग ! दूसरे शब्दों में, हम इसे उसकी स्पर्शेन्द्रिय की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं। चिमटे की तरह दो हिस्सों में फटी हुई साँप की यह लंबी पतली जीभ ओठों के बीच के एक छिद्र में से बाहर निकलकर उस समय भी लपलपाया करती है, जबकि उसका मुँह सर्वथा बंद रहता है ! इस जिह्वा की एक और खासियत यह होती है कि जब वह मुँह के भीतर सिमटी रहती है तो वहाँ उसका पता लगाना मुश्किल होता है, कारण उस समय वह एक खास तरह की झिल्लीदार थैली में बंद रहा करती है। इस व्यवस्था का उद्देश्य यह है कि किसी भी चीज़ को निगलते समय यह नाज़ुक तंतुवत् अंग उसके साथ उलझकर कहीं क्षत-विक्षत न हो जाय !

आओ, अब साँपों के अंग-विधान के इस प्रकरण को यहीं छोड़कर, उनकी विविध जातियों के कतिपय महत्त्वपूर्ण एवं मनोरंजक नमूनों का संक्षेप में तुम्हें परिचय करा दें। जैसा कि पीछे एक स्थल पर सूचित किया जा चुका है, वैज्ञानिकों ने सर्प-समूह के समस्त प्राणियों को नौ विशाल गणों या समूहों में वर्गीकृत कर दिया है, जिनकी कि पुनः अनेक छोटी-छोटी बिरादरियाँ एवं जातियाँ-उपजातियाँ निर्धारित हैं। ये नौ महासमूह वैज्ञानिकों की बोली में क्रमशः टाइफ़्लोपिडी, ग्लाकोनिडी, इलीसिडी, यूरोपेलटिडी, जीनोपेलटिडी, एम्बलीकिफेलिडी, बोइडी, वाइपेरिडी और कोलुब्रिडी के नामसे पुकारे गये हैं। इनमें प्रथम समूह की अठारह, दूसरे और तीसरे की दो-दो, चौथे की चवालीस, पाँचवें की एक, छठे की पाँच, सातवें की चार, आठवें की उन्नसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
और नवें की दो सौ इकतीस बिरादरियाँ मिलती हैं। तुम्हें यह जानकर अचरज होगा कि इन नौ महासमूहों की तीन सौ छब्बीस जातियों में से केवल अंतिम दो समूहों की कोई अड़तीस बिरादरियों के सर्प ही विषैले और घातक पाये जाते हैं, शेष सब नाम को भी ज़हरीले नहीं होते! हाँ, बोइडी-समूह के कतिपय बड़े डीलडौलवाले अजगर-वर्ग के सर्प इस मानी में काफ़ी खतरनाक होते हैं कि वे भेड़-बकरी और हिरन जैसे पशुओं तक को अपने मृत्युपाश में जकड़कर उनकी हड्डी-पसलियों का कचूमर निकाल देने तथा उन्हें जीते-जी समूचा ही निगलकर उदरस्थ कर जाने का सामर्थ्य रखते हैं! यह भी एक उल्लेखनीय बात है कि विषधर सर्पों के सबसे बड़े समूह 'कोलुब्रिडी' की भी सभी जातियाँ विषैली और घातक नहीं होतीं! इस विशाल समूह की कुल २३१ बिरादरियों में से केवल उन्नीस जाति के ही साँप घातक और ज़हरीले होते हैं। हाँ, वाइपेरिडी नामक आठवें समूह की उन्नीसों जातियाँ सब की सब घोर विषैली अथवा खतरनाक हैं! इस वर्ग का मशहूर विषधर सर्प 'वाइपर' या 'एडर' कहलाता है, जो एशिया, योरप और अफ्रीका की पुरानी दुनिया में सर्वत्र पाया जाता है। इंगलैण्ड का तो यही एकमात्र ज़हरीला साँप है। इसे हमारे देश में 'दबोइया' के नाम से पुकारा जाता है। इस सर्प का बदन भूरे सलेटी या ललौंह-श्याम से लेकर निपट काले वर्ण तक भाँति-भाँति के मिश्रित वर्णों का पाया जाता है और उसमें एक प्रकार का छींट का-सा सुंदर डिज़ाइन बना रहता है। भारतीय दबोइया पाँच फ़ीट तक लंबा होता है और उसके पिलौंहे-भूरे बदन पर ललौंह, काले-सफ़ेद या कबचितरे धब्बों की तीन पंक्तियों का एक विशिष्ट डिज़ाइन सुशोभित रहता है। इस ज़हरीले सर्प में ऊपरी जबड़े की रचना इस प्रकार की होती है कि जब उसका मुँह बंद रहता है तो विषदंत दबकर एकदम तालू से जा चिपकते हैं। इनकी कई जातियाँ हैं, जिनमें से एक है 'मिस्री वाइपर', जिसकी विशेषता यह है कि उसके सिर पर के सिन्नों के विकास के फलस्वरूप दो अनोखी सींगनुमा रचनाएँ उभरी रहती हैं। वाइपेरिडी समूह ही के अंतर्गत 'झनझनिया साँप' की भी गणना की जाती है, जो कि अपनी दुम से एक प्रकार की चेतावनी की झनझनाती हुई आवाज़ निकालने के लिए मशहूर है! इस ध्वनि को यह सर्प अपनी दुम के सिरे पर विकसित एक प्रकार के सिन्नों या छिलकों की शृंखला को खड़खड़ाकर पैदा करता है। वाइपर की तरह यह सर्प भी ज़बर्दस्त विषैला होता है।

परंतु प्राणघातक सर्पों की बिरादरियों का दरअसल सबसे अधिक भयावना जमघट सर्प-वंश के उस सबसे बड़े और अंतिम गण 'कोलुब्रिडी' समूह में पाया जाता है, जिसमें कि हमारे देश के 'गेहुँअन फनियर' या 'कोबरा', 'करैत', 'शंखचूड़' आदि भयंकर ज़हरीले नागराजों के वंश सम्मिलित हैं! इस वर्ग के विषधर सर्पों की एक मुख्य विशेषता यह होती है कि इन सबमें विषदंत आगे की ओर होते हैं तथा विशिष्ट प्रणालियों द्वारा विष-ग्रंथियों से उनका एकदम सीधा संबंध होता है। फलतः जब वे किसी को काटते हैं तो तुरंत ही घाव में प्राणहारी विष का संचार हो जाता है! यहाँ हम तुम्हें बता दें कि कतिपय साँप ऐसे भी पाये जाते हैं, जिनमें विषदंत जबड़े में आगे की ओर स्थित न होकर मुँह में पीछे की ओर होते हैं। ऐसे सर्प उतने भयावने नहीं माने जा सकते, जितने कि आगे की ओर के विषदंतवाले साँप! कारण, उन्हें अपने उन पिछले विषदंतों द्वारा प्रहार करने की वैसी अनुकूलताएँ नहीं रहतीं। बहुतेरे सर्पों में दरअसल सच्ची विषग्रंथियों की व्यवस्था होने पर भी वे मुँह में इतनी अधिक पीछे की ओर स्थित होती हैं एवं उनकी प्रणालियाँ ऐसे झूठे विषदंतों की जड़ों के पास खुलती हैं कि उनके काटने पर विष घाव पर पहुँच ही नहीं पाता, वह सर्प के मुँह में ही बचा रह जाता है। ऐसे सर्पों की विष-व्यवस्था, जो कि अग्रदंतधारी विषधर साँपों की व्यवस्था से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घटिया क़िस्म की होती है, जिससे खानेवाले शिकार के सर्प के मुँह में पहुँचने पर उसे केवल शिथिल बना देने में ही मदद दे पाती है; और किसी काम में नहीं आती।

'कोलुब्रिडी' समूह के विषधर सर्पों में सबसे भयंकर 'कोबरा' जाति के साँप हैं, जिनमें भारतीय 'गेहुँअन सर्प' या 'नागराज', 'मिस्री फनियर साँप', 'काली गरदनवाला विषैला साँप', तथा 'किंग कोबरा' या 'हेमाड्रायड' नामक महानाग या शेषनाग प्रमुख हैं। इन सब साँपों की एक विशेषता यह होती है कि अपनी गरदन की लंबी पसलियों को बाहर की ओर तानकर ये अपने शीर्षभाग को एक चौड़े फन की शक्ल में फैलाने का अद्‌भुत सामर्थ्य रखते हैं! यह है वस्तुतः एक प्रकार का इनका चेतावनी देने का तरीक़ा। कोबरा जाति के सर्प के फन पर गौ के खुर, आँख, या ऐनक की जोड़ी की आकृति का-सा एक चिह्न बना रहता है। प्रायः उसके फन के नीचे की ओर भी ऐसे ही दो-एक सफ़ेद-से निशान बने रहते हैं! इस खतरनाक साँप की दस जातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें से अधिकतर भारतवर्ष में मिलती हैं और शेष मलय प्रदेश, दक्षिणी चीन, फ़िलीपाइन्स द्वीप एवं अफ़्रीका तक विस्तृत हैं। भारतीय कोबरा की लंबाई प्रायः छः फ़ीट तक की होती है। गेहुँअन यह इसलिए कहलाता है कि इसके रंग में गेहुँएपन या खैरेपन की-सी कुछ झाईं रहती है। मिज़ाज में यह सर्प बहुत ही वाहियात होता है! ज़रा-सा भी छेड़ देने पर यह फन तानकर फुफकारने लगता है। बिगड़ उठने पर तो कभी-कभी यह दौड़कर शत्रु का पीछा करने से भी नहीं चूकता! वह फन-सहित शरीर का काफ़ी हिस्सा ऊँचा उठाकर एक झटके के साथ वार करता है और सुई-जैसे अपने कराल विष-दंतों को गड़ा देने में जब उसे कामयाबी मिल जाती है तो शीघ्र ही उन दाँतों को घाव की जगह से वह अलग नहीं कर देता, बल्कि उन्हें

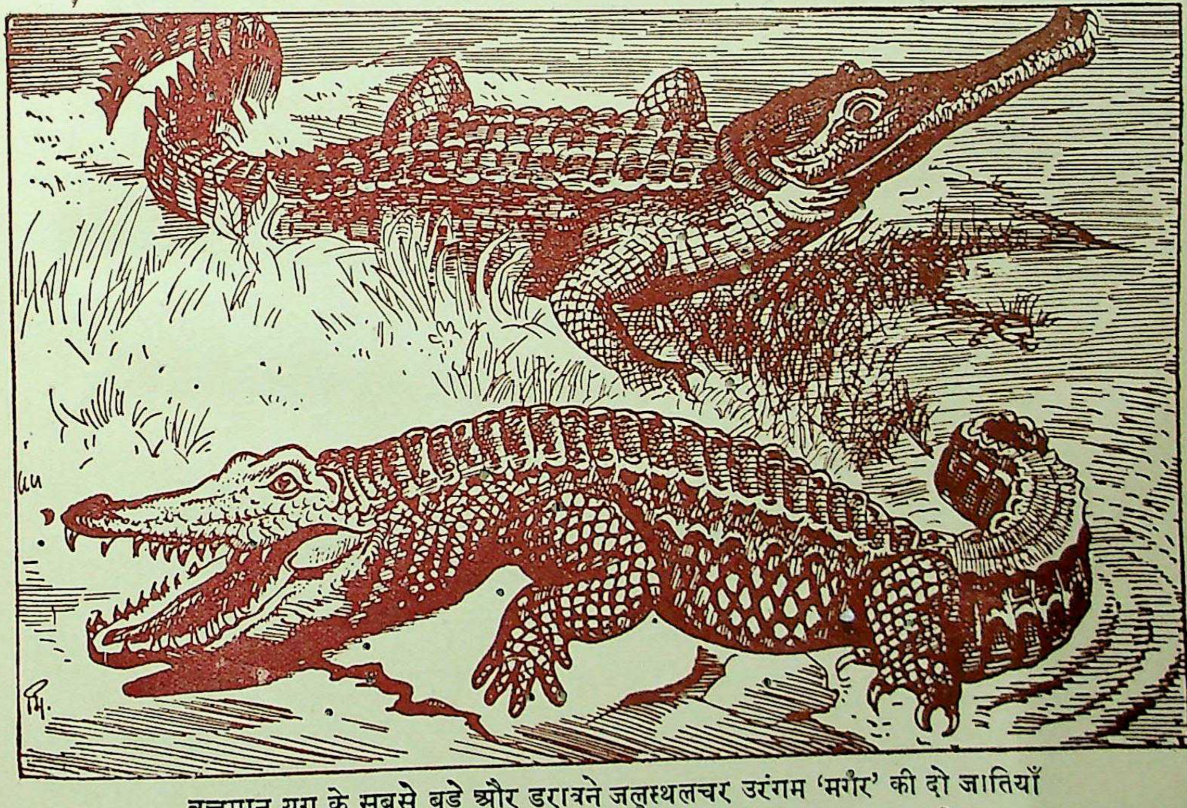

वर्त्तमान युग के सबसे बड़े और डरावने जलस्थलचर उरंगम 'मगर' की दो जातियाँ
(ऊपर) लंबी थूथनवाला 'नाक' नामक घड़ियाल; (नीचे) चौड़े मुँहवाला साधारण विशालकाय मगर।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देर तक गड़ाये रहता है, ताकि हलाहल विष की पूरी घातक मात्रा शिकार के बदन में बखूबी जज़्ब हो जाय ! ये सर्प अधिकतर चूहा, मेंढक आदि को खाकर अपना गुजारा करते पाये जाते हैं और प्रायः किसी पुरानी बाँबी या खाली बिल में घुसकर जीवन व्यतीत करते हैं। परन्तु इन साधारण कोबरावंशी नागों से कहीं अधिक भयावना और तेजस्वी 'किंग कोबरा' या 'हेमाड्रायड' नामक महानाग होता है, जिसकी लंबाई मामूली तौर पर ग्यारह-बारह फ़ीट होती है। यह अधिकतर साँपों को ही खाकर अपना पेट भरता है ! न केवल विषहीन सर्पों ही को प्रत्युत 'कोबरा' और 'करैत' जैसे कराल विषधर नागराजों को भी वह शौक़ से चट कर जाता है ! वह समूचा ही उन्हें निगल जाता है ! यह विकराल सर्प, जिसे हमारे देश में 'शंखचूड़', 'शेष-नाग' आदि भव्य नामों से पुकारा जाता है, केवल आसाम और हिमालय की तराई के सघन वनों एवं मध्य-प्रदेश तथा दक्षिणी भारत के एकान्त जंगलों ही में पाया जाता है। यह वृक्षों पर भी चढ़ जाता है और तैर-कर नदियों को पार कर लेता है। इसके कुछ नमूने पंद्रह-सोलह फ़ीट लंबे भी मिले हैं !

कोलुब्रिडी समूह के अन्य उल्लेखनीय विषधर सर्प एक ओर तो भारतवर्ष के वे महान् विषैले 'करैत' वंश के चार-साढ़े चार फ़ीट लंबे लघुकाय सर्प हैं, जिनका विष नाग के विष से भी चार-पाँच गुना अधिक तीव्र बताया जाता है ! दूसरे हैं नई दुनिया के बड़े ही अद्‌भुत एवं चित्ताकर्षक मूँगे के-से चटकीले लाल-पीले रंग के 'कोरल' नामक वंश के वे सर्प, जो आकार में दो-तीन फ़ीट के होने पर भी बेहद लंबे विषदंतों से युक्त होते हैं। कतिपय भयावने एवं प्राणघातक विषैले सर्प ऑस्ट्रेलिया और अफ्रीका में भी मिलते हैं। इनमें एक ही दंश में बीस आदमियों को समाप्त कर देने जितना विष-संचार कर देनेवाला दस फ़ीट लंबा ऑस्ट्रे-लियन भूरा सर्प 'टाइपन', उसी के भाई-बंधु ताम्रवर्णीय 'कॉपरहैड सर्प' तथा 'मांबा' और उसके एक घातक वृक्षवासी नातेदार जैसे दीर्घाकार अफ्रीकी सर्पों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। एक भयावना अफ्रीकी सर्प ऐसा भी पाया जाता है, जो विष को अपनी फुफकार के साथ बौछार के रूप में शत्रु पर उड़ाता है। यह विष यदि किसी की आँख में पड़ जाय तो वह तुरंत ही अंधा हो सकता है ! सर्पों की इन विषैली राक्षसी जातियों के अतिरिक्त उनकी अन्य खतरनाक जातियाँ 'बोइडी-समूह' के उन बृहदाकार अजगरों के रूप में मिलती हैं, जो ज़हरीले तो नहीं होते, परंतु शिकार को समूचा ही निगल जाने तथा अपने पाश में जकड़-कर उसकी हड्डी-पसलियों को गाजर-मूली की तरह तोड़ देने का असाधारण सामर्थ्य रखते हैं ! इन दैत्यों की एक जाति 'बोआ कन्स्ट्रीक्टर' कहलाती है, जो अमेरिका के विषुवत् सघन जंगलों में पाई जाती है। पीले-भूरे रंग के ये चितकबरे अजगर पंद्रह-बीस फ़ीट तक लंबे होते हैं और वे वृक्षों पर रहना पसंद करते हैं। अन्य एक अमरीकी अजगर 'एनाकोण्डा' कहलाता है। इसकी लंबाई तीस से चालीस फ़ीट तक की बताई जाती है ! यह जलाशयों में—विशेषकर अमेजन नदी के दलदली क्षेत्रों में—अपना मुँह भर पानी से बाहर निकाले पड़ा रहता है ! ये सर्प अंडे देने के बजाय उन्हें शरीर ही में सेकर, प्रसव की रीति से, जीवित बच्चे पैदा करते हैं। पुरानी दुनिया का सबसे बड़ा अजगर बर्मा, इंडो-चीन, मलय-प्रदेश और फिलिपाइन्स में पाया जाता है। उसकी लंबाई ३३ फ़ीट और वज़न चार मन से भी ज़्यादा होता है ! अजगरों की कुछ जातियाँ भारतवर्ष, अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया में भी मिलती हैं। ये सब बड़े ही सुंदर चितकबरे डिज़ाइनवाले उरंगम होते हैं ! ऊपर उल्लिखित सर्पों के अतिरिक्त, पानी में पाये जानेवाले, वृक्षवासी, काँच के-से बदनवाले, आदि अनेक विषहीन सर्प भी मिलते हैं ; परंतु विस्तार-भय से उनका विवरण देने से हम यहाँ लाचार हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सॉँपों के उपरान्त उरंगम-वर्ग के प्राणियों में हमारे सबसे अधिक जाने-पहचाने हुए छिपकिली, गिरगिट और गोह जैसे अनेकों प्रकार के वे छोटे-बड़े जीव हैं, जो अपने घिनौने स्वरूप तथा छोटे-छोटे पैरों के बल रेंगकर चलने के कारण बेहद अरुचिकर जान पड़ते हैं। घरेलू छिपकली और साधारण गिरगिट से तो हम इतनी अच्छी तरह वाकिफ़ हैं कि उनके प्रति हमारे मन में कुतूहल या वैचित्र्य का कोई भाव नहीं पाया जाता, सिवाय इसके कि छिपकिली की दुम कट जाने के उपरान्त भी पुनः उग आती है और गिरगिट बरसात की मौसम में तरह-तरह के रंग बदलते पाया जाता है ! परन्तु यदि हम तुम्हें यह बताएँ कि दुनिया में छिपकिली-वर्ग की दो हज़ार बिरादरियाँ हैं और उनमें से कई ऐसे-ऐसे राक्षसी स्वरूप की हैं कि बीते हुए युगों के डरावने उरंगमों की याद आ जाती है तो निश्चय ही तुम्हें इन घिनौने प्राणियों के प्रति कुछ दिलचस्पी हुए बिना न रहेगी। उदाहरणार्थ, न्यूज़ीलैंड में 'तुआरा' नामक ऐसी एक छिपकिली मिलती है, जिसके दो के बजाय तीन आँखें होती हैं ! उधर अमरीकी विषुवत् वन्यप्रदेशों की हरित-भूरे वर्ण की छः फ़ीट लंबी 'इगुआना' और उसी की तरह अपनी पीठ से दुम तक एक अनोखी कंटक-पंक्ति सी उगाए हुए 'बैसिलिस्क' नामक छिपकिली; पुराने ज़माने के कवचधारी उरंगमों की याद दिलानेवाली ऑस्ट्रेलिया की 'मलोक' नामक छिपकिली, जिसके सारे बदन पर तीखे सींगों के-से शूल उगे रहते हैं; और चमगादड़ या उड़नेवाली गिलहरियों जैसे डैनों से युक्त मलय प्रदेश तथा हमारे ही अपने देश की उड़ाकू छिपकिली, आदि और भी अनेकों चित्र-विचित्र तथा अद्भुत सरीसृपों के नाम इस संबंध में गिनाये जा सकते हैं। यही हाल गिरगिटों का भी है, जिनके कि एक अनोखे झालरदार नमूने की तस्वीर पृष्ठ १२१ के चित्र में प्रदर्शित है।

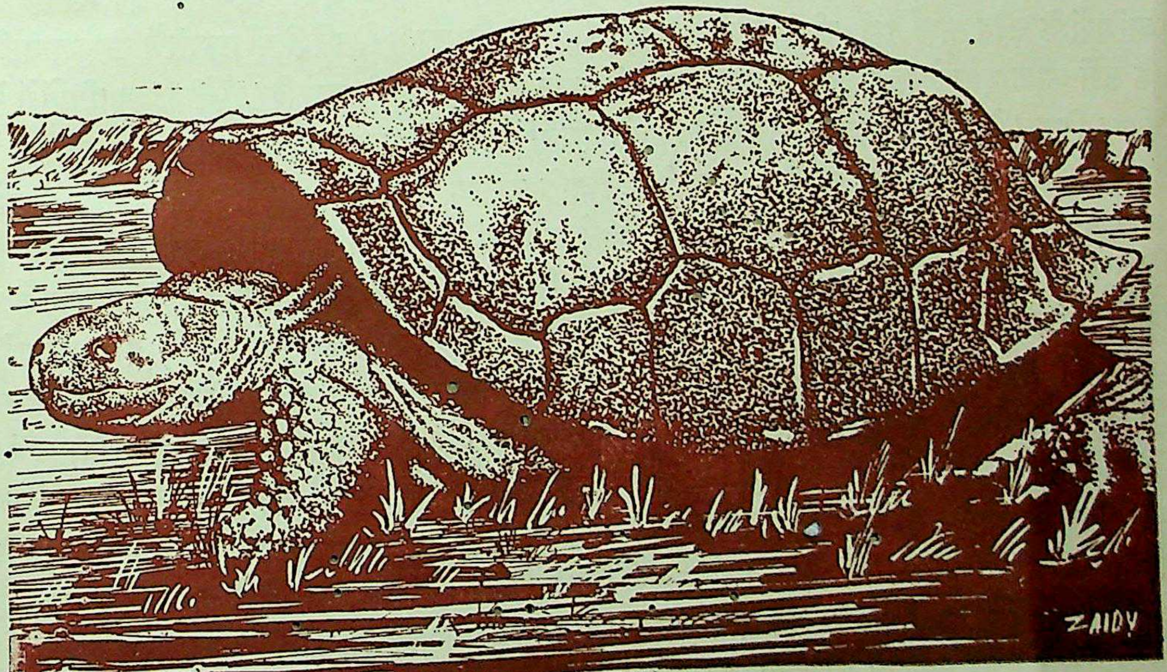

गेलेपेगास द्वीप में पाया जानेवाला महाकाय थलचर कच्छप, जो तीन-चार सौ वर्ष तक की उम्र पानेवाला दीर्घजीवी प्राणी है !

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बड़े आकार की छिपकिलियों की अनेक जातियाँ पुरानी दुनिया के विस्तार में अफ्रीका और भारतवर्ष से लेकर मलय-प्रदेश और ऑस्ट्रेलिया तक विस्तृत हैं। इन्हें 'गोह', 'बिसखपरा', 'मॉनिटर' आदि नामों से पुकारा जाता है। ये सब घोर हिंसक और मांसाहारी जीव हैं। इनके आहार में छोटी-छोटी चिड़ियों, अंडों, मेंढकों और छिपकिलियों से लेकर छोटे-छोटे स्तनपोषियों तक सभी कुछ शरीक हो सकते हैं। इन उरंगमों की दुम काफ़ी लंबी और मज़बूत होती है और ये प्राणी प्रायः उसका उपयोग एक सक्रिय आक्रमक शस्त्र के रूप में करते पाये जाते हैं। वे उसे कोड़े की तरह फटकारकर शिकार या शत्रु को घायल कर देते हैं। ये वृक्षों पर भी चढ़ लेते और पानी में तैर भी लेते हैं। इन बड़ी छिपकिलियों में 'बिसखपरा' का नाम सुनते ही हमारे देहातों में लोग प्रायः घबड़ा उठते हैं, कारण यहाँ सभी उसे घोर विषैला और प्राणघातक मानते हैं। इसमें संदेह नहीं कि यह जंतु मनुष्य एवं अन्य पशुओं को काट लेता है, परन्तु जंतु-वैज्ञानिकों का कथन है कि उसका दंश ज़हरीला कदापि नहीं होता! कारण दाँतों से संबद्ध विष-ग्रंथियों जैसी कोई भी व्यवस्था इस प्राणी के मुँह में नहीं है। जो भी हो, मटमैले श्यामल वर्ण का यह सरीसृप अपनी चिमटे की तरह फटी हुई लपलपाती हुई सर्प की-सी जिह्वा के कारण बड़ा ही भयोत्पादक जान पड़ता है।

सर्प की भाँति की, वास्तविक रूप में विषैली छिपकिलियाँ इस समय तक वैज्ञानिकों को केवल दो ही ज्ञात हैं। ये दोनों छिपकिलियाँ वस्तुतः एक ही वर्ग की दो उपजातियाँ-सी हैं। ये केवल नई दुनिया ही में पाई जाती हैं—एक तो मैक्सिको एवं मध्य अमेरिका के क्षेत्र में तथा दूसरी संयुक्त राज्य (अमेरिका) के अरिज़ोना प्रदेश में! इनमें की अरिज़ोनावाली जाति 'गिला मान्स्टर' के नाम से प्रख्यात है। इन दो फ़ीट लंबे, चटकीले सेंदुरिया, काले एवं भूरे धब्बों से युक्त, दंदानेदार खालवाले, भौंडे और घिनौने उरंगमों के दाँतों के साथ सर्प की-सी बाक़ायदा विषग्रंथियाँ होती हैं। इनके बदन के लाल-काले चकत्ते मानों दूसरे जीवों को इन खतरनाक प्राणियों से सदैव सतर्क रहने की चेतावनी देते रहते हैं। कहते हैं, जब ये छिपकिलियाँ काटती हैं तो कुछ जाति के सर्पों की तरह अपने दाँत गड़ाने के बाद तुरंत ही उलट जाती हैं, ताकि इनका विष दाँतों की प्रणालियों में से होकर शिकार के घाव को बखूबी सींच सके। इनके दंश से मनुष्यों की मृत्यु के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

गोह छिपकिली-वर्ग का सबसे बड़ा प्राणी है, जिसके कतिपय नमूने पंद्रह फ़ीट तक की लंबाई के भी पाये गये हैं। ये उरंगम अपनी शक्ल-सूरत और चर्या आदि से हमें करोड़ों वर्ष पूर्व के उन प्राचीनकाल के दैत्याकार रेंगनेवाले प्राणियों की याद दिलाते हैं, जिनका कि विवरण पिछले एक अध्याय में दिया जा चुका है। गोहों की खाल छिपकिलियों या गिरगिट की-सी उभरे हुए सिन्नोंवाली न होकर खास तरह के छोटे-छोटे जमे हुए सिन्नों की-सी खुरखुरी होती है। इनके पंजों की पकड़ बहुत मज़बूत होती है। इसीलिए प्राचीन काल में क़िलों की दीवारों पर चढ़ने के लिए हमारे देश में इनका उपयोग किया जाता था! इसके लिए खास तौर से गोहों को पालकर शिक्षा दी जाती थी! कहते हैं, एक बड़ी-सी गोह की दुम में रस्सी बाँधकर चुपके से क़िले की दीवार के तले पर उसे छोड़ दिया जाता था। वह सरसराती हुई ऊपर जाती थी और दीवार के सिरे पर के किसी कँगूरे पर अपने पंजे मज़बूती से गढ़ाकर वहीं चिपक जाती थी! बस, फिर क्या था—लोग लटकती हुई रस्सी को पकड़कर दीवार पर चढ़ जाते और चुपके से क़िले में प्रविष्ट हो जाते थे!

वर्तमान काल में संसार की सबसे बड़ी गोह पूर्वीय द्वीप-समूह के कमोडो, रिंज़ा आदि द्वीपों में मिलती है। वह 'कमोडो ड्रैगन' के नाम से प्रख्यात है। उसकी लंबाई दस से पंद्रह फ़ीट तक और वज़न तीन मन

से भी अधिक होता है ! ये भयावने प्राणी जंगली सुअर जैसे बड़े जानवरों तक का शिकार कर अपना गुजारा करते पाये जाते हैं ! इनकी जिह्वा साँप की-सी लंबी, पतली और चिमटे की तरह दो शाखाओंवाली होती है !

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भयंकर जलस्थलचर—'मगर'

उरंगमों में 'मगर' वैसा ही भयावना है, जैसा कि स्तनपोषियों में बाघ आदि हिंसक शिकारी जानवर हैं। यह वृहदाकार जलस्थलचर आकार और डीलडौल में तमाम रेंगनेवाले प्राणियों को मात करता है। अपनी उदर-पूर्ति के लिए यह जंतु बड़े पशुओं से लेकर मनुष्य तक किसी को भी अपनी लपेट में लेने से नहीं चूकता ! यह प्रायः उष्ण प्रदेशों की नदियों, झीलों एवं नदियों के मुहानों के पास के समुद्रों में पाया जाता है। इसकी क्रूर हिंसावृत्ति में सबसे अधिक सहायता देनेवाले एक तो उसके ऊपरी और निचले दोनों ही जबड़ों में काफ़ी संख्या में मौजूद वे पंक्तिबद्ध कराल दाँत हैं, जो कि उसके दीर्घाकार मुख को शिकंजे की-सी योग्यता प्रदान किये हुए हैं ! दूसरे, अपनी बेहद ताक़तवर एवं खुरखुरी लंबी दुम से भी उसे शिकार को धर पटकने में अद्भुत सहायता मिलती है। इस भयावने जंतु के जबड़ों की जकड़ में फँस जाने के बाद हाथी जैसे शक्तिशाली पशु की भी कुशल नहीं रहा करती ! हमारे पुराणों में वर्णित गज और ग्राह का युद्ध प्रसिद्ध ही है !

मगर की दो मुख्य जातियाँ हैं—एक तो चौड़े जबड़ेवाली, जिसे हम प्रायः 'घड़ियाल' या 'मगर' के नाम से पहचाना करते हैं। दूसरी, थूथननुमा बहुत लंबे मुँहवाली, जिसे 'नाक' कहा जाता है ! हमारे यहाँ की गंगा जैसी नदियों में इस जंतु की ये दोनों ही जातियाँ पर्याप्त संख्या में मिलती हैं ! आकार में भारतीय मगर सोलह-सत्रह फ़ीट तक और अफ्रीकी मगर उन्नीस-बीस फ़ीट तक की लंबाई का पाया जाता है। घड़ियालों की एक वृहदाकार जाति अमेरिका में भी मिलती है, जिसकी वर्तमान लंबाई बारह फ़ीट बताई जाती है। परंतु डीलडौल के लिहाज़ से सबसे बड़े मगर नदियों के मुहानों के पास के समुद्री क्षेत्रों में मिलते हैं। ये तीस-बत्तीस फ़ीट से भी अधिक लंबे बताये गये हैं, यद्यपि विज्ञान द्वारा यह बात प्रमाणित नहीं है ! इन प्राणियों की कई एक बिरादरियाँ काफ़ी छोटे आकार की भी मिलती हैं—जैसी कि दक्षिणी अमेरिका की नदियों में पायी जानेवाली एक जाति की लंबाई चार फ़ीट से ज़्यादा नहीं होती ! कुल मिलाकर इस भयावने जंतु की कोई सत्ताईस उपजातियाँ हैं। उनमें 'मगर' और 'नाक' के अतिरिक्त अमेरीकी 'कैमान' जाति के घड़ियाल प्रमुख हैं। 'नाक' अपने विचित्र प्रकार के थूथननुमा मुख के कारण मछलियों पर ही गुजर-बसर करता है, क्योंकि उसके जबड़े उन्हीं के शिकार के लिए विशेष रूप से उपयुक्त होते हैं। इसके विपरीत घड़ियाल एक सर्वभक्षी हिंसक प्राणी है। वह मछलियों से लेकर तटवर्ती पशु-पक्षियों तक सभी को अपनी आहार-सामग्री मानता है। ये प्राणी बिना साँस लिये पाँच-छः घंटे तक जल के भीतर रह सकते हैं। जब उन्हें साँस लेने की ज़रूरत होती है, तब भी अपना पूरा शरीर वे पानी से बाहर नहीं निकालते—केवल अपने नथुनों एवं खास प्रकार की ऊपर उभरी हुई आँखों को ही पानी से बाहर निकालकर वे तैरते रहते हैं। इस अवस्था में उनकी मौजूदगी का पता न पाकर प्रायः पानी पीने के लिए आये हुए किनारे पर के पशु अथवा जल की सतह पर उतरनेवाले पक्षी आदि जीव धोखे में पड़ जाते हैं और उनके शिकार बन जाते हैं। प्रायः शिकार को अपने क़ाबू में आया हुआ देखकर यह राक्षसी जीव अपनी भयावनी खुरखुरी दुम को ऐसा फटकारता है कि उसकी लपेट में आकर बड़े से बड़ा पशु भी लड़खड़ा जाता है और उसकी ओर खिंच जाता है। बस, एक बार जहाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिकार पानी में गिरा नहीं कि मगर की बन पटती है ! वह अपने जबड़ों की कैंची में उसके किसी अंग को पकड़कर उसे धर दबोचता है। मगर ज़बर्दस्त तैराक होता है और कभी-कभी पानी से बाहर निकलकर किनारे की दलदली जगहों में वह सुस्ताया भी करता है। समस्त उरंगमों की भाँति, मगर भी अंडे देकर बच्चे पैदा करता है। ये अंडे तट पर कहीं छिपाकर रक्खे जाते हैं। इनके बच्चे अपने दाँत द्वारा अंडे की दीवार तोड़कर बाहर निकलते हैं और पैदा होते ही तुरंत पानी में प्रवेश कर तैरने लगते हैं !

भाँति-भाँति के कच्छप

सर्प, छिपकिली और मगर के बाद उरंगमों का चौथा और अंतिम वर्ग 'कच्छप', 'कूर्म', 'कमठ', 'कछुआ' आदि नामों से पुकारे जानेवाले उन अनोखे कवचधारी प्राणियों का है, जिनकी मुख्य पहचान और विशेषता यह है कि उनका शरीर पीठ पर एक तरह की कड़ी परतों द्वारा रचित दुर्भेद्य ढालनुमा खप्पर से ढका रहता है। इन रेंगनेवाले कवचधारियों की कोई पौने तीन सौ जातियाँ इन दिनों मिलती हैं। उनमें से कई तो केवल समुद्रों ही में रहनेवाली हैं और कई मीठे पानी के जलाशयों में ही पाई जाती हैं। शेष कुछ थलचर अथवा जलस्थलचर भी हैं। समुद्री कच्छपों में सबसे विशाल 'चर्म-कूर्म' (लैदरी टर्टल) है, जिसके कई नमूने ८ फ़ीट से भी अधिक लंबे और लगभग १८ मन तक वज़नी पाये गये हैं ! यह महाकाय प्राणी 'चर्म-कूर्म' इसलिए कहलाता है कि इसका खप्पर सींग के-से पदार्थ से बना होने के बजाय एक तरह की बेहद चीमड़, कड़ी और दुर्भेद्य चमड़े-जैसी खाल से मढ़ा होता है। डाँड़नुमा चौड़े सुफनों जैसे अपने हाथ-पैरों से यह कूर्म इस तरह सफ़ाई से तैरता है कि उसे देखकर आसमान में उड़ते हुए उक़ाब की याद हो आती है ! केवल अंडे देने को ही यह तट पर आता है, बाक़ी सारा समय इसका जल ही में बीतता है। रंग इसका गहरा कत्थई होता है, जिस पर पीले धब्बे पड़े होते हैं। अन्य एक समुद्री कच्छप, जो मनुष्य द्वारा खाया भी जाता है, अपनी चर्बी के हरे रंग के कारण 'हरा कूर्म' कहलाता है। इसका आकार तीन फ़ीट से कुछ अधिक और वज़न साढ़े चार मन के लगभग होता है। इसका खप्पर हरित-भूरे रंग का होता है, जिस पर पीतवर्णीय धब्बे बने रहते हैं। हरा कूर्म एक बार में सैकड़ों अंडे देता है। इन्हें यह तटवर्ती बालू में एक गड्ढे में सूरज की गरमी द्वारा सेये जाने को छोड़ देता है। ये कच्छप समुद्र पर तैरते-तैरते सो भी जाते हैं ! उस समय ये आसानी से पकड़ लिये जाते हैं। अन्य एक प्रसिद्ध समुद्री कच्छप 'बाज़चोंचा कूर्म' है, जिसके पक्षियों की-सी चोंचनुमा थूथन तथा हाथ-पैरों में दो-दो नख होते हैं। इसके खप्पर का रंग बहुत सुंदर होता है।

परन्तु कच्छप-वर्ग के अद्भुत उरंगमों में सबसे अधिक दिलचस्प धरती पर रहनेवाले थलचर कमठों की कुछ जातियाँ हैं, जिनमें से कुछ असाधारण दीर्घजीवी पाई गई हैं। कहते हैं, दक्षिणी अमेरिका से पाँच सौ मील दूर गेलेपेगास द्वीपों में पायी जानेवाली एक जाति के दैत्याकार कच्छप—जिनके कवच का आकार साढ़े चार फ़ीट तक का होता है और वज़न ६०० पौंड या ७ मन तक का पाया जाता है—क़रीब-क़रीब १५०-२५० से ४००-५०० वर्ष तक की दीर्घायुवाले पाये गये हैं ! हिन्द महासागर के सिचिलीज़ और अलदाबेरा द्वीपों में भी एक बहुत बड़ा थलचर कच्छप मिलता है, जिसका खप्पर हाथी की पीठ की तरह ऊपर उभरा रहता है। इसीसे यह 'हाथी-कमठ' कहलाता है। थलचर कमठों की एक बृहद्काय जाति अफ्रीका के भूभाग पर भी मिलती है। ये प्राणी मंदगामी होने पर भी काफ़ी बुद्धिमान होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'रत्नाकर', 'रत्ननिधि', आदि नामों से पुकारा जानेवाला पृथ्वी का सागररूपी महान् जलभांडार अपने ख़ज़ानों में हीरा, माणिक्य, नीलम या पन्ना जैसे किन-किन जवाहरातों की कितनी राशि संचित किये हुए है, अथवा इस प्रकार के अनमोल रत्न वस्तुतः उसके उस गुप्त भांडार में संगृहीत हैं भी कि नहीं, इसका तो ठीक-ठीक पता कोई भी नहीं बता सकता ! परन्तु यदि उसके अंचल में बसे हुए असंख्य चित्र-विचित्र जीवों की बात कही जाय तब तो निश्चय ही हम यह दावा कर सकते हैं कि क्या आकृति और रचना में, और क्या रंगों की छबि अथवा चमक-दमक, द्युति, कमनीयता, आदि में दुनिया के क़ीमती से क़ीमती रत्न-जवाहरातों एवं मणियों को भी लजा देनेवाले ऐसे अद्भुत-अनोखे नगीने जलमंडल के उक्त ख़ज़ाने में भरे पड़े हैं कि उनके बल पर हम 'जलनिधि' को निस्संकोच 'रत्ननिधि' कहकर पुकार सकते हैं ! आओ, उन्हीं में से कुछ चुने हुए अद्भुत अनोखे नगीनों का परिचय हम तुम्हें यहाँ दे दें !

चित्र-विचित्र आकृतियों की सजीव मणियाँ

अगले पृष्ठ के चित्र में प्रदर्शित, सुव्यवस्थित डिज़ाइनोंवाली भाँति-भाँति की उन कलापूर्ण अनूठी आकृतियों की मनोहर छबि पर तनिक ध्यान दो ! हमें भय है कि कहीं तुम इन शत-शत पहलवाले जगमगाते हुए रत्नों जैसे आकारों को किसी चित्रकार की कल्पना की उड़ान अथवा उसकी तूलिका की मनगढ़न्त सनक मात्र न समझ बैठो ! वस्तुतः ये हैं एक प्रकार के अति सूक्ष्म सरलतम आदि जीवों की अद्भुत ठठरियाँ, जो कि वैज्ञानिकों की भाषा में 'रेडियोलैरिया' एवं 'फोरेमिनीफ़ेरा' के नाम से पुकारे जाते हैं ! निस्संदेह, ये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीव आकार में इतने अधिक सूक्ष्म होते हैं कि बिना सूक्ष्मदर्शक यंत्र की सहायता के नंगी आँखों से वें ठीक-ठीक नहीं देखे जा सकते! उनकी ये जो अद्भुत ठठरियाँ चित्र में दिखाई गई हैं, वे हैं वस्तुतः उनके यथार्थ आकार से कई गुना बढ़ाकर दिग्दर्शित की गई उनकी छवि! कैसी कैसी अनुपम झाँकियाँ इन सूक्ष्म प्राणियों के अद्भुत कलेवरों में हमें देखने को मिलती हैं? कोई यदि असाधारण कारीगरी के साथ तराशे गए हीरा, पन्ना, माणिक्य या नीलम जैसे रत्नों की शक्ल के हैं, तो कोई जगमगाते हुए सितारों या नक्षत्रों की अद्भुत छटा अपनी आकृतियों में दरसाये हुए हैं! किसी में यदि अंशुमाली सूर्य की दिव्य रश्मिमाला की-सी असंख्य बारीक-बारीक किरणें जैसी फूटती हुई जान पड़ती हैं तो कोई अपनी शक्ल द्वारा प्राचीन राजप्रासादों की छतों पर से लटकते हुए कलापूर्ण झाड़-फ़ानूसों की याद हमारे मन में जगाने लगते हैं! और अद्भुत आकृतियों के इन भाँति-भाँति के सूक्ष्म कलेवरों की रचना करके अंत में सागर के दामन में उनका परित्याग कर, करोड़ों वर्षों से जलमंडल के तले पर उनका एक अंबार-सा रचते चले आ रहे, प्रकृति के ये अनूठे कलाकार आखिर हैं कौन? ये हैं वस्तुतः जंतु-संसार की विकास-श्रेणी के सबसे निचले स्तर के अत्यंत सरल एवं क्षुद्र व सूक्ष्मतर आदि जीव, जो कि सामुहिक रूप से 'प्रोटोज़ोआ' नामक प्राथमिक प्राणि-वर्ग के अंतर्गत शरीक किये जाते हैं!

क्या तुम इस बात को मानने को तैयार होगे कि इन प्राणियों ने सागरजल में मिश्रित 'सिलिकन' नामक तत्त्व को सोख-सोखकर, उसकी सामग्री द्वारा ये जो भाँति-भाँति के अपने अनोखे कलेवर निर्मित किये हैं, उनकी परित्यक्त ठठरियों से प्रशान्त और हिन्द महासागर जैसे विशाल सागरों की फर्श पर के कोई बाईस-तेईस लाख वर्गमील लंबे-चौड़े क्षेत्र पर चट्टानों की-सी एक मोटी पर्त्त-सी बिछ गई है! ज़रा अनुमान करो कि कितनी संख्या में ये सूक्ष्म जीव कोटि-कोटि वर्षों तक जुटे होंगे तब कहीं जाकर यह पर्त्त जमा हुई होगी!

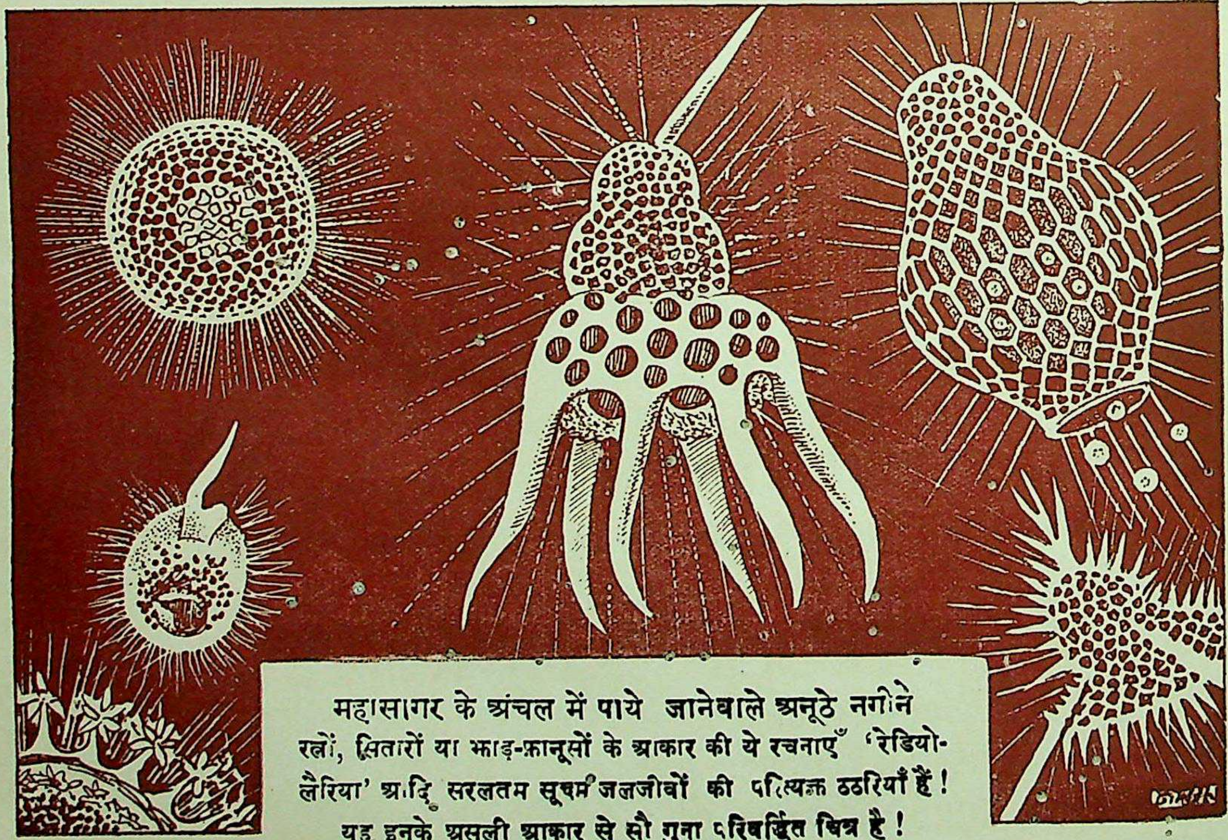

महासागर के अंचल में पाये जानेवाले अनूठे नगीने रत्नों, सितारों या झाड़-फ़ानूसों के आकार की ये रचनाएँ 'रेडियोलैरिया' आदि सरलतम सूक्ष्म जलजीवों की परित्यक्त ठठरियाँ हैं! यह इनके असली आकार से सौ गुना परिवर्द्धित चित्र है!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

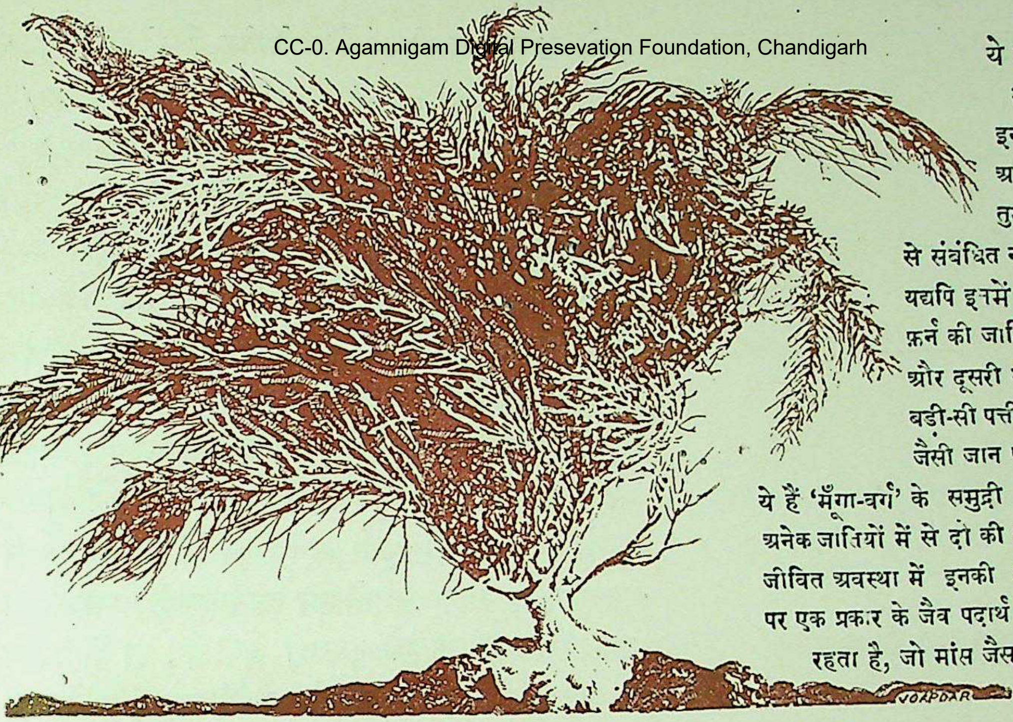

ये वनस्पति नहीं, जानवर हैं !

इन दोनों अनूठी आकृतियोंको कहीं तुम वनस्पति-जगत् से संबंधित न समझ बैठना. यद्यपि इनमें से एक हूबहू फ़र्न की जाति के वृक्ष जैसी और दूसरी भी किसी पेड़ की बड़ी-सी पत्ती के सूखे कंकाल जैसी जान पड़ती है! वस्तुतः ये हैं 'मूँगा-वर्ग' के समुद्री जलजंतुओं की अनेक जातियों में से दो की अनूठी ठठरियाँ ! जीवित अवस्था में इनकी शाखा-प्रशाखाओं पर एक प्रकार के जैव पदार्थ का आवरण चढ़ा रहता है, जो मांस जैसा होता है !

पेड़-पौधों एवं फल-फूल जैसे अद्भुत जीव—स्पंज, मूँगा, लस-मछली, सितारा-मछली, एनीमोन, आदि

इन रत्नों एवं मणियों के अलावा सागर प्राणि-विकास की और भी ऐसी अनेकों विचित्र करामातों को अपने अंचल में बसाये हुए है, जिनका कि हाल सुनकर बुद्धि चकराने लगती है ! उदाहरणार्थ, इसी पृष्ठ पर चित्रित वनस्पतियों की-सी इन दो अद्भुत आकृतियों पर तनिक ग़ौर करो ! क्या तुम्हें ऊपरी आकृति हूबहू किसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

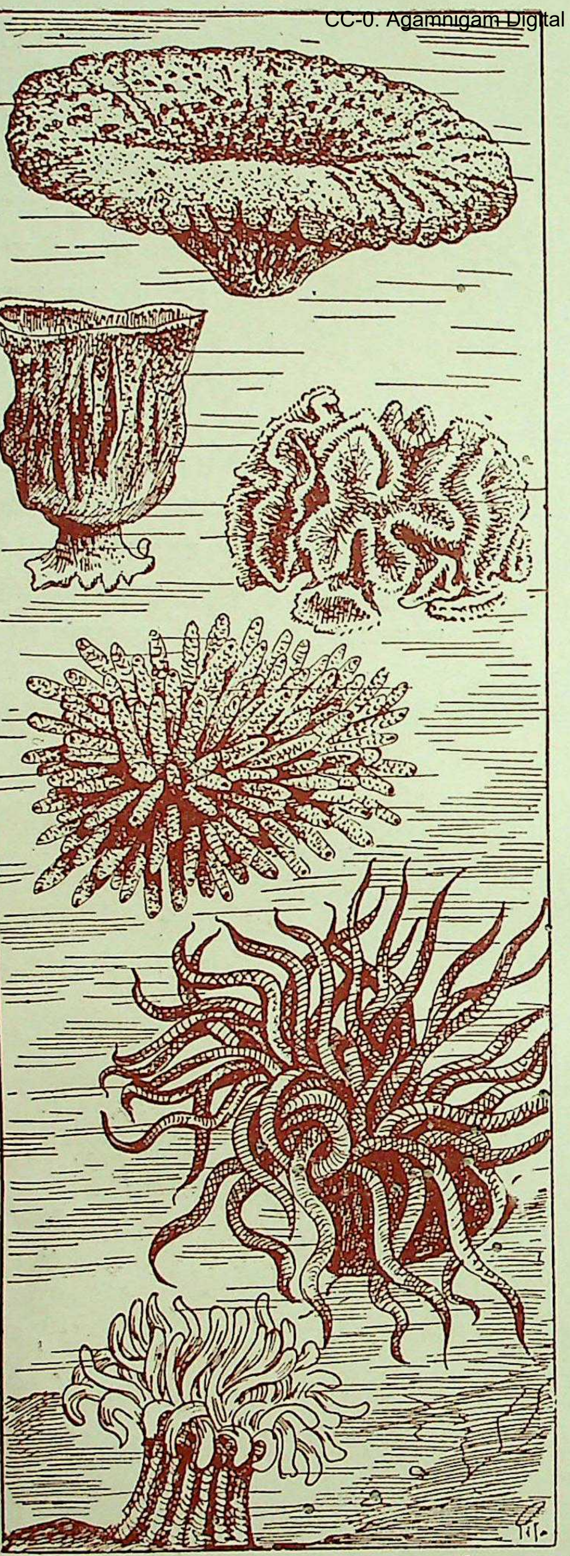

(क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर)
'स्पंज', 'मूँगा' और 'एनीमोन' नामक समुद्री जलजीवों के दो-दो नमूने ! इन वनस्पति जैसी शक्लों को देखकर कौन यह सोच पाएगा कि वस्तुतः ये जानवर हैं !

पौधे या वृक्ष की-सी एवं निचली ठीक किसी सूखे पत्ते की शाखा-प्रशाखायुक्त ठठरी-सी नहीं जान पड़ती ? किन्तु क्या तुम्हें इस बात पर विश्वास हो सकेगा कि ये चित्र वनस्पति की दुनिया से कदापि कोई वास्ता नहीं रखते ! ये तो हैं दरअसल समुद्र के जादुई गर्भालय में विद्यमान दो अनूठे जीव-रूपों की आकृतियाँ ! ये हैं शत-प्रति-शत जीवधारी, अर्थात् जानवर ही, वनस्पति कदापि नहीं; यद्यपि इन्होंने अपना भेस एकदम पत्तियों, टहनियों, एवं डालियों से युक्त पेड़-पौधों से मिलता-जुलता-सा बना रक्खा है ! तुम्हें यह जानकर हैरानी होगी कि जलमंडल के महान् अजायबघर में पेड़-पौधों और पुष्पों-फलों आदि का स्वाँग रचकर उनकी हूबहू नक़ल उतारनेवाले इस तरह के वनस्पतिरूप जीवधारियों की एक पूरी नुमाइश लगी है ! या यों कहिये कि समुद्रतल पर इनके लंबे-चौड़े वन फैले हुए हैं एवं उनकी अनेकों सुरम्य सुंदर वाटिकाएँ वहाँ उगी हुई हैं !

इन बहुरूपियों की अनेकों जमातें या बिरादरियाँ हैं। इनमें से कई तो बृहत् टोलियों ही में रहते हैं, जिससे कि सागर की फ़र्श पर उनकी सघन झाड़ियों का अनूठा दृश्य छाया हुआ है, और कई अलग-अलग या छुटपुट बिखरे हुए भी मिलते हैं ! इनमें जो अपेक्षाकृत निम्न कोटि के हैं, अर्थात् जीव-विकासक्रम की दृष्टि से जिनकी आंतरिक रचनाएँ सरलतर हैं, वे सामुहिक नाम से 'पोरिफ़ेरा' (अर्थात् बहुछिद्री बहुकोशीय प्राणि-वर्ग) कहकर पुकारे जाते हैं। हमारे स्नानागारों में प्रयुक्त 'स्पंज' नामक प्रसिद्ध जल सोखनेवाला पदार्थ इस वर्ग के जीवधारियों का एक उल्लेखनीय प्रतिनिधि है—वह इन्हीं का निर्जीव कलेवर अथवा शरीरावशेष है ! इन सरलतम प्राणियों का प्रधान लक्षण यह है कि इनके शरीर में ऐसे अगणित छिद्र या रिक्त कोष्ठ-से बने होते है, जिनके द्वारा ये जल को पर्याप्त मात्रा में सोखकर उसे अपने भीतर धारण किये रहते हैं। ये सागर या अन्य जलाशयों में अपने विस्तृत उपनिवेश बसाकर रहते हैं ! स्पंज-वर्ग के इन अद्भुत प्राणियों की दो-ढाई हज़ार जातियाँ पाई जाती हैं। केवल सौ ही वर्ष पहले तक तो लोग इन्हें एक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रकार के वनस्पति ही मानते रहे! परंतु अब इनके जैव रूप की बाबत पूरी तसल्ली की जा चुकी है। ये हरे, पीले, भूरे, नारंगी, लाल, बैंजनी, काले और सफ़ेद आदि सभी रंगों के मिलते हैं। सबसे अधिक विविधता तो इनकी अलग-अलग जातियों की आकृतियों की विचित्रता में पाई जाती है! उनमें से कुछ यदि प्यालों और फूलदानों की शक्ल के हैं तो कुछ सुराही या मर्तबान जैसे ही दिखाई पड़ते हैं! किसी को देखकर हमारे मन में खुम्मियों की याद जग उठती है तो कोई डंडेदार थूहड़ या नागफनी जैसे बिना पत्तियोंवाले रेगिस्तानी पेड़-पौधों का ही भ्रम हमारे मस्तिष्क में पैदा करने लगते हैं! पर सौन्दर्य की दृष्टि से, इस वर्ग के एक अनूठे जीव की शोभा का मुक़ाबला शायद ही अन्य कोई जीवधारी कर पाएगा! काँच की तरह चमकदार यह अद्भुत स्पंज महीन श्वेत धागों द्वारा बुनी गई एक प्रकार की बड़ी ही सुंदर जाली से सुशोभित खोलनुमा लंबी टोकरियों का रूप लिये रहता है! यह केवल गहरे समुद्रों ही में पाया जाता है और 'वीनस देवी की फूलों की डलिया' के कवित्वपूर्ण नाम से पुकारा जाता है! इसकी छटा देखते ही बनती है!

परन्तु यह तो सागर के अंचल में 'उगे हुए' वनस्पति-रूपी जीवधारियों की वाटिका के केवल एक ही वर्ग के विचित्र 'पौधों' की बात हमने कही, जब कि और आगे बढ़ने पर हमें एक साथ ही न केवल तरह-तरह के छोटे-बड़े पुष्पित-पल्लवित 'वृक्षों' एवं 'लताओं' के ही झुंड के झुंड अपनी झाड़ियों की ओट में समुद्रतल की चट्टानों और पंकराशि को छिपाये हुए दिखाई देते हैं, बल्कि 'खीरा', 'ककड़ी', 'कद्दू', 'लौकी', 'रसभरी', 'झरबेरी', 'करौंदा' आदि फलों एवं तरकारियों की भी शक्लें अपनाये हुए जंतु-जगत् के कतिपय सबसे अनूठे बहुरूपियों से भेंट-मुलाक़ात करने का भी सुयोग हमें यहाँ मिलता है, जिनका कि बखान करते हुए दिमाग़ चक्कर खाने लगता है! ये सब प्राणी बाहरी दिखावे में उपर्युक्त फल-तरकारियों से इतने अधिक मिलते-जुलते जान पड़ते हैं कि लोगों ने उनके यही नाम रख दिये हैं—अर्थात् 'समुद्री खीरा-ककड़ी', 'समुद्री रसभरी', आदि! परन्तु अपनी

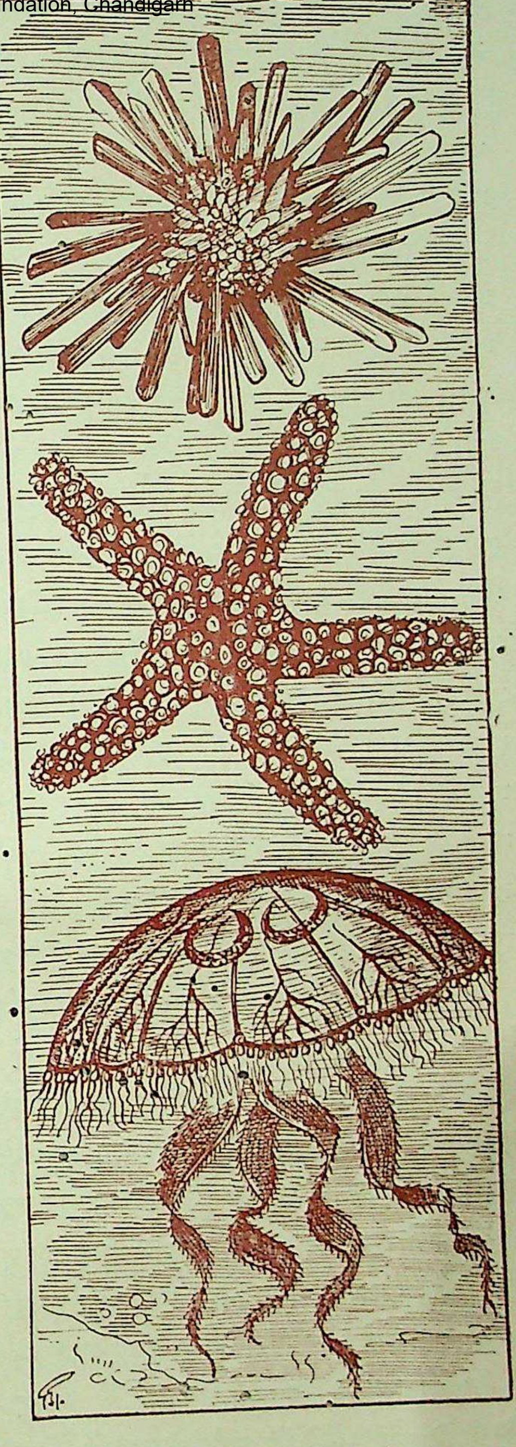

(क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर)
'सी-अर्चिन' नामक कंटकचर्मी; 'सितारा-मछली'; और 'लस-मछली' की छतरीनुमा मनोहर आकृति। ये सभी जीव छूने पर डंक मारनेवाले होते हैं!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शक्ल-सूरत द्वारा वनस्पतियों का धोखा पैदा करनेवाले ये प्राणी हैं शतशः जानवर ही ! यह इनकी चर्या ही से तत्काल प्रकट हो जाता है। उदाहरणार्थ, 'एनीमोन' या 'समुद्री फूलों' के नाम से प्रख्यात जीवों को ही लो ! वे हूबहू पंखुड़ीदार सुहावने पुष्पों-जैसे जान पड़ते हैं ! ये अनूठे जलजीव वैसे तो, सागरतल पर छाये हुए भाँति-भाँति के वनस्पतिरूप जीवधारियों की झाड़ियों में अपने स्थान पर चिपके हुए, चुपचाप अपनी शोभा बगराये रहते हैं, परन्तु ज्योंही कोई छोटी-सी झींगा-मछली या समुद्री कीट उनकी उन पंखुड़ियों के समीप पहुँचा नहीं कि तत्काल ही एक अजीब तरह की हरकत वे करने लगते हैं ! उस क्षण उनकी पंखुड़ियाँ पहले तो बाहर की ओर फैलकर विस्तृत-सी होने लगती हैं, जिससे कि पुष्प का मुख खुल-सा जाता है ! तदुपरान्त केन्द्र की ओर एकत्र-सी होकर वे इस प्रकार की गति करने लगती हैं मानों किसी वस्तु को ग्रहण करके अपना मुख बंद करने वे जा रही हों। कुछ ही क्षणों में तो हम देखते हैं कि वह कीट या झींगा एकाएक न जाने कहाँ गायब हो गया ! साथ ही उस पुष्परूपी दैत्य का मुख भी एकाएक चट से बंद हो गया ! कहने की आवश्यकता नहीं कि नाटक का यह परदा महज़ इसलिए यों बदल गया था कि शिकार शिकारी के हाथ लग चुका था और अब उस पुष्परूपी राक्षस के उदर में महज़ उसे पचाने-संबंधी कार्रवाइयाँ ही शेष रहीं थीं, जो कि गुप्त रूप से उसके भीतर ही भीतर चालू हो चुकी थीं ! इन प्राणियों की आकृतियाँ और उनके वर्णों की अद्भुत झाँकी देखकर हमें आश्चर्य से एकदम हक्का-बक्का-सा रह जाना पड़ता है, क्योंकि उनमें क्या तो गेंदा और क्या गुलदावदी, क्या सूर्यमुखी और क्या कोकाबेली, सभी प्रकार के पुष्पों के भिन्न-भिन्न रंगों एवं आकारों की अनुपम छटा छायी रहती है ! कुछ एनीमोनों की पंखुड़ियाँ यदि लंबी पत्तियों जैसी छितराई हुई मिलती हैं तो कुछ के पुष्प-व्यूह बँधी हुई-सी शक्ल में भी व्यवस्थित पाये जाते हैं। इन वनस्पतिरूप जीवों के शरीर में लबालब समुद्रजल भरा रहता है ! विशेषकर उनकी पंखुड़ियाँ तो सर्वथा जलपूरित रहती हैं ! इसी से वे फूली हुई और तनी-तनी-सी रहती हैं। वे भीतर से खोखली होती हैं और उनके सिरे पर एक छिद्र-सा होता है, जिसके रास्ते जब चाहे तब यह जीव पिचकारी की तरह फुहार छोड़कर अपनी जलराशि कम कर लेता है !

यहाँ हम तुम्हें एक मज़ेदार बात यह बता दें कि अपने आहार को उदरस्थ कर लेने के कुछ घंटे बाद ये जीव पुनः अपना मुँह खोलकर शिकार का बेकार बचा हुआ अंश बाहर निकाल फेंकते हैं ! इसी तरह एक और दिलचस्प बात यह भी इनके संबंध में बताने योग्य है कि यदि कुतूहल के हेतु खाने योग्य मांस-मछली के टुकड़े के बजाय किसी अखाद्य वस्तु को इनके मुँह के समीप ले जाया जाय तो पहले तो ये स्वभाववश बड़ी उत्सुकतापूर्वक अपनी पंखुड़ियाँ फैलाकर उसे पकड़ने का प्रयास करेंगे। परन्तु दो-एक बार की कोशिशों के बाद, मानों यह अनुभव करके कि यह अखाद्य वस्तु उनके अपने किसी भी काम की नहीं, वे उसे समीप पाकर भी फिर किसी प्रकार की हरकत नहीं करते ! इससे पता चलता है कि क्षुद्र कोटि का होने पर भी यह जीव एक प्रकार की संवेदना-शक्ति से युक्त है, यद्यपि उसके दिमाग़ नहीं है !

'एनीमोन' के उपरान्त, जलजीवों के इस मायावी संप्रदाय के सबसे प्रसिद्ध जीवधारी 'प्रवाल' या 'मूँगा-वर्ग' के वे भाँति-भाँति के अनोखे प्राणी हैं, जिनके जंगल के जंगल सागर के गर्भालय एवं उसके वक्षःस्थल पर हज़ारों मील तक आच्छादित हैं ! ये बहुरूपिये जल में से चूने जैसा एक पदार्थ ले-लेकर अपने पत्थर जैसे कड़े कलेवरों की रचना करते हैं, जो कि वृक्षों की शाखा-प्रशाखाओं की भाँति निरंतर बढ़ते हुए अपना विस्तार करते चले जाते हैं ! इनके ये कलेवर किसी एक व्यक्तिगत जीवधारी के नहीं, प्रत्युत समष्टि रूप से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

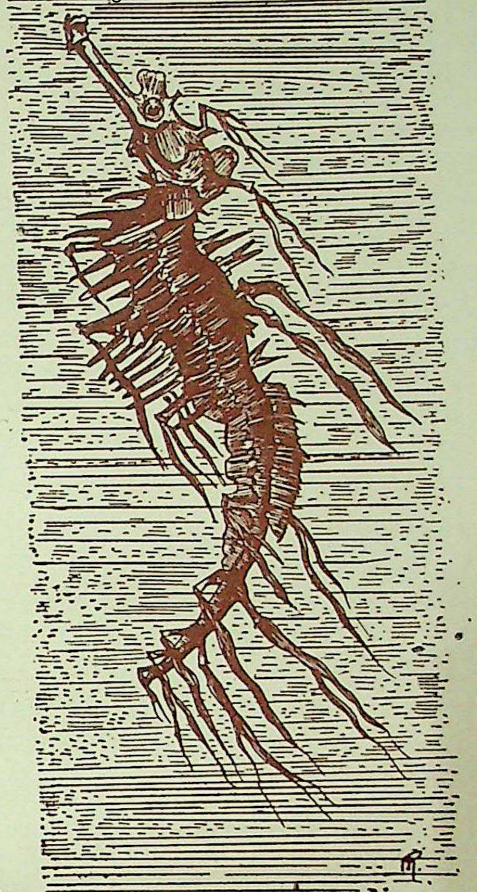

'समुद्री घोड़े' के नाम से प्रख्यात विचित्रवेशधारी मछली। यह आकार में पाँच-छः इंच की होती है। विशेष परिचय पृ० १४२ पर पढ़िए।

पूरी बिरादरी के सामुहिक शरीर जैसे होते हैं। इन जीवों के सैकड़ों-हज़ारों भेद पाये जाते हैं, जिनमें नागफनी या डंडेदार थूहड़ जैसे बिना पत्तियों के दंदानेदार या कंटकित रेगिस्तानी पेड़-पौधों से लेकर फ़र्न जैसे सदाबहार महीन पत्तियोंवाले वनस्पतियों तक एवं मटमैले भूरे रंग से लेकर चटकीले-भड़कीले लाल, सेंदुरिया, पीले, नारंगी, आदि विविध रंगों तक सभी प्रकार की शोभा निखरी रहती है! इन वनस्पतिरूप अद्भुत प्राणियों की परित्यक्त ठठरियों का लगातार अंबार लगते-लगते समुद्र में विस्तृत टापू-से बन गये हैं, जोकि 'प्रवाल-द्वीप' या 'मूँगे के टापू' के नाम से प्रख्यात हैं। ऑस्ट्रेलिया के तट के समानान्तर ऐसी प्रवाल-रचित द्वीप-शृंखलाओं की एक हज़ार मील लंबी एक लड़ी पाई जाती है। प्रायः तुमने गोंड, भील या संथाल जैसी आदिम जातियों के मनुष्यों के गले में लाल-लाल मनकों की मालाएँ सुसज्जित देखी होंगी! वे इन्हीं प्रवाल या मूँगों की चटकीले रंग की ठठरियों से तराशकर बनाई जाती हैं! इन विचित्र जलजीवों के दो अद्भुत नमूने पृ० १३३ के चित्र में प्रदर्शित हैं। उन्हें देखकर कौन सोचेगा कि ये वनस्पति नहीं, बल्कि प्राणी हैं?

क्षुद्र कोटि के इन विचित्रवेशधारी मनोरंजक जलचरों के अन्य उल्लेखनीय उदाहरण 'लस-मछली' एवं 'सितारा-मछली' जैसे वे जीव हैं, जिनसे कि प्रायः सभी समुद्रतटवासी भली भाँति परिचित रहते हैं। लस-मछलियों को 'जेली-फ़िश' भी कहते हैं। ये बहुत ही नरम और पारदर्शक बदनवाली होती हैं। ये प्राणी समुद्र की ऊपरी सतह पर प्रायः अपनी छतरीनुमा झालरदार सुंदर आकृतियों को तानकर तैरते रहते हैं। यदि इनके बदन से कदाचित् हमारा कोई अंग छू जाय तो उससे हमारे शरीर में काफ़ी जलन-सी होने लगती है। यह इसलिए होता है कि इन लघुकाय प्राणियों के कलेवर में डंक मारनेवाले एक तरह के बारीक सूत-से होते हैं, जोकि इनके आक्रमण के अस्त्र-से होते हैं। ये जीव 'लस-मछली' इसलिए कहलाते हैं कि इनका शरीर एक तरह के नरम एवं लसलसे पदार्थ द्वारा निर्मित होता है, जिसके कारण दबाते ही ये पिचक-से जाते हैं! इनके विपरीत, 'सितारा-मछली' 'एकिनोडर्मा' नामक उस कंटकचर्मी वर्ग की सदस्य है, जिसमें कि खीरे-ककड़ी, कद्दू-लौकी आदि की शक्ल के कतिपय बहुत ही अनोखे बहुरूपिये जलजीव संमिलित हैं। इसी वर्ग के कुछ जीव 'सी-अर्चिन' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। ये कंटकचर्मी प्रायः समुद्रतल की पंकराशि या चट्टानों की दरारों में घुसे हुए छिपे रहते हैं। इनमें से कुछ ऐसे भी हैं, जोकि लाल, हरे, बैंजनी और नीले रंगों की मनोरम रोशनी फेंकते हुए सागरजल में चमचमाते रहते हैं! काँच के गोले जैसे बिल्लौरी बदनवाले ये जीव देखने में बड़े सुहावने जान पड़ते हैं!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

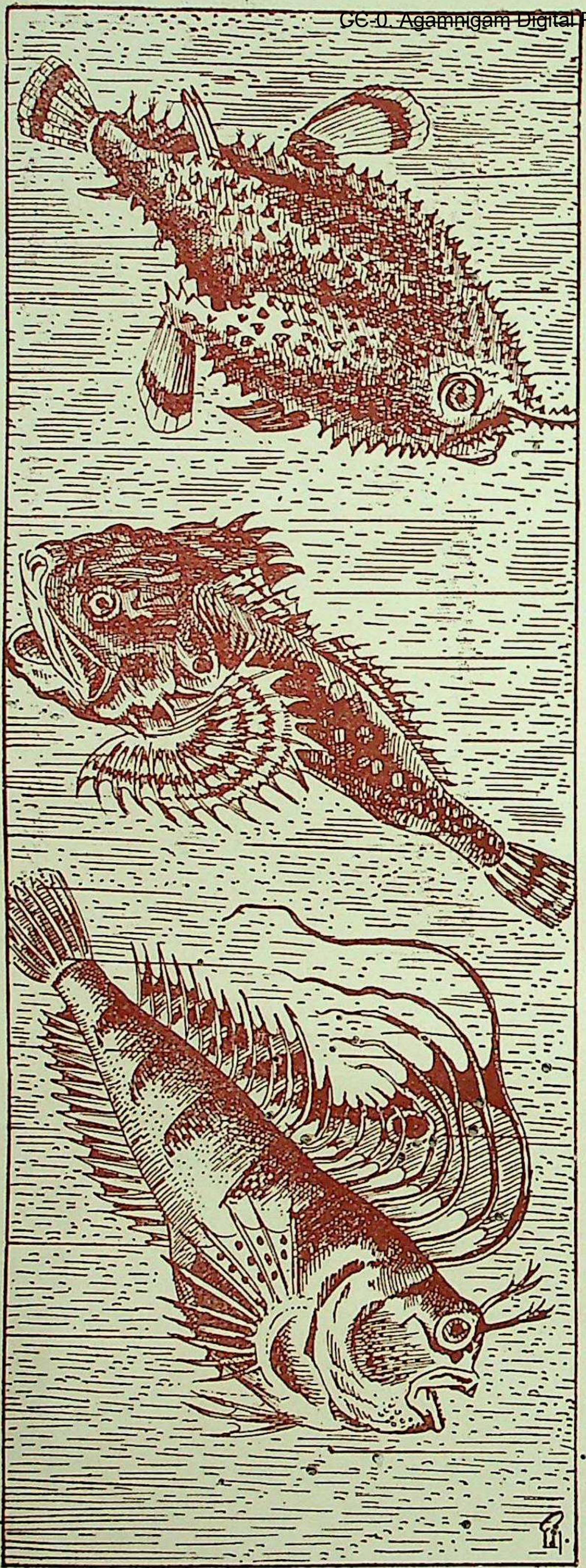

अद्भुत वेशभूषाधारी मछलियों के कुछ नमूने—(१)
अजीब शक्ल की ये मछलियाँ गहरे पानी में ही मिलती हैं।

परन्तु जलजीवों में सबसे अधिक मशहूर, साथ ही मनुष्य के लिए सबसे ज़्यादा उपयोगी एवं जाने-पहचाने हुए तो हैं मत्स्य-वर्ग के जीव ! इन पृष्ठवंशियों का विकास संपूर्णतया केवल जल ही में जीवनयापन करने के हेतु हुआ है, और इसमें संदेह नहीं कि इनके रूप-आकार के निर्माण में कलाकार प्रकृति ने अपनी कारीगरी का कमाल कर दिखाया है ! इन जीवधारियों की सबसे बड़ी विशेषता है इनके शरीर में की श्वास-प्रश्वास-संबंधी वह अद्भुत व्यवस्था, जिसकी बदौलत लगातार पानी के भीतर रहते हुए ही ये जीवन-प्रदायिनी प्राणवायु की अपनी पूर्ति कर लेते हैं ! ये जीव फेफड़ों द्वारा साँस लेनेवाले प्राणियों से सर्वथा भिन्न कोटि के हैं; कारण, ये हवा में से नहीं बल्कि स्वतः जल में से ही ऑक्सिजन-मिश्रित वायु को खींचकर अपना सारा काम चला लेते हैं ! इसके लिए इनके बदन में 'गलफड़े' नामक कुछ झिरीनुमा विशिष्ट रचनाएँ होती हैं। दूसरी एक प्रधान विशेषता इनके शरीर में डैनों, सुफनों एवं दुम पर की उन पंखेनुमा या पतवारनुमा रचनाओं के रूप में पायी जाती है, जिनकी बदौलत ये सरलता-पूर्वक मनचाही दिशा में अपने लचीले शरीर को घुमाते, मोड़ते या पलटते हुए जल में बखूबी तैरते रह सकते हैं। इनकी इस तैरने की अदा या योग्यता की बराबरी न तो कुशल से कुशल उड़ाकू पक्षी, न भाँति-भाँति के थलचर प्राणी ही अपने-अपने क्षेत्र में कर पाते हैं, और नौकाओं या पनडुब्बियों जैसी मनुष्यकृत रचनाओं से इनकी उपमा देना तो मानों महाकलाकार प्रकृति का अपमान करने जैसा होगा !

जिस प्रकार कि अपनी इस गतिविधि-विषयक अनोखी योग्यता में ये प्राणी अन्य सभी जीवधारियों को चुनौती देते हुए-से प्रतीत होते हैं, उसी तरह अपने रूप-रंग और भेस-लिबास के मामले में भी वे जंतु-जगत् के किसी भी वर्ग से मानों बाज़ी बदने को पूरी तरह तैयार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से जान पड़ते हैं । उनके चमकीले सिन्नेदार शरीर चाँदी-सोने जैसी मूल्यवान् धातुओं अथवा मोती, सीपी, लहसुनिया जैसे रत्नतुल्य पदार्थों द्वारा निर्मित प्रतीत होते हैं और उन पर निखरे हुए इन्द्रधनुष के वर्णों की-सी रंगों की शोभा अवर्णनीय हुआ करती है! अपने उस रुपहले-सुनहले रंग-बिरंगे बदन की चमकीली पृष्ठभूमि में उनकी आँखें मणियों की तरह टँकी हुई-सी जान पड़ती हैं, और डैनों आदि के रूप में प्रसारित भाँति-भाँति के वर्णों की पताकाओं-सी उनकी वे झिलमिल रचनाएँ संसार के सुंदर से सुंदर पुष्पों की मखमली या रेशमी पंखड़ियों को भी मात करती हुई-सी प्रतीत होती हैं ! संक्षेप में, इतना कह देना यहाँ पर्याप्त होगा कि अपनी रंग-बिरंगी छटा से इन प्राणियों ने सागर के रहस्यमय अंतराल को सचमुच ही मानों परीलोक में परिणत कर दिया है !

परन्तु इन चित्र-विचित्र वेशधारियों के रंग-बिरंगे पहनावे की चमक-दमक से चौंधियाकर कहीं तुम इस भुलावे में न पड़ जाना कि इस वर्ग के सभी जीव नितान्त निरापद या ख़तरे से रहित होंगे । कारण, बाहरी दिखावे में कितने ही लुभावने-से जान पड़ने पर भी इनमें से कई अपने रक्षार्थ अथवा आक्रमण के हेतु भाँति-भाँति के भयावने साधनों से पूरी तरह लैस हैं ! वर्गीकरण के लिहाज़ से, जलजीवों का यह बृहत् समुदाय चार प्रमुख समूहों में वैज्ञानिकों द्वारा विभाजित कर दिया गया है—१. 'ईल' जैसी बिना सिन्नों और जबड़े-रहित मुखवाली सर्पिल आकृति की आदिम मछलियाँ; २. 'शार्क' और 'रे' जाति की अति भयावनी बृहदाकार हिंसक मछलियाँ; ३. वास्तविक मछलियाँ; और ४. फेफड़ेवाली मछलियाँ । इनमें द्वितीय समूह के सभी प्राणी खतरनाक और भयावने हैं । इनके अतिरिक्त मछलियों के तीसरे वर्ग में भी, जिसमें कि कुल मिलाकर कोई पंद्रह हज़ार उपजातियों की मछलियाँ सम्मिलित हैं, कइयों को

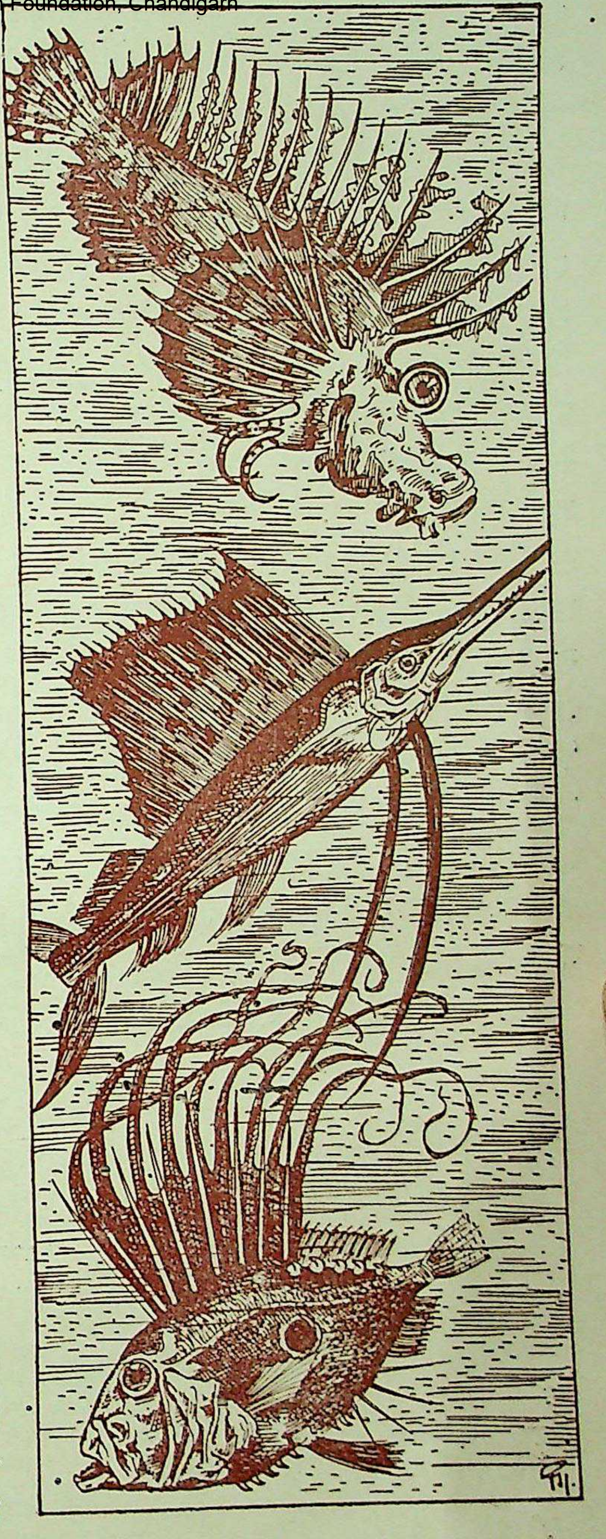

अद्भुत वेशभूषाधारी मछलियों के कुछ नमूने—(२)
इनमें बीच की 'तलवार-मछली' बड़ी ही ख़तरनाक होती है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपने बचाव या आक्रमण के हेतु आवश्यक अस्त्र-शस्त्र प्राप्त हैं। अतः मनुष्य या अन्य जीवधारियों के लिए खतरनाक साबित होनेवाले जीवों की संख्या इस वर्ग में भी कोई कम नहीं है। आओ, अब सबसे पहले हम 'शार्क' और 'रे' जाति के उन राक्षसों ही को लें, जिनको कि मत्स्य-संसार में लगभग उतना ही डरावना स्थान प्राप्त है, जितना कि स्तनपोषी थलचर जीवों में बाघ, आदि हिंसक शिकारी जानवरों का है। शार्क एक तीक्ष्णदंती लंबी मछली होती है, जिसके कि बदन पर वास्तविक मछलियों जैसे सिन्ने या छिलके नहीं होते। इसके बदन का सारा ढाँचा यथार्थतः हड्डियों के बजाय 'कार्टिलेज' नामक उपास्थियों से ही निर्मित होता है। इसके मुख में चाकुओं जैसे तीक्ष्ण धारवाले सैकड़ों कराल दाँतों की पंक्तियाँ-सी सजी रहती हैं, जिनकी बदौलत यह राक्षस अपने शिकार के प्रायः चिथड़े-चिथड़े उड़ा देता है ! शार्कों की छोटी-बड़ी अनेक जातियाँ मिलती हैं। इनमें विशालकाय 'श्वेतवर्णीय मनुष्यभक्षी शार्क', 'नीली शार्क', 'हथौड़े या घन के-से सिरवाली शार्क', 'कुक्कुर शार्क', 'गज-शार्क', आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। मानवभक्षी विशालकाय सफ़ेद शार्क चालीस फ़ीट तक की लंबाई की पाई जाती है। इसकी एक जाति, जो कि अब नहीं मिलती, शायद सौ फ़ीट तक लंबी होती थी और उसके तीखे दाँत छः-छः इंच तक के आकार के होते थे ! यह दैत्य अधिकतर उष्ण क्षेत्रों के समुद्रों ही में पाया जाता है और जलजीवों के अलावा मनुष्यों पर भी अपना घातक आक्रमण करते हुए वह कभी बाज़ नहीं आता। 'गज-शार्क' आकार में तो सफ़ेद शार्क से भी बड़ी होती है, परंतु वह बेहद काहिल होती है। हाँ, 'नीली शार्क' एक अत्यन्त भयावनी और खूँख्वार हिंसक मछली है, जो कि 'तिमि' या 'ह्वेल' जैसे भीमकाय जलजीवों की भी बोटी-बोटी उड़ा दिया करती है ! ऐसी ही महाभयावनी 'कुक्कुर शार्क' भी है, जो आकार में तो केवल ढाई फ़ीट लंबी होती है, परन्तु सागर की सामान्य मछलियों के लिए वह साक्षात् कालरूप ही है ! वह उनका बेतरह संहार करती रहती है। इन्हीं की तरह, हथौड़े के-से सिरवाली अद्भुत शार्क भी अपनी हिंसावृत्ति में किसी से पीछे नहीं रहती, यद्यपि उसके उस घन की-सी आकृति के अनूठे सिर का उसकी जीवनवृत्ति से क्या संबंध है, यह किसी की समझ में नहीं आता !

शार्कों की तरह 'रे'-समूह की बृहदाकार मछलियाँ भी खतरनाक जलजंतुओं के समुदाय में सबसे आगे की पंक्ति में प्रतिष्ठित हैं। इन दैत्यों की एक खास विशेषता यह है कि इनके बदन मछलियों जैसे लंबे होने के बजाय कच्छपों जैसे चौड़े और चपटे-से बन गये हैं, जो कि चमगादड़ों के-से इनके डैनों के विस्तार के परिणाम मात्र है। इनमें से कुछ जातियों के बदन तो अत्यधिक भारी-भरकम

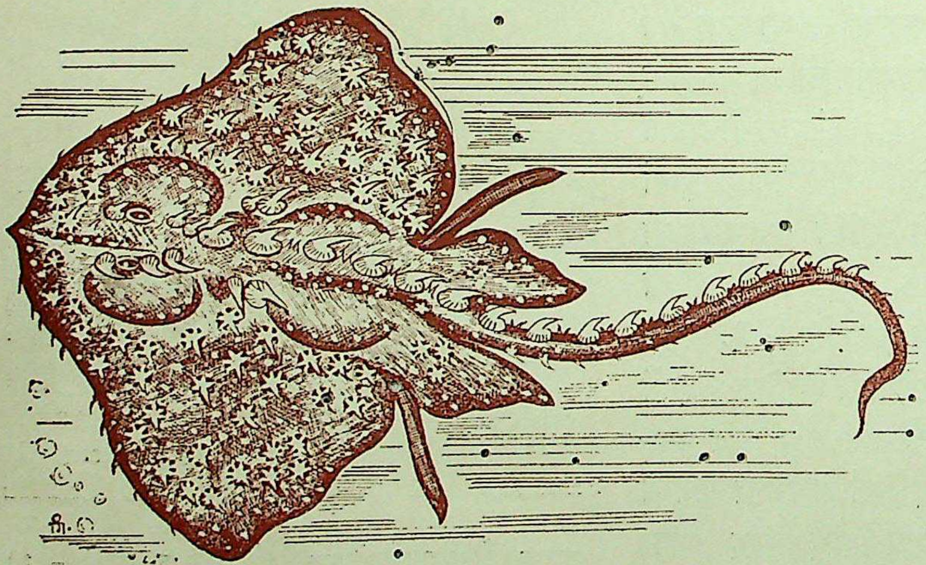

'डेविल फ़िश' नामक महाकाय 'रे-मछली', जो पचास मन तक वज़नी होती है !

हो गये हैं ! उदाहरणार्थ, 'डेविल फ़िश' के नाम से पुकारी जानेवाली 'रे मछली' में उसका आकार बीस फ़ीट चौड़ा और वज़न पचास मन तक का पाया जाता है ! इस तरह के भारी बदन से इन जीवों को अपने जीवन-निर्वाह में अनेक लाभ भी मिलते हैं। ये महज़ अपने बदन के फैलाव और वज़न द्वारा ही शिकार को दबोचकर उसका कचूमर निकाल देते हैं !

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

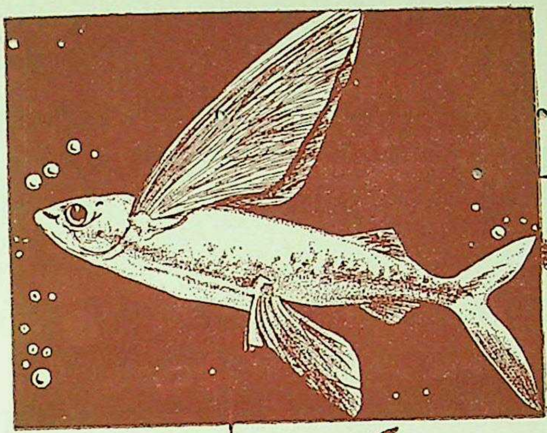

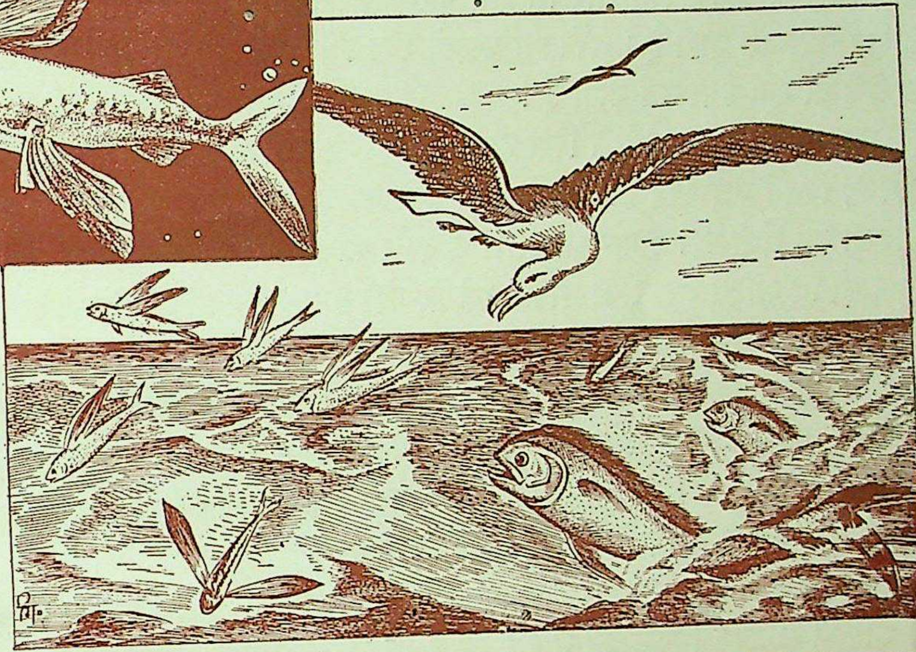

(ऊपर) उड़नेवाली मछली ! (दाहिनी ओर) पानी से बाहर उड़ते समय समुद्री पक्षी इनका शिकार करते हैं ! (नीचे) 'नीली शार्क' और 'स्क्विड' नामक जलजंतु !

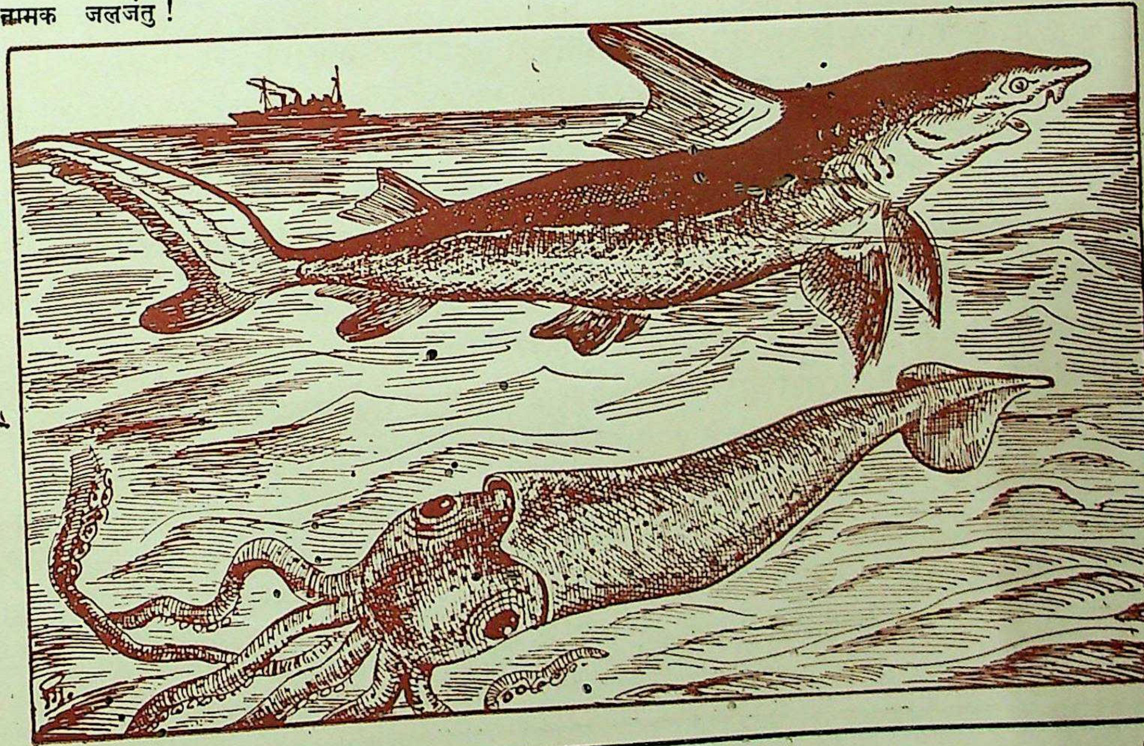

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'रे-मत्स्य' की दुम उरंगमों की भी पतली और लंबी होती है। इसे ये दैत्य चाबुक की तरह फटकारकर शत्रु पर वार करते हैं। कुछ जातियों में इस दुम पर बड़ा ही तीखा लंबा शूल बना रहता है, जो मौक़ा पड़ने पर बेहूदा घाव पैदा कर सकता है। एक जाति की 'रे' छूने पर ज़ोरों का बिजली का धक्का भी मारती है। इसे 'टार्पेडो' या 'विद्युत्-रे' के नाम से पुकारा जाता है। दूसरी एक मशहूर 'रे' अपने पंद्रह फ़ीट लंबे बदन में थूथन के आगे निकला हुआ, हूबहू लकड़ी चीरने के आरे की दोहरी दाँतदार शक्ल का, पाँच फ़ीट लंबा एक अति भयंकर आक्रमक शस्त्र धारण किये रहती है। इसी से यह 'आरा-मछली' (सॉ-फ़िश) के नाम से पुकारी जाती है। अपने इस भयावने शस्त्र द्वारा यह मछली जब निर्दयतापूर्वक किसी पर वार करती है तो खून-खच्चर मच जाता है!

मत्स्य-वर्ग के इन दानवों से विदा होकर जब हम 'वास्तविक मछलियों' के उस विशाल वर्ग में प्रवेश करते हैं, जिसमें कोई पंद्रह हज़ार उपजातियाँ संमिलित हैं, तो एक ओर जहाँ भिन्न-भिन्न आकारों और रंग-रूपवाली उन छोटी-बड़ी सामान्य मछलियों के दर्शन का सुयोग हमें मिलता है, जोकि आदिकाल ही से मनुष्य की चिरवांछित आहार की सामग्री रही हैं, वहाँ साथ ही साथ विचित्रवेशधारी एवं भयावने शस्त्रों से सुसज्जित कतिपय ऐसी मछलियों का भी साक्षात्कार हम करते हैं, जिन्हें देखकर कुतूहल के साथ-साथ हमारे मन में भय भी उत्पन्न होने लगता है। इन अनोखी मछलियों में सबसे आश्चर्यजनक आधे मील या उससे भी अधिक गहराई पर पायी जानेवाली तरह-तरह की आकृतियों की वे दुर्लभ मछलियाँ हैं, जो अपने शरीर से लाल, हरी और सफ़ेद रंग की रोशनी फेंककर जलमंडल की अंधकारपूर्ण पातालो दुनिया को विद्युत्-लैंपों की तरह जगमगाया करती हैं। ये प्राणी कभी-कभी अपनी इन बत्तियों को मछली पकड़ने के काँटे जैसे कँटियानुमा अंगों में लटकाये रहती हैं, जिसका अभिप्राय यह है कि छोटे-छोटे जीव उनकी रोशनी से ललचाकर आसानी से उनके शिकार बन जाय! इसीसे इस जाति की एक प्रख्यात मछली 'एंग्लर' कहलाती है! तीखे दाँतों की कराल पंक्तियों से युक्त इस दानवमुखी मछली को देखकर दर्शकों के शरीर में भय की कँप-कँपी जग उठती है! अन्य अनोखी मछलियों में 'उड़नेवाली मछलियाँ' हैं, जोकि अपने परों से पक्षियों के पंख का-सा काम लेकर सागर की सतह से कुछ फ़ीट की ऊँचाई तक उछलकर सफलतापूर्वक हवा में उड़ते पाई जाती हैं! दूसरी हैं 'तलवार-मछली' के नाम से प्रख्यात वे भयंकर प्राणी, जो 'आरा-मछली' की भाँति अपनी थूथन पर तीखे खंजर जैसा एक लंबा आक्रमणकारी शस्त्र उगाये रहते हैं! इनका यह हथियार इतना मज़बूत होता है कि वे उसे जहाज़ों की लकड़ी में भी बाईस इंच की गहराई तक घुसेड़ देती हैं!

परन्तु जहाँ तक अद्भुत वेशभूषा का सवाल है, मत्स्य-वर्ग के समस्त जलजंतुओं में उस पाँच-छः इंच आकार के लघुकाय जलजीव 'समुद्री घोड़े' के विचित्र स्वाँग का मुक़ाबला शायद ही कोई कर सकता है, जिसकी कि वेशभूषा के निर्माण में प्रकृति ने छद्मवेश की कला को पराकाष्ठा की स्थिति तक पहुँचा दिया है! पृ० १३७ पर इसका चित्र देखिए! यह छोटा-सा जीव है तो वस्तुतः एक मछली ही, परन्तु उसकी गर्दन एवं लंबी थूथन से युक्त मुखाकृति घोड़े के चेहरे से मिलती हुई-सी है। इसीसे उसका नाम 'समुद्री घोड़ा' पड़ गया है। परंतु इसकी सबसे बड़ी खूबी तो इसके शरीर पर फटी-फटी-सी झालर के रूप में लटकती हुई वे रचनाएँ हैं, जिनकी बदौलत यह प्राणी समुद्री शैवालों की झाड़ियों में घुल-मिलकर शत्रुओं की निगाह से छिपा रहता है! मत्स्य-संसार के अन्य कुछ विचित्रवेशधारियों के चित्र पृ० १३८-१३९ पर देखिए!

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

घोंघावंशी, अर्थात् शंख, सीपी, कौड़ी आदि के आवरण में रहनेवाले अनोखे जलजीव

स्पंज, मूँगा, लस-मछली, एनीमोन एवं मत्स्य-वर्ग के हज़ारों प्रकार के चित्र-विचित्र प्राणियों के अलावा जलजीवों का एक बृहत् समुदाय घोंघावंशियों के नाम से पुकारे जानेवाले उन अनूठे और निराले जंतुओं का है, जिनके सर्वप्रसिद्ध प्रतिनिधियों के रूप में सीपियों एवं शंख आदि के आवरणों की रचना कर उनमें रहनेवाले कस्तूरों को हम गिना सकते हैं। इसी वर्ग में वे अनूठे जीव भी सम्मिलित हैं, जिनसे कि 'मोती' जैसे दुर्लभ रत्नों का उपहार संसार को मिला है। कुल मिलाकर कोई अस्सी हज़ार जातियाँ-उपजातियाँ इस विशाल प्राणि-वर्ग में हैं, जिनमें से कई स्थलनिवासिनी भी हैं। ये सब पाँच महासमूहों में वर्गीकृत कर दी गई हैं। इस समुदाय के प्राणियों की एक खास विशेषता यह है कि इनके शरीर बहुत नरम होते हैं। फलतः उसकी रक्षा के हेतु ये प्रायः चूने जैसे एक द्रव्य द्वारा अपने आसपास भाँति-भाँति के आकार-प्रकार के बड़े ही सुंदर और सुहावने कड़े आवरण-से रच लेते हैं। इन खोलरूपी आवरणों की दीवार भीतर की ओर बेहद चिकनी हुआ करती है। प्रायः समुद्रों के किनारे पर की बालू में तथा जलमंडल के तले की फ़र्श पर इन जीवों के शंख-सीपीरूपी आवरणों के ढेर के ढेर पाये जाते हैं, जो कि इनकी इहलीला समाप्त हो जाने पर बचे रह जाते हैं। ये रचनाएँ समुद्र की लहरों से टकरा-टकराकर तथा पानी से धुल-धुलकर और भी अधिक चिकनी व सुहावनी हो जाती हैं। अपने नर्म मांस के कारण घोंघे और कस्तूरे आदिकाल ही से न केवल जानवरों द्वारा बल्कि मनुष्य द्वारा भी बड़े चाव से खाये जाते रहे हैं! इस संबंध में तुम्हें यह जानकर हैरानी होगी कि अमेरिका और योरप में इनकी विस्तृत 'खेती' तक की जाती है, अर्थात् तटवर्ती सागर के लंबे-चौड़े छिछले क्षेत्रों को घेरकर उनमें विधिवत् ये पाले जाते हैं एवं उनकी 'फसल' बेचकर बाज़ारों से करोड़ों रुपया खींचा जाता है! न केवल खाये जानेवाले घोंघों और कस्तूरों की 'कृषि' का, प्रत्युत एक क़दम और आगे बढ़कर अब तो मोती उपजानेवाले कस्तूरों को भी विधिवत् सागर के निर्धारित क्षेत्रों में पालकर, उनसे कृत्रिम रूप में मनचाहे आकार एवं वर्ण के मोती पैदा किये जाने का चमत्कार हमें आज की अपनी इस दुनिया में देखने को मिल सकता है!

'अष्टपाद' या 'ऑक्टोपस' नामक भयंकर जलजीव

महत्त्व और दिलचस्पी के लिहाज से, इन घोंघावंशियों में मोती उपजानेवाले कस्तूरों का स्थान सर्वोपरि है। ये प्राणी सीपियों की खोल के भीतर अपने मृदुल शरीर को सुरक्षित किये हुए सागरतल की पंकराशि में जीवन-यापन करते हैं ! संयोगवश यदि कोई बालू का कण या ऐसा ही कोई अरुचिकर विजातीय द्रव्य उस सीपी में प्रवेश कर जाता है तो अपने शरीर से चूने का-सा एक पदार्थ निकालकर वे उसके आसपास लपेट देते हैं, ताकि वह उन्हें तकलीफ़ न दे ! बस, वही मोती बन जाता है, जिसे पनडुब्बे समुद्र में ग़ोता मारकर एवं सीपियाँ बटोरकर प्राप्त करते हैं ! तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि 'क्लेम' नामक घोंघावंशियों की कतिपय सीपियाँ दस-दस फ़ीट तक के आकार की होती हैं !

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'अष्टपाद' (या 'ऑक्टोपस') और 'स्क्विड' (अथवा 'कटलफ़िश')' नामक भयावने जंतु

घोंघावंशियों ही के बृहत् समुदाय के अंतर्गत 'अष्टपाद' (या 'ऑक्टोपस') एवं 'स्क्विड' (अथवा 'कटलफ़िश)' नामक विचित्र आकृतिवाले वे डरावने और खतरनाक जलजीव भी सम्मिलित किये जाते हैं, जो कि अपने केन्द्रीय शरीर से अजगर के बदन-जैसी अनेक भुजाएँ बाहर की ओर प्रसारित किये रहनेवाले असाधारण ढंग के वीभत्स जंतु होते हैं ! इनकी उन भुजाओं पर छोटे बटन से लेकर बड़ी तश्तरियों तक के आकार के अनगिनत गोल-गोल 'चूषकों' की दोहरी पंक्तियाँ-सी बनी रहती हैं, जिनकी कि संख्या कभी-कभी दो-ढाई हजार के आँक तक पहुँच जाया करती है ! इन चूषकों का उद्देश्य यह है कि जब ये दैत्य नागपाश की-सी अपनी कालरूपी भुजाओं को किसी के बदन के आसपास लपेटकर उसे जकड़ें तो फिर वह अभागा किसी भी दशा में उनके चंगुल से छूटने न पाये ! इन वीभत्स जीवों की आँखें शैतान की आँखों की तरह घूरती हुई-सी सदैव सतर्क और चौकन्नी बनी रहती हैं ! उनसे शत्रु के प्रति एकमात्र घृणा और क्रूरता का ही भाव सदैव टपकता जान पड़ता है। इन खतरनाक जंतुओं की 'ऑक्टोपस' नामक जाति में तो भुजाओं की संख्या केवल आठ होती है, परन्तु 'स्क्विड' या 'कटलफ़िश' में वे दस तक पाई जाती हैं। 'स्क्विड' की दो अतिरिक्त भुजाएँ अन्य भुजाओं से लंबी होती हैं और उनमें 'चूषक' केवल सिरे पर ही होते हैं।

आकार में इस वर्ग के दोनों ही प्राणी कभी-कभी असाधारण लंबाई के पाये जाते हैं। कहते हैं, प्रशान्त महासागरों में पाये जानेवाले एक 'अष्टपाद' के घेरे का व्यास २८ फ़ीट एवं उसकी भुजाओं का फैलाव ४० फ़ीट तक का होता है ! इसी तरह न्यू फाउंडलैंण्ड के समीप पाई जानेवाली एक दैत्याकार 'स्क्विड' की लंबाई ५२ फ़ीट एवं वज़न लगभग बारह मन तक का पाया गया है ! इन जीवधारियों के कई छोटे नमूने भी मिलते हैं। ये सब समुद्रों के तले पर की चट्टानों के खंदकों में छिपे रहते हैं और प्रायः उसकी फ़र्श पर अपनी भुजाओं के बल शरीर साधकर चलते हैं। तैरते समय अपनी सर्पिल भुजाओं को सिर के पीछे की ओर लंबी फैलाकर उल्टी तरफ़ को ये भागते हैं ! मौक़ा पड़ने पर ये मनुष्य पर भी आक्रमण करने से नहीं चूकते ! इस वर्ग के जीवों में एक विशेषता यह है कि जब इनका सामना किसी बड़े दुश्मन से पड़ता है तो अपने बचाव के लिए ये अपने शरीर में स्थित एक थैली में से गाढ़ी-गाढ़ी स्याही जैसा एक विशेष प्रकार का पदार्थ पानी में छोड़ते हुए तेज़ी से उल्टे भागते हैं। वह स्याही शीघ्र ही पानी में घुलकर समुद्र का रंग काला कर देती है, जिससे कि दुश्मन की आड़ में धुएँ की एक रक्षा-प्राचीर-सी बन जाती है। बस, उसी की ओट में अपने को बचाते हुए ये दूर भाग खड़े होते हैं ! इस मानी में वे आधुनिक युद्धकला के अग्रदूत-से हैं !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh